

वर्ष 45, अंक 2 मार्च - अप्रैल 2022



गगनाचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम



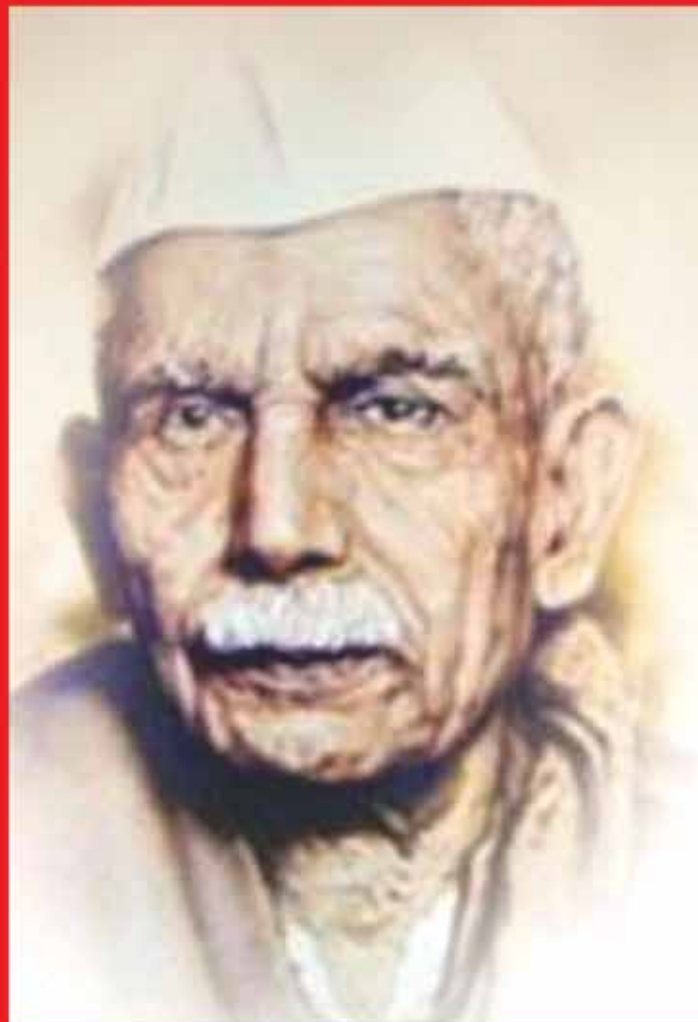
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
INDIAN COUNCIL FOR CULTURAL RELATIONS





जयंती स्मरण
महादेवी वर्मा
26 मार्च, 1907

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो
रजत शंख घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर
जब था कल कंठो का मेला
विहंसे उपल तिमिर था खेला
अब मंदिर में इष्ट अकेला
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

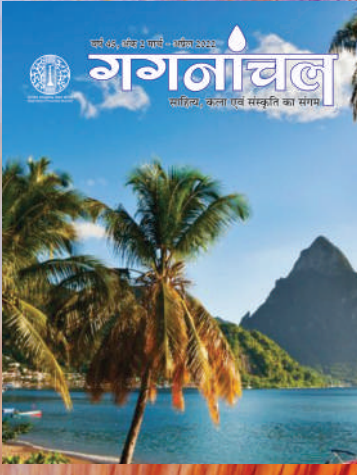


जयंती स्मरण
माखनलाल चतुर्वेदी
4 अप्रैल, 1889

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर पर, चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।।

ISSN : 0971-1430



प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
<http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal>
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : ₹ 500

यू.एस. \$ 100

त्रैवार्षिक : ₹ 1200

यू.एस. \$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान
'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली'
को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया
जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 45 अंक 2 मार्च - अप्रैल 2022

इस अंक के आकर्षण

हिंदी फिल्मों में मीरा

राम काव्य की लोक दृष्टि

विश्व फलक पर भारतीय संस्कृति

लिटरेचर और रिसर्च में थडोलॉजी

भाषायी स्वाधीनता और हिंदी जागरण

महाभारत के मिथक और भारतीय साहित्य

मीडिया तकनीकी और हिंदी का वैश्विक फलक

युगांतर लोकप्रिय सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएं

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए
आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना
कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के
होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों
की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 45, अंक 2, मार्च - अप्रैल 2022

साहित्य, कला एवं संस्कृति का मासिक

प्रकाशकीय

3 कुमार तुहिन

संपादकीय

4 सामाजिक समरसता सुव्यवस्था की कुंजी
डॉ. आशीष कंधवे

संस्कृति-संवाद

7 विश्व फलक पर भारतीय संस्कृति
प्रो. खेमसिंह डहेरिया

12 राम काव्य कि लोक दृष्टि
मंजुला राणा

20 महाभारत के मिथक और भारतीय साहित्य
डॉ. रेखा उप्रेति

साहित्य-चिंतन

23 एक भास्वर स्त्री वॉक: महादेवी वर्मा
इंदिरा दांगी

कथा-सागर

28 अंतिम संस्कार का खेल
तेजेन्द्र शर्मा (इंग्लैंड)

36 मैं सिर्फ बीज बेचता हूँ
डॉ. रमेश यादव

41 एक था नेत एक थी आनू
डॉ. संगीता सक्सैना

लोक-संस्कृति

46 कश्मीरी लोक संस्कृति में स्त्री नीलमत
पुराण, राजतरंगीणी, कथा सतीसर से
कश्मीरनामा तक
कृष्णा अनुराग एवं गौरव रंजन

चिंतन-मंथन

50 भाषाई स्वाधीनता और हिंदी जागरण
सूर्य प्रकाश सेमवाल

सिनेमा-संसार

54 हिंदी फिल्मों में मीरा
नवलकिशोर शर्मा

शोध-संवाद

58 लिटरेचर और रिसर्च मैथडोलॉजी
डॉ. अंजन कुमार

शोध संसार

61 जयशंकर प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिक
संवेदनशीलता और राष्ट्रीयता के प्रश्न
डॉ. अमित सिंह

65 युगांतर लोकप्रिय सुभद्रा कुमारी चौहान की
कविताएं
अनीता उपाध्याय

संगीत-सरीता

68 जन वेदना को जन चेतना में ढालने वाले
संगीतकार: भूपेन हजारिका
अमृता रानी

डायरीनामा

72 मेरे आर्मी जीवन की डायरी
अल्का पंत

मीडिया-चिंतन

78 इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का नया दौर: वर्चुअल
मीडिया एवं वर्चुअल रियालिटी
डॉ. आरती पाठक

81 मीडिया तकनीक और हिंदी का वैश्विक
फलक
रीना प्रताप सिंह

लघुकथा-कलश

84 शोभना श्याम

85 सुश्री कुंजिका राज

काव्य-मधुवन

86 रेखा गुप्ता

86 शीताभ शर्मा

87 रत्ना शर्मा

87 राजेन्द्र राजन

88 कल्पना गोयल

88 जयश्री शर्मा

89 नवलकिशोर दुबे

90 विनय कुमार अंकुश

91 शशी सक्सैना

92 गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर



प्रकाशकीय

कुमार तुहिन
महानिदेशक



हिंदी एक ऐसी समृद्ध भाषिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की संवाहिनी है जो न केवल भारतीयता की भावना को मजबूत करती है, अपितु भारतवर्ष को एकसूत्र में भी बाँधती है। गगनांचल पत्रिका के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद भी यही कार्य करती है। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय साहित्य, संस्कृति, भाषा आदि के उत्कर्ष को प्रकाशित करना हमारा ध्येय है।

समय बदल गया। देश बदल गया। हम स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के द्वार पर खड़े हैं। पर हम आजादी के मतलब को ठीक से समझ नहीं पाये। सीमाओं को मुक्त करा लेना सचमुच ऐतिहासिक था परन्तु संस्कृति और भाषा के उत्कर्ष के लिए हम आज भी संघर्ष कर रहे हैं।

भारत अपने सांस्कृतिक तथा भाषाई विरासत को तब तक बचा पाने में सफल रहा जब तक वह अपने विलक्षण विवेक से संस्कृति का समन्वयन तथा नये विचारों, नये उपकरणों, नये मापदण्डों को यथायोग्य आत्मसात् करता रहा। यही कारण रहा कि भारत की वैभवशाली और समृद्ध संस्कृति गतिशील बनी रही। इसके मूल में दो कारण हैं—पहला समन्वय प्रवृत्ति और दूसरा समभाव प्रवृत्ति। जब तक हम अपने विवेकानुसार भविष्य को ध्यान में रखकर उचित-अनुचित का निर्णय लेते रहे, नये विचारों, नये उपकरणों का राष्ट्रहित में तोलकर उपयोग करते रहे हैं, हम भाषाई और सांस्कृतिक दोनों पक्षों को संतुलित और संरक्षित करने में सफल रहे। यानि हमारी समन्वय प्रवृत्ति कार्यशील और संस्कृति गतिशील बनी रही। मुद्दा चाहे राजनीतिक हो, भाषाई हो, आर्थिक हो, सांस्कृतिक हो, सामाजिक हो हम ऐसी प्रवृत्तियों से निरंतर विजय प्राप्त करते चले गये। जिसके कारण हमारे इस वैभवशाली राष्ट्र के सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषाई भविष्य के लिए निश्चित रूप से हमारे चिंतन के विषयों में हैं। यह केवल सिद्धान्तों की बात नहीं है अपितु प्रवृत्ति की चेतना भी है। इसे ही हम समभाव प्रवृत्ति कहते हैं।

जब हम अपने जीवन में राष्ट्रहित की प्रवृत्ति को मूल सामाजिक प्रवृत्तियों से जोड़ देंगे, उस पर गर्व करना सीखेंगे, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और भाषाई चारों प्रमुख राष्ट्र निर्माण हेतु आवश्यक स्तंभों को नयी पीढ़ी में संचारित करते रहेंगे तो राष्ट्र के साथ-साथ भारतीय सनातन परंपरा, अध्ययन आदि सभी सुरक्षित रहेंगे।

इसमें दो मत नहीं हैं कि आर्थिक उन्नति जीवन और प्रगति के मूल बिंदुओं में से एक है पर सिर्फ आर्थिक प्रगति किसी भी राष्ट्र के संघीय ढाँचे को बचाये रखने में सक्षम नहीं हो सकती। इसके साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई प्रगति भी उतनी ही आवश्यक है जितनी आर्थिक प्रगति। मेरा तो यह मानना है कि आर्थिक उन्नति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई उन्नति। हाँ, यहाँ यह बात भी दीगर है कि देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई क्षेत्र में प्रगति के साथ ही हम आर्थिक महाशक्ति भी बन सकते हैं। शुभकामनाएँ!


कुमार तुहिन



डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

सामाजिक समरसता सुव्यवस्था की कुंजी

भारत का वर्तमान विकासोन्मुख तो है किन्तु उसके विकास को अवरुद्ध करने के लिए विदेशी शक्तियाँ तरह-तरह के प्रयास कर रही हैं। सत्ता में रहकर जनता के लिए कार्य करने वाली राजनैतिक पार्टियों पर दबाव बनाया जा रहा है। उत्पादन के क्षेत्र में वैश्वीकरण द्वारा प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करके कृत्रिम मन्दी का बाजार निर्मित किया जा रहा है। भारत के शक्ति संग्रह को प्रभावित करने के लिए पड़ोसी देशों को हथियारों की आपूर्ति की जा रही है, उनको युद्ध के लिए उकसाया जा रहा है और आतंकवाद आदि के माध्यम से अस्थिरता पैदा की जा रही है। इन सबके चलते देश का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध अथवा धीरे हो जाता है।

विकास के लिए अथक परिश्रम के साथ-साथ जनमानस के शुद्धीकरण और भावनात्मक एकीकरण की आवश्यकता होगी। लोगों में यह भावना उत्पन्न करना होगा कि क्षेत्रवाद, भाषावाद और जातिवाद के ऊपर उठकर राष्ट्रहित में सोच बनाएँ। देश के लिए प्रदेश का प्रदेश के लिए गाँव अथवा नगर का और गाँव, नगर के लिए अपना निजी स्वार्थ त्याग दें। अपने अन्दर के देवता को जागृत करें। मनसा-वाचा-कर्मणा सत्कर्मों में संलग्न हों। भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी से अपने को बचाएँ। वैयक्तिक हितों को देश के नाम पर तिलांजलि दे डालें। मानवीय गुणों को प्रश्रय दें। विकृत मानसिकता के भावों को अपने से अलग करके समाज हित की सोच बनाएँ। मानवीय मूल्यों के विकासोन्मुख प्रवृत्ति को सम्बल प्रदान करें और उनको पुनः स्थापित करें। कड़ी मेहनत करके कृषि-उत्पादन बढ़ाएँ और उनमें विविधता लाएँ। वृक्षों को काटने से रोकें और वर्षा तथा समीप के जल स्तर को जीवित रखने के लिए पानी के समुचित उपयोग पर ध्यान दें। जंगलों का दोहन रोकें। पर्वतों को छोटा करने की प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। हिन्दू जीवनशैली में पुनः यज्ञ को अत्यधिक महत्व दिया जाए, ताकि वातावरण में प्रदूषण की जो विषैली हवा बन चुकी है उसका शोधन हो सके। जीवन में शुद्धता और स्वच्छता को अत्यधिक महत्व दिया जाये।

भारत में सभी मनुष्यों को सनातन जीवनशैली में जीने की शिक्षा प्रदान करना भी आवश्यक हो गया है। पशुओं की रक्षा और उनकी हत्याओं पर प्रतिबन्ध आवश्यक हो गया है अन्यथा दूध की एक बूँद के लिए लोगों को तरसना पड़ सकता है। जाति-कर्म के नाम पर आपसी भेदभाव को समाप्त करने की भी आवश्यकता है। समाज के किसी भी व्यक्ति को असामाजिक कृत्य करने से रोका जाए और किसी को बहिष्कृत होने से भी बचाया जाए।

देश का सर्वांगीण विकास न केवल भौतिक क्षेत्र में अपितु आध्यात्मिक क्षेत्र में भी आवश्यक होता है। हमारा देश आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व मानवता का प्रतिनिधित्व करता आया है। भौतिकवादी वैचारिकी ने यहां की आध्यात्मिक शैली को कुछ अंशों में प्रभावित अवश्य किया है, जिसका निवारण करने की आवश्यकता है। भौतिक क्षेत्र में हमारी प्रगति किसी भी देश से कम नहीं रही। दुनिया को अनेक भौतिक आयाम

भारत ने ही दिये। परन्तु हमारी भौतिकी में भी समरसता के गुण विद्यमान थे, जिसका लाभ पूरे विश्व को मिल सका था। हमने जो भी प्राप्त किया, मुक्त हस्त से दुनिया को समर्पित कर दिया। यह हमारी उदारता का प्रतीक है जिसके अन्तःस्थल में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व बन्धुत्व' भाव की वैचारिकी की अन्विति हुई थी।

वर्तमान युग में भौतिकवाद पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और आध्यात्मिक पक्ष को उदासीनता के भाव से देखा जा रहा है। सम्भवतः इसीलिए हमारे समाज में पश्चिमी देशों की तरह विकृतियाँ आ गई हैं। भौतिक सुख-सम्पत्ति के लालच में पड़कर हमने नैतिक और सदाचारयुक्त आचार को अपने से अलग कर दिया है, इसलिए हम जो भी प्राप्त करते जा रहे हैं उतने से सन्तुष्ट नहीं हैं। जहाँ सन्तुष्टि नहीं होती, वहाँ असन्तोष का राज्य होता है और जहाँ असन्तोष होता है वहीं पर अव्यवस्था होती है। अव्यवस्था को आध्यात्मिक दिशा में ले जाने के लिए समरसता को माध्यम बनाने की आवश्यकता है, क्योंकि देश का सर्वांगीण विकास उसके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दिशाओं में उत्थान से जुड़ा हुआ है और यह स्थिति सामाजिक समरसता के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

भारत में सामाजिक समरसता विखण्डन के लिए हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ हुए भयानक छेड़छाड़ को भी उत्तरादायी ठहराया जाना चाहिए। संस्कृति एवं साहित्य के साथ हुए छेड़छाड़ से अर्थ का अनर्थ कर हिंदू समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया गया। मनु स्मृति का पहली बार सम्पादन एवं प्रकाशन अंग्रेजों ने सन् 1828 में किया। तत्पश्चात् सन् 1888 तक अनेकों धर्म ग्रंथों का प्रकाशन किया। यह कालखण्ड अंग्रेजों के लिए संक्रमण काल था। सन् 1857 में तो क्रांति का बिगुल भी 'मेरठ क्रांति' के नाम से बज उठा। सन् 1920 में डब्ल्यू.एस. विग्रस ने 'दी चमार' नामक पुस्तक का लेखन किया। हिंदू लोक जीवन के अन्तर्गत छः हजार पांच सौ जातियों में मात्र चमार जाति पर लिखी गई ऐसी पुस्तक का उद्देश्य सरलता से समझा जा सकता है कि इस प्रकार के प्रकाशन द्वारा हिंदी समाज को बाँट दिया जाए। हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ छेड़छाड़ का कारण हिंदू समाज की समरसता एवं संगठन को समाप्त करके हिंदू शक्ति को क्षीण बनाना था। हिंदू संस्कृति को सर्वाधिक क्षति विदेशी मुसलमान आक्रांताओं के आक्रमण एवं हिंदुओं के बलपूर्वक धर्म परिवर्तन से हुआ है। हिंदू समाज की समरसता विखण्डन के पीछे अंग्रेजों द्वारा हिंदुओं को बाँटने के उद्देश्य, प्रक्षिप्त साहित्य का सम्पादन एवं प्रकाशन तो था ही किन्तु ईसाई मिशन द्वारा प्रदूषित साहित्य प्रकाशन भी हिंदुओं में विशेष रूप से दलितों के मानस में शेष हिंदुओं के लिए घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। यह क्रम आज भी नियमित रूप से चल रहा है। कम्युनिस्ट तथा जनवादी लेखकों द्वारा योजनाबद्ध रूप से भ्रमात्मक तथ्यों का तो प्रकाशन चल ही रहा है किन्तु दलित साहित्यकारों की पूर्वाग्रह युक्त चिन्तन धारा भी समरसता स्थापित करने की जगह विषमता की स्थापना में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो रही है। हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ स्वलाभ एवं ख्याति के लिए भी लज्जाजनक छेड़छाड़ हो रही है। आज सामाजिक समरसता दर्शन की स्थापना हेतु इन सभी समरसता विखण्डन के योजनबद्ध प्रयासों को असफल करते हुए भारतीय समाज को पुनः सुदृढ़ करने के लिए सामाजिक समरसता का प्रचार-प्रसार अति आवश्यक है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि सामाजिक समरसता की उपादयेता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। इसके द्वारा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में सुव्यवस्था स्थापित की जा सकती है, सामाजिक अनुकूलन का लाभ प्राप्त किया जा सकता है, सामाजिक तथ्यों की जटिलताओं का निवारण हो सकता है, देश में धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता का भाव नियोजित किया जा सकता है। अतएव समरसता दर्शन का पाठ्यक्रम समाजशास्त्र, समाज मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास आदि सभी प्रकार के मानविकी और सामाजिक विषयों के साथ जोड़ा जाना आवश्यक है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर सोच बनाने की आवश्यकता है, क्योंकि नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के बिना देश और भारतीय समाज की उन्नति असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है।

सभ्यता संस्कृति और साहित्य के क्रमिक विकास के लिये एक सरल भाषा का होना अत्यंत आवश्यक है। किसी भी समाज की अनुभूति को बिना समर्थ भाषा के व्यक्त नहीं किया जा सकता है। युग-युगान्तरों से नित-नूतन होते परिवेश का संप्रेषण कोई समाज अथवा संस्कृति अपनी भाषा के माध्यम से ही कर पाती है। समय अनुरूप भाषा भी अपने रंग-रूप को सँवारती-निखारती रहती है और अभिव्यक्ति को सरल तथा संप्रेषण युक्त बनाने में प्रगतिशील रहती है। यही बदलाव किसी भी भाषा का प्राण-तत्व होता है। परिवर्तन ही जीवन है, यह सृष्टि का मूल सिद्धान्त है। फिर भला भाषा इस सिद्धान्त से कैसे अछूती रह सकती है। हाँ, इसकी गति कभी तीव्र होती है तो कभी मंद परन्तु इसका प्रवाह हमेशा बना रहता है। बदलती परिस्थितियों के साथ जो भाषा अपनी मूल प्रकृति को बिना त्यागे नव-संस्कारों एवं नव-विचारों के मूल भाव को अपने अंदर समेटने में सक्षम हो वही भाषा समय की होती है और भविष्य के लिये अपने अस्तित्व को बचाये रखने में सफल रहती है, विस्तार पाती है।

पिछली सदियों का अगर हम अवलोकन करें तो पाते हैं कि भाषा हमेशा समाज और सत्ता के अधिकार में रही है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक ताने-बाने को बुनने में उसकी भाषा ही मूल आधार होती है तथा सत्ता की सीढ़ी भी भाषा ही बनती है अर्थात् भाषा समाज और सत्ता दोनों के लिए प्राण-तत्व का कार्य करती है। जिस समाज की अपनी समृद्ध भाषा नहीं होती वह वैसे ही होता है जैसे बिना आत्मा का शरीर। हमारा यह सौभाग्य रहा है कि सभ्यता के शुरुआत से ही हमारे पास एक समृद्ध एवं समर्थ भाषा है।

भाषाई दृष्टिकोण से हम आज भी विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं। यहां प्राचीन भाषाई इतिहास को खंगालने का समय तो नहीं पर यह जरूर है कि भारतीय अवतारों, आध्यात्मिक गुरुओं, समाज सुधारकों, संस्कृति कर्मियों, साहित्यकारों से लेकर राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रणेताओं तक एक श्रेष्ठ भाषा से सुसज्जित रहे हैं।

इतिहास गवाह है कि भाषाई शस्त्र की धार ने कभी हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक धार को कुंद नहीं पड़ने दिया। परन्तु वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों में हिंदी की दशा विडम्बनापूर्ण है। स्वतंत्र भारत के संविधान में भले ही हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया गया हो परन्तु फिर भी भारत के राजनेताओं की संकुचित सोच, सत्ता का प्रलोभन, तुष्टीकरण की नीति, सवर्ण मानसिकता और राष्ट्रभाषा-राजभाषा के पेंच में फँसाकर हिंदी की सर्वाधिक दुर्गति की गई और की जा रही है।

जिस देश में भारतेन्दु और द्विवेदी जैसे साहित्यकारों ने हिंदी की जड़ को पाताल तक पहुँचा दिया हो (शिवपूजन सहाय)। जहाँ संस्कृत को माँ, हिंदी को गृहिणी और अंग्रेजी को नौकरानी कहा गया हो (फादर कामिल बुल्के)। जिस देश में विनोबा भावे का यह मत हो कि-“मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ, परन्तु मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता”। क्या इस देश की कल्पना हिंदी के बिना की जा सकती है?

आज भाषिक चिंता का एक महत्वपूर्ण पहलू है संचार माध्यम, यानी मीडिया। हम कह सकते हैं यदि 20वीं सदी विज्ञान की शताब्दी थी तो 21वीं सदी सूचना प्रौद्योगिकी की होगी। “संचार एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज के सभी वर्गों की मानसिक क्षमता का विकास किया जा सकता है।” संचार यानी कम्युनिस (communic) का अर्थ है-“भागीदारी युक्त सूचना और संप्रेषण”। लेकिन अगर हम इस शब्द के पहले मास (mass) लगा दें तो? जी हाँ, यह मास कम्युनिकेशन (mass communication) बन जायेगा, जिसे जन-संचार कहते हैं। मास (mass) शब्द का प्रयोग होते ही व्यक्तिवाद का अंत हो जाता है। आज जनसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचने में समर्थ हो गया है। परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी जन-संचार कैसे करेगी? इसके लिए यह आवश्यक है कि उसके पास एक समृद्ध, सरल एवं संप्रेषित होने वाली भाषा हो। यानी सूचना प्रौद्योगिकी के लिए भाषा प्राणतत्व है। परन्तु यह भी सत्य है कि किसी भी भाषा की सीमा का निर्धारण भी संभव नहीं है इसलिए सूचना प्रौद्योगिकी में भाषाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।



डॉ. आशीष कंधवे

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

विश्व फलक पर भारतीय संस्कृति

प्रो. खेमसिंह डहेरिया

“भारतीय संस्कृति की विशेषता अनोखी है, यहां के मकानों की बनावट, रहन-सहन, स्थानीय बोली, यहाँ के रीति-रिवाज, वास्तुकला, मूर्तिकला अन्य देशों से अलग है। भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ नष्ट हो रही हैं, किन्तु भारत की संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों में अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। तभी तो पाश्चात्य विद्वान अपने देश की संस्कृति को समझने हेतु भारतीय संस्कृति को पहले समझने का परामर्श देते हैं।”

संस्कृति का शब्दार्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरंतर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन पद्धति रीति-रिवाज, रहन, सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है। सभ्यता, संस्कृति का अंग है। सभ्यता (Civilization) से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है, जबकि संस्कृति (Culture) से मानसिक क्षेत्र की प्रगति होती है। भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है, किंतु इसके बावजूद मन और आत्मा तो अतृप्त ही बने रहते हैं। इन्हें संतुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते

हैं। मनुष्य की जिज्ञासाओं का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं। सौन्दर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता है। मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक कृति संस्कृति का अंग बनती है। इसमें धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान विज्ञानों और कलाओं सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है। संस्कृति किसी समाज की वे सूक्ष्म स्थितियाँ हैं, जिनके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को दिशा देते हैं। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि, हमारे साहित्य, धार्मिक कार्यों, मनोरंजन और आनंद प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती है। संस्कृति के दो भाग भौतिक और अभौतिक हैं। भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है, जिसे हमारी सभ्यता कहते हैं और हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से सम्बद्ध होते हैं। जैसे हमारी वेशभूषा, भोजन, घरेलू सामान आदि। अभौतिक संस्कृति का संबंध विचारों, आदर्शों, भावनाओं और विश्वासों से है। संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है। इसका विकास एक सामाजिक अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में होने वाली ऐतिहासिक एवं ज्ञान संबंधी प्रक्रिया व प्रगति पर आधारित होता है। किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा ही पहचाने जाते हैं।

सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा। जैसे-जैसे समय बीतता है, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले जाते हैं, और इसी तरह हम जिसे उपयोगी नहीं समझते उसे छोड़ते जाते हैं। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती जाती है, जो संस्कृति हम पूर्वजों से प्राप्त करते हैं, उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। वास्तु संबंधित इन रचनाओं, इमारतों, शिल्पकृतियों के

अलावा बौद्धिक उपलब्धियाँ, दर्शन, ज्ञान के ग्रंथ, वैज्ञानिक आविष्कार और खोज भी विरासत का हिस्सा है। भारतीय संदर्भ में गणित, खगोल विद्या और ज्योतिष के क्षेत्र में बौधायन, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य का योगदान, भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में कणाद और वराहमिहिर का, रसायन शास्त्र के क्षेत्र में नागार्जुन, औषधि के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक, योग के क्षेत्र में पतंजलि हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रगाढ़ खजाने हैं। संस्कृति परिवर्तनशील है, लेकिन हमारी विरासत परिवर्तनीय नहीं है।

जब किसी राष्ट्र पर एक विदेशी भाषा हावी होने लगती है तो उस राष्ट्र की संस्कृति के लिए सबसे बड़ा खतरा उपस्थित हो जाता है। संस्कृति क्या है? हमारे पूर्वजों ने विचार और कर्म के क्षेत्र में जो कुछ भी श्रेष्ठ किया है, उसी धरोहर का नाम संस्कृति है। यह संस्कृति अपनी भाषा के जरिए जीवित रहती है। यदि भाषा नष्ट हो जाये तो संस्कृति का कोई नामलेवा-पानीदेवा नहीं रहता। संस्कृति ने जिन आदर्शों और मूल्यों को हजारों सालों के अनुभवों के बाद निर्मित किया है वे विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाते हैं। भाषा, संस्कृति का अधिष्ठान है। संस्कृति भाषा पर टिकी हुई है। मैं तो इससे भी एक कदम आगे जाना चाहता हूँ। अपनी संस्कृति और विकृति दोनों से परिचित होने के लिए अपनी भाषा की धारा निरंतर बहती रहनी चाहिए। अगर अपनी भाषा नहीं होगी तो हमें न तो अपनी अच्छाइयों का पता चलेगा और न ही बुराइयों का।

भारतीय संस्कृति का मूलभाव हिंदी लोक साहित्य में सहज ही देखने को मिलता है, वह किसी एक व्यक्ति परिवार या एक गाँव अथवा एक जाति तक सीमित नहीं रहता। वह तो संस्कृति की इस संपदा को भी केवल अपनी संपदा नहीं मानता, पूरे विश्व की संपदा मानता है। साहित्य जब तक लेने से अधिक देने में विश्वास रखने वाली इस संस्कृति का प्रसार करता रहेगा, तब तक अपने भीतर की आँच के साथ ही सबके दुःखों की आँच का अनुभव कराता रहेगा, संस्कृति पर राख या धूल नहीं जम पाएगी और वह अमृत की रसमय पहचान करती रहेगी। इतिहास साक्षी है कि हिंदी साहित्य ने समाज को सदैव मार्ग दिखाया है। संस्कृति एक दूरगामी दृष्टि रखती है और कभी-कभी तात्कालिक महत्व को उतना अधिक ध्यान में नहीं रखती, उसे परखती जरूर है। स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी और उसकी लोकभाषाओं ने जो स्वाधीनता की चेतना जगाई, संघर्ष के लिए आग दी, वह सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए भी था। किंतु स्वतंत्रता के बाद सांस्कृतिक विकास सत्ता का मुखपेक्षी हो गया। इसीलिए मूल्यों की रिकता आ गई, जो भर नहीं पा रही है। इसका मूल कारण है कि व्यक्ति, साहित्यिक

संस्था, सांस्कृतिक संस्थाएं सत्ता से निरपेक्ष होकर देश की चिंता नहीं कर पा रही है। आज साहित्य का दायित्व और बढ़ गया है। आज सांस्कृतिक चेतना का विकास करने के लिए साहित्य को ही आगे आना है।²

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं की परिणति रही है। अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अपनी महत्ता एवं विलक्षणता के लिए यह प्रसिद्ध है। भाषा इसी संस्कृति की वाहिका रही है, वह आज भी इसी श्रेष्ठता को अपने में लेकर निरंतर विकास के मार्ग पर गतिशील है। भारतीय संस्कृति का आधार शांति, अहिंसा और सत्य रहे हैं। भारत की सांस्कृतिक समरसता ही इस देश की आत्मा रही है। देश की प्रादेशिक संस्कृतियों की झाँकियाँ हिंदी में तभी आईं, जब हिंदी ने अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अपने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक संबंध को दृढ़ बनाया। स्थानीय परिवेश के आधार पर जहाँ दो भिन्न भाषा-भाषी संपर्क में आते हैं, उनकी स्थानीय भाषा के प्रभाव के कारण संपर्क भाषा के रूप में काम आने वाली हिंदी में भी स्थानगत अंतर पाया जाता है। यह अंतर संस्कृति के मेल-जोल का भी कारण बनता है। संस्कृति एवं भाषा वैविध्य से युक्त एक देश होने के नाते भारत में कई भाषाओं और सभ्यताओं की प्रगति हुई। वैविध्य को कायम करके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दिशाओं में प्रगति कैसे हो सकती है - यह हिंदी ने दिखा दिया। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी ने यह मसला सहजता के साथ हल किया। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विकास के लिए भारतीय भाषाओं का परस्पर आदान-प्रदान आज अत्यंत आवश्यक बन गया है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही है। अनुवाद इस आदान-प्रदान का सबसे सशक्त माध्यम बन गया है। यही व्यक्तियों को एक-दूसरे की सभ्यता, रहन-सहन और संस्कृति से परिचित कराकर उन्हें एक-दूसरे के निकट लाता है और आपसी सौहार्द बढ़ाकर मानवता का विकास करता है। कोश, भाषाओं एवं संस्कृतियों को आपस में मिलाने का कार्य करते हैं। इनसे भाषाओं की प्राचीन अखंड परंपरा एवं समान स्रोत एवं आपसी संबंधों के इतिहास का ज्ञान होता है। आज तकनीकी हिंदी हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। इसके बिना अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँच पाना कठिन है। प्रादेशिक भाषाओं का इस स्पर्धा में एकमात्र सहारा हिंदी ही है। इन भाषाओं में नित्य बढ़ते हुए पारिभाषिक शब्दों का भंडार हिंदी और इन भाषाओं को एक-दूसरे के निकट लाने में सहायता करता है। विज्ञान, शिक्षा, विधि, प्रशासन, प्रबंधन आदि के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की कमी नहीं है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग और संप्रेषण का सीमा विस्तार हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे

से निकट लाता है। साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारत के अनेक धर्म, भाषाएँ एवं रीति-रिवाज, भारतीय संस्कृति को ही प्रतिबिंबित करते हैं। सांस्कृतिक संबंधों को आगे बढ़ाने में भाषाई संबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। असमिया साहित्य, संस्कृति, समाज व आध्यात्मिक जीवन में युगांतकारी महापुरुष श्री शंकर देव का अवदान अविस्मरणीय है। उन्होंने पूर्वोत्तर क्षेत्र में एक मौन अहिंसक क्रांति का सूत्रपात किया। उनके महान कार्यों ने इस क्षेत्र में सामाजिक सांस्कृतिक एकता की भावना को सुदृढ़ किया। उन्होंने रामायण और भगवद्गीता का असमिया भाषा में अनुवाद किया। पूर्वोत्तर क्षेत्र में वैष्णव धर्म के प्रसार के लिए आचार्य शंकरदेव ने बरगीत, नृत्य-नाटिका (अंकिया नाट), भाओना आदि की रचना की। उन्होंने गाँवों में नामघर स्थापित कर पूर्वोत्तर क्षेत्र के निवासियों को भाईचारे, सामाजिक सद्भाव और एकता का संदेश दिया। डॉ. मूदुल कीर्ति कहती हैं— यहाँ पर एक अनुभव बताना चाहती हूँ। हरिद्वार में मॉरीशस के एक दंपती से मिलना हुआ, जो बता रहे थे कि हमारे पूर्वजों ने गंगा का माहात्म्य बताया और दर्शन की प्रेरणा दी, हम इसलिए हरिद्वार आए हैं। मैंने उनकी पत्नी से बात करनी चाही तो उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके पति ने बताया कि आज बृहस्पतिवार है और आज उनका मौन होता है। बचपन से ही वे इस व्रत का पालन कर रही हैं, और मैं स्तब्ध होकर उनकी आस्था को नमन कर रही थी। वे गंगा को ऐसे देख रहे थे, जैसे साक्षात् प्रभु मिल गए हों। हमने गंगा का क्या किया— कभी तार देने वाली दिव्य धारा को मार देने वाली विषधारा बना दिया। एक आचमन के योग्य भी नहीं रही, पवित्रता की सौगंध के योग्य नहीं रही। दूसरी ओर इन गिरमिटिया को देखो, मॉरीशस में 'गंगा तालाब' बनाया, जहाँ शिवाजी की जटा से निकलती हुई गंगा की मूर्ति को स्थापित किया है। प्रधानमंत्री श्री मोदी जी ने भी अभी वहाँ आस्था के प्रसून अर्पित किए हैं। देवी और देवताओं की विश्वास और श्रद्धापूर्ण कथाएँ, राम, कृष्ण, सुदामा, ध्रुव, श्रवण, प्रह्लाद और नैतिक चरित्रों के नाट्य प्रदर्शन, ड्रामा, कहानियाँ, लोकगीत, लोक मान्यताएँ, राम लीलाएँ आदि का प्रदर्शन और श्रवण हिंदी में ही होता है। दशहरा, दिवाली, ईद का त्यौहार पूरे उत्साह और उमंग से मनाया जाता है, सत्संग और रामकथाओं का आयोजन भारत से संतों को बुलाकर किया जाता है।³

अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। भारत अपने गानों, संगीत नृत्य, रंगमंच लोक परंपराओं, प्रदर्शन कला, संस्कार, अनुष्ठान, चित्रकला और लेखन के लिए विश्व में अलग स्थान रखता है। भारतीय कला में दृश्यकला, कला प्रदर्शन और साहित्य कला आते हैं। भारतीय

दृश्य कला में मूर्ति कला, आर्किटेक्चर और चित्र है। भारतीय मूर्तिकला में प्रागैतिहासिक सिंधु घाटी सभ्यता, बौद्ध मूर्तिकला, गुप्त मूर्तिकला, मध्यकालीन मूर्तिकला, आधुनिक भारतीय मूर्तिकला है। संगीत वाद्ययंत्रों पर नजर डालें तो रविशंकर सितार वादन, अली अकबर खान सरोद वादन, उस्ताद बिंदा खान-सारंगी, हरिप्रसाद चैरसिया-बांसुरी, शिवमणि-ड्रम, जयंत नायडू-तम्बुरा, तोताराम शर्मा-पखावज, जाकिर हुसैन-तबला, आर.के. बीजापुर-हारमोनियम, कराईकुडी आर. मणि -जलतांगमू, केवी प्रसाद मृदंगम, वें विनायकराम-घाटम हैं। भारत में लोक संगीत की समृद्ध परंपरा है। भारत में अत्यधिक विविधता के कारण लोक संस्कृति बहुत समृद्ध है। भारत के हर क्षेत्र में एक प्रकार का संगीत जुड़ा हुआ है। असम-ज़िकर, अरुणाचलप्रदेश-जा-जिन-जा, बिहार-सोहर, छत्तीसगढ़-भरत ज्ञान, गोवा-सुवरी, गुजरात-डांडिया, मणिपुर-खोंजम पर्व, महाराष्ट्र-लावणी, मध्यप्रदेश-आल्हा, पंजाब-भांगड़ा, उत्तरप्रदेश-रसिया, राजस्थान-भारत में विभिन्न जातियों से संबंधित है। तमिलनाडु-नट्टुपुरा पट्टु है। भारत में शास्त्रीय नृत्यों की बात करें तो भरतनाट्यम-तमिलनाडु, मोहिनीअट्टम-केरल, कथकली-केरल, कथक-उत्तरप्रदेश, ओडिसी-ओडिशा, मणिपुरी-मणिपुर, कुचिपुडी-आंध्रप्रदेश, सत्रिया नृत्य-असम हैं। भारत के क्षेत्रीय नृत्य रूप या लोकनृत्यों पर नजर डालें तो भारत में कई नृत्य रूप हैं, प्रत्येक एक अलग राज्य जनजाति, कलाकारों से संबंधित है। छाऊ नृत्य-ओडिशा, बिहू-असम, गरबा-गुजरात, धमाल नृत्य-हरियाणा, दुमहल-जम्मू और कश्मीर, लावणी-महाराष्ट्र, भांगड़ा-पंजाब, चकर कूथु-केरल हैं।

भारतीय संस्कृति की विशेषता अनोखी है, यहां के मकानों की बनावट, रहन-सहन, स्थानीय बोली, यहाँ के रीति-रिवाज, वास्तुकला, मूर्तिकला अन्य देशों से अलग है। भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ नष्ट हो रही हैं, किन्तु भारत की संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों में अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। तभी तो पाश्चात्य विद्वान अपने देश की संस्कृति को समझने हेतु भारतीय संस्कृति को पहले समझने का परामर्श देते हैं। हजारों वर्षों बाद भी हमारी संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है, भारत में नदियों, वट, पीपल जैसे वृक्षों, सूर्य तथा अन्य प्राकृतिक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना का क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है। वेदों और वैदिक धर्म में करोड़ों भारतीयों की आस्था और विश्वास आज

भी उतना ही है, जितना हजारों वर्ष पूर्व था। गीता और उपनिषदों के संदेश हजारों साल से हमारी प्रेरणा और कर्म का आधार रहे हैं। संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी भारतीय संस्कृति में पाई जाती है। इसीलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक हिन्दू धर्म को धर्म न कहकर कुछ मूल्यों पर आधारित एक जीवन पद्धति की संज्ञा दी गई और हिन्दू का अभिप्राय किसी धर्म विशेष के अनुयायी से न लगाकर भारतीय से लगाया गया। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुई, तब किसी न किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदान कर, इसकी सहिष्णुता को एक नई आभा से मंडित कर दिया। इस दृष्टि से प्राचीन काल में बुद्ध और महावीर के द्वारा, मध्यकाल में शंकराचार्य, कबीर, गुरुनानक और चैतन्य महाप्रभु के माध्यम से तथा आधुनिक काल में स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद एवं महात्मा ज्योतिबा फुले के द्वारा किये गए प्रयास इस संस्कृति की महत्वपूर्ण धरोहर बन गए। भारत में इस्लामी संस्कृति का आगमन भी अरबों, तुर्कों और मुगलों के माध्यम से हुआ। इसके बावजूद भी भारतीय संस्कृति का पृथक अस्तित्व बना रहा और नवागत संस्कृतियों से कुछ अच्छी बातें ग्रहण करने में भारतीय संस्कृति ने संकोच नहीं किया। ठीक यही स्थिति यूरोपीय जातियों के आने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के कारण भारत में विकसित हुई, ईसाई संस्कृति पर भी लागू होती है। यद्यपि ये संस्कृतियाँ अब भारतीय संस्कृतियों का अभिन्न अंग हैं, तथापि 'भारतीय इस्लाम' एवं 'भारतीय ईसाई' संस्कृतियों का स्वरूप विश्व के अन्य इस्लामी और ईसाई धर्मावलम्बी देशों से कुछ भिन्न है। इस भिन्नता का मूलभूत कारण यह है कि भारत के अधिकांश मुसलमान और ईसाई मूलतः भारत भूमि के ही निवासी हैं। संभवतः इसीलिए उनके सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक आचरण में कोई परिवर्तन नहीं हो पाया और भारतीयता ही उनकी पहचान बन गई। साहित्य, संगीत और कला की संपूर्ण विधाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति के इस आध्यात्मिक एवं भौतिक समन्वय को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भारत में जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कार एक समान प्रचलित हैं। विभिन्न रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और तीज-त्यौहारों में भी समानता है। भाषाओं की विविधता अवश्य है, फिर भी संगीत, नृत्य और नाटक के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। संगीत के सात स्वर और नृत्य त्रिताल संपूर्ण भारत में समान रूप से प्रचलित हैं। सत्य, शिव और सुंदर ये

तीन शाश्वत मूल्य हैं, जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है, जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है यह संस्कृति ही है जो हमें नैतिक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट संपर्क में लाती है और इसी के साथ हमें प्रेम, सहिष्णुता और शांति का पाठ पढ़ाती है।

'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना अनादि काल से भारतीय संस्कृति का मूल सिद्धांत रहा है। आज विश्व, वैश्वीकरण की बात कर रहा है, तो वैश्वीकरण का मूल स्रोत भारतीय संस्कृति में मिलता है। अद्वैत वेदांत, जीव और ब्रह्म की एकता अर्थात् एक ईश्वर की सब संतान है। विश्व के लोग आज अहिंसा दिवस मना रहे हैं, सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाला देश भी भारत है। गीता में लिखा है - 'अहिंसा परमो धर्मः।' 'जियो और जीने दो,' शांतिपूर्ण सह अस्तित्व तथा गैर हस्तक्षेप का सिद्धांत आज भरत की विदेश नीति है। यहाँ ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र और शास्त्र विद्या, साहित्य कला, सभ्यता, संस्कृति आदि को मूल वेद माना जाता है। भारतीय संस्कृति से भारतीय जीवन-दृष्टि का बोध होता है। भारतीय संस्कृति की अपनी मौलिकता है। संस्कृति का एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य के स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन। भारतीय संस्कृति के जीवन-मूल्यों को यथार्थ की कसौटी पर परखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के बावजूद आज भी जीवंत है, और मानवता के विकास में सहायक है। समूचा विश्व भारतीय संस्कृति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुआ है। मेसोपोटामिया, मिस्र, रोम, यूनान संस्कृतियाँ भी भारतीय संस्कृति से प्रभावित रही हैं। कहा भी गया है-

यूनान, मिस्र, रोम सब मिट गए जहां से

क्या बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी॥

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा होती है और वही उसकी सर्वाधिक मूल्यवान सृजनात्मक शक्ति भी है। समस्त मानव सुखी हों, सभी को आनंद प्राप्त हो और सभी का कल्याण हो, यही रहा है-भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य सर्वकल्याण है-

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित दुःख भाग्भवेत्॥

संस्कारवान बनने के लिए श्रेष्ठ मेधाशक्ति चाहिए और इसलिए भारतीय मनीषा की याचना है -

यां मेधां देवगणाः पितृश्रोपासते।

तथा मामद्य मेधयाम्ने मेधाविनं कुरु ॥ यजुर्वेद, पृ.32-14

इसका शाब्दिक अर्थ है - ‘जिस मेधा शक्ति की उपासना देवगण और पितरगण करते हैं, उस मेधा से आज हमको मेधावी बनाओ’। भारतीय संस्कृति में ‘अतिथि देवो भवः’ के अनुसार अतिथि की तुलना देवता से की है। भारतीय दर्शन, धर्म, सहिष्णुता एवं समन्वय भावना, गौरवशाली इतिहास, संस्कार, रीति-रिवाज, (लोकपर्व) उच्चादर्श भारतीय संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ बनाते हैं। विवेक और ज्ञान भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

ओम् नमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च।

मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। यजुर्वेद-16-41

जो सर्वकल्याणकारी है, उसे प्रणाम, जो सभी को सर्वोत्तम सुख देने वाला है, उसको प्रणाम, जो सभी का सर्वमंगल करने वाला है, उसको प्रणाम, जो सर्व का सत्कार करने वाला है, जो प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने वाला है, ऐसे मंगलमय स्वरूप को प्रणाम।

स्वामी विवेकानंद जी ने अपने कोलंबो के भाषण में कहा था-‘यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जिसे हम धन्य भूमि कह सकते हैं, यदि ऐसा कोई स्थान है, जहाँ पृथ्वी के जीवों को कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता है, यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ भगवान की ओर उन्मुख होने के प्रयत्न में संलग्न रहने वाले जीव मात्र को अंततः आना होगा। यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव जाति को क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्गुणों का सर्वाधिक विकास हुआ है, तो वह भारत भूमि ही है।’ वेदव्यास कहते हैं -

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकारं पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

अठारह पुराणों में व्यास के दो ही वचन हैं-परोपकार पुण्य है और परपीडन पाप है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं -

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

परहित बस जिनके मन माहीं।

तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

अतएव अभिमान, स्वार्थ और कामना छोड़कर निरंतर परोपकार में रत रहना चाहिए। संस्कृति अपने आप में एक विस्तृत फलक है और एक व्यापक अनुभूति भी है। जीवन के प्रत्येक दिन में सांस्कृतिक मूल्य एवं

आदर्शों की आवश्यकता होती है। स्वस्थ तथा सुखी जीवन बिताने के लिए हम जो कुछ भी कदम उठाते हैं, वही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति दुनिया को अहिंसा का पाठ पढ़ाती है। भारत ऐसा देश है, जिसने पहले किसी पर आक्रमण नहीं किया। हमारा देश प्रकृति पूजक है। हम जल, धरती, वायु, आकाश, सभी प्राकृतिक स्पंदनों से संचालित होते हैं। यह धरोहर किसी और देश के पास नहीं है। यह एक गौरवपूर्ण बात है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। जहाँ संपूर्ण विश्व को समाहित करने की भावना हो, यही तो भारतीयता है।

‘केवलायो भवति केवलादी’ सूक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है कि जो व्यक्ति दान न देकर धन को केवल अपने लिए व्यय करता है, वह केवल निस्संदेह पाप को ही खाता है। वेद में हिंसा का निषेध किया गया है, इसीलिए यज्ञ का नाम अध्वर है। अध्वर हिंसा को कहते हैं। जिसमें हिंसा न हो, उसे अध्वर कहते हैं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव इत्यादि की संकल्पना भारतीय संस्कृति को उदात्त बनाती है। मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाने की क्षमता से ओतप्रोत इस देव संस्कृति को विश्व-संस्कृति नाम इसी प्रकार दिया गया, क्योंकि यह प्रकाश कभी भारत तक सीमित न रहकर सारे विश्व वसुधा में फैला व सार्वजनीन बना। मानव के व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में उसकी संस्कृति ही उसकी उन्नति या अवनति का कारण होती है। भारतीय संस्कृति, परंपरा एवं चिंतन कभी भी किसी एक देश, एक जाति या एक धर्म की बात नहीं करता, बल्कि वह संपूर्ण जगत्, संपूर्ण मानवता और यहाँ तक कि संपूर्ण प्राणी की कल्याण-कामना करता है।

संदर्भ -ग्रंथ

1. स्वभाषा लाओ: अंग्रेजी हटाओ, वेदप्रताप वैदिक, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2014, पृ. 41.
2. स्मारिका, 10 वां विश्व हिंदी सम्मेलन, 10-12 सितंबर 2015 भोपाल, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 348.
3. गिरमिटिया देशों में हिंदी, डॉ. मुदुल कीर्ति, हिंदी भाषा: स्वरूप, शिक्षण, वैश्विकता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015, पृ. 167-168.
4. www.Google.com/hi-m-wikipedia.org/taiyarihlp.com



कुलपति अटल बिहारी वाजपेयी, हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल
डी/25, 74 बंगलो तुलसी नगर, भोपाल म. प्र.462003

राम-काव्य की लोकदृष्टि

मंजुला राणा

मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाले तुलसी लोक-मंगल के सर्वश्रेष्ठ हिमायती हैं। हिन्दी साहित्य में लोक-मंगल की ऐसी तड़प शायद ही किसी अन्य कवि में मिले। यह लोक-मंगल लोक के प्रति ;ज्व जीम चमवचसमद्ध तो ठीक है, पर यह लोक के माध्यम द्वारा ;जीतवनही जीम चमवचसमद्ध नहीं, बल्कि व्यक्ति-दर-व्यक्ति 'स्व' की अनिवार्य भूमिका द्वारा साधित होता है। इसकी तकनीक समूह-आश्रित नहीं, बल्कि व्यक्ति आश्रित है। 'स्व' के भीतर तमस् का भयावह रोष व्याप्त है। अन्तर के तमस् से युद्ध करके, उसे शान्त करके और अन्तर को तृप्तकाम-संतुष्ट करके यह लोक मंगल उत्पन्न होता है और इस प्रक्रिया में व्यक्ति की भूमिका नहीं। वस्तुतः साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, धर्म आदि की अपील समूह से नहीं, व्यक्ति से ही होती है। साहित्यादि 'विशेष' और व्यक्तिपरक बोधों पर आश्रित हैं। इसी से 'मानस' में व्यक्ति और 'स्व' को सम्पूर्ण महत्व के साथ उपस्थित किया गया है।

मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन लोक-चेतना का अखण्डित एवं गरिमामय स्रोत है और यह स्रोत किसी दमन तथा दबाव की प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि यह पराजित जाति की अन्तर्मुखी पीड़ा की लोकात्मक अभिव्यक्ति तथा लोक-जागरण के बीच सदियों के संस्कारों से विजडित तथा छटपटाते हुए भारतीय मानस को मुक्ति दिलाने की अन्तः प्रेरणा का उत्साह-भरा प्रतिफल है। इतिहास साक्षी है - भारतीय मानस मूल्यों के अधःपतन से जितना अधिक पीड़ित रहा है, उतना जातीय पराजय से नहीं।

भक्ति के इस लोक-जागरण के मंच को सबसे अधिक सशक्त तथा व्यापक बनाने वाले इस युग के मनीषियों में गोस्वामी तुलसीदास अग्रगण्य हैं। क्योंकि उन्होंने वर्गवाद, जातिवाद, परम्परावाद तथा

सनातनवाद के ऊपर लोक-चिन्तन की मंगलदायिनी भावभूमि का इस प्रकार प्रसार किया कि सभी उसके नीचे दबकर श्रीहीन हो गए।

'लोक-चेतना' सामासिक शब्द है, जो 'लोक' और 'चेतना' के योग से निष्पन्न है। भारतीय वाङ्मय में 'लोक' शब्द का व्यवहार प्राचीन काल से ही होता आया है। 'लोक' के शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' को दृष्टि-पथ में रखकर ही वेदों में इसका व्यवहार हुआ है। उपनिषद्, गीता और नाट्यशास्त्र में भी यह शब्द सामान्य जनता का बोधक है। अपने संकुचित अर्थ में 'लोक' शब्द से तात्पर्य है - जन सामान्य। अंग्रेजी भाषा में इसके लिए फोक (Folk) शब्द प्रचलित है। वस्तुतः 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और अहंकार से शून्य होकर एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। लोक-संस्कृति, लोक-तत्त्व, लोक-साहित्य, लोक-भाषा, लोक-रुचि, लोक-गीत, लोक-कथा आदि के प्रयोगों में 'लोक' शब्द 'जनसामान्य' वाले अभिप्राय का द्योतक है।

'लोक-चेतना' पद में प्रयुक्त 'चेतना' शब्द 'पूर्ण जागरूकता' या 'चैतन्यता' - अर्थ का द्योतक है। इस प्रकार, लोक-चेतना का आशय है - जन सामान्य के प्रति पूर्ण जागरूकता या चैतन्यता का भाव-बोध अथवा जन साधारण के प्रति चिन्तनमूलक मानोवृत्ति। वस्तुतः किसी साहित्यकार के संदर्भ में लोक-चेतना से तात्पर्य उसकी उस सर्जनात्मक दृष्टि से है, जो जन-साधारण के जीवन में व्याप्त सुखद-दुखद परिस्थितियों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करते हुए जन सामान्य के प्रति जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होती है।

गोस्वामी तुलसीदास की तेरह रचनाओं को प्रायः प्रामाणिक मान लिया जाता है। उनमें से वैराग्यसंदीपनी (लगभग संवत् 1626.27), रामाज्ञा पत्र (संवत् 1627.28), रामललानहछू (संवत् 1628.29), जानकी मंगल (संवत् 1629.30) को आरंभकालीन, रामचरितमानस (संवत् 1631) एवं पार्वतीमंगल (संवत् 1643) को मध्यकालीन तथा

कृष्णगीतावली (संवत् 1643.60), गीतावली (संवत् 1630.70), विनय पत्रिका (संवत् 1631.79), दोहावली (संवत् 1626.80) तथा कवितावली-हनुमानबाहुक (संवत् 1631.80) को मध्योत्तरकालीन माना गया है। तुलसी की इन रचनाओं का परस्पर मिलान करने पर उनमें काव्य-पटुता एवं लोक-चेतना का उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगत होता है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं विशेषकर रामचरितमानस, विनय पत्रिका, दोहावली एवं कवितावली में लोक-चेतना का रंग अत्यन्त सान्द्र है। उनका लोक-प्रेम उनके काव्य का स्रोत है। उनके लिए काव्य की कुछ पंक्तियों के आधार पर उन्हें कतिपय आलोचकों ने जन-साधारण-विरोधी सिद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसी पंक्तियों में निम्न को प्रायः बार-बार उद्धृत किया जाता रहा है -

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।

गोस्वामी तुलसीदास का स्वात्म इतना व्यापक है कि सम्पूर्ण 'लोक' उसमें समाहित है। वे 'स्व' तथा 'लोक' के बीच एकात्म स्थापित करके उसकी पीड़ा के अनुभव द्वारा मुक्ति चाहते हैं और दूसरी ओर अपने निजी संकटों से सम्पूर्ण पीड़ित मानव-जाति के संकटों को जोड़कर निरन्तर उसकी मुक्ति-कामना के प्रति सचेष्ट हैं। लोक में आत्म और आत्म में लोक का अद्भुत विलयन मध्यकालीन भक्तों की साधना का मूल मन्तव्य है। इसीलिए इस कालखंड में उपासकों, भक्तों एवं चिन्तकों ने स्वयं अपने में लोक समाहित करके अपनी और उनकी (स्व तथा पर) पीड़ा के समाधान अन्वेषण में एक जैसी तत्परता दिखाई है। अतएव तुलसी के लिए 'स्वान्तः सुखाय' और लोकहित में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। 'स्व' एवं 'लोक' के बीच एकात्म स्थापन के कारण तुलसी का व्यक्तित्व एक संगठित व्यक्तित्व था। इसीलिए लोकहित में ही तुलसी का स्वान्तः सुख निहित था, दोनों में ही किसी प्रकार का अन्तर्विरोध नहीं है।

प्रत्येक युग के महान् विचारकों एवं कवियों ने मनुष्य को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि माना है। तुलसी ने भी यही प्रतिपादित किया है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। यह कवि मनुष्य का सबसे बड़ा उपासक है। तुलसी ने प्राचीन महाकाव्यों की मानववादी परम्परा को आगे बढ़ाया है - 'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' पर रामचरितमानस मानों सजीव भाष्य है।

मनुष्य की श्रेष्ठता एवं उसकी गरिमा की प्रतिष्ठा रामचरितमानस में स्थल-स्थल पर हुई है -

बड़े भाग मानुस तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथन्हि गावा।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।

मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाले तुलसी लोक-मंगल के सर्वश्रेष्ठ हिमायती हैं। हिन्दी साहित्य में लोक-मंगल की ऐसी तड़प शायद ही किसी अन्य कवि में मिले। यह लोक-मंगल लोक के प्रति (To the People) तो ठीक है, पर यह लोक के माध्यम द्वारा (Through the People) नहीं, बल्कि व्यक्ति-दर-व्यक्ति 'स्व' की अनिवार्य भूमिका द्वारा साधित होता है। इसकी तकनीक समूह-आश्रित नहीं, बल्कि व्यक्ति आश्रित है। 'स्व' के भीतर तमस् का भयावह रोष व्याप्त है। अन्तर के तमस् से युद्ध करके, उसे शान्त करके और अन्तर को तृप्तकाम-संतुष्ट करके यह लोक मंगल उत्पन्न होता है और इस प्रक्रिया में व्यक्ति की भूमिका नहीं। वस्तुतः साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, धर्म आदि की अपील समूह से नहीं, व्यक्ति से ही होती है। साहित्यादि 'विशेष' और व्यक्तिपरक बोधों पर आश्रित हैं। इसी से 'मानस' में व्यक्ति और 'स्व' को सम्पूर्ण महत्व के साथ उपस्थित किया गया है। 'मानस' में व्यक्ति की अस्मिता को (उसके 'स्व' को) तृप्त और परिष्कृत करके लोकोदय को साधित करने की बात की गयी है। इसी से इसके प्रारम्भ और अन्त में क्रमशः 'स्वान्तः सुखाय' तथा 'स्वान्तस्तम शान्तये' की बात की गयी है और संत्रास से विघटन के इस युग में 'स्वान्तस्तमः शान्तये' की प्रतिज्ञा जो इस महाकाव्य के उपसंहार-श्लोक में आती है, अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी अपेक्षाकृत कम चर्चित हैं। तुलसी के लोक-नायक राम 'स्व' को तृप्त एवं परिष्कृत करके ही साधन-सम्पन्न होते हुए भी लोकपीडक रावण को धर्मरथ पर आरूढ़ होकर नष्ट करते हैं। विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि रावण के समान बलवान, खर-दूषण एवं त्रिशिरा का अकेले वध करने वाले राम यदि चाहते तो अकेले ही रावण का समूल नाश कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा न करके सीता की खोज, सेतु बन्धन एवं रावण-वध आदि कार्यों में भालू-बन्दरों से सहयोग लिया। युद्ध के पश्चात् राम ने कहा था - मित्रो! मैंने तुम्हारी सहायता से रावण का वध किया है-

तुम्हरे बल मैं रावणु मार्यो। तिलक विभीसन कहँ पुनि साय्यो।

अयोध्या में उनका परिचय देते हुए राम ने सभी के लिए 'सखा' शब्द का प्रयोग किया है -

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।

मम हित लागि जनम इन्ह धारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे।।

सामाजिक दृष्टि से निम्न जाति के अपने सहायकों को 'सखा' रूप में संबोधित करके एवं उन्हें भरत से भी अधिक प्रिय मानकर राम ने उनमें आत्मगौरव का भाव जागृत किया है। निःसन्देह महानायक द्वारा

साधारण व्यक्तियों के प्रति ऐसी आत्मीयता उनमें आत्म-सम्मान जागृत करने का अपूर्व उदाहरण है। तुलसी की भक्ति-भावना, लोक-चेतना से सम्पृक्त हैं। उनका भक्ति-मार्ग ठोस सामाजिक दर्शन पर आधृत है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन-जगत् से विमुख नहीं हैं, वह लोकान्मुख हैं। वह सभी के जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए हैं। भक्ति के प्रसंग में भी तुलसी मानव-सत्ता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं-

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब तें अधिक मनुज मोहि भाए।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ सुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धर्म अनुसारी॥
इसी क्रम में वे ब्राह्मणवाद को एक ही झटके में तोड़ते हुए कहते हैं -

भगतिहीन बिरचिं किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥
तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए तुलसी ने लिखा है -

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोह।
सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥
तथा - तुलसी भगत सुपय भलो, भजै रैन दिन रामा
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नामा॥

यहाँ कवि न तो द्विजत्व का समर्थन कर रहा है और न सनातनता का। वह समर्थन कर रहा है, समग्र लोक का, उपेक्षित का, त्याज्य का, हीन एवं सामाजिक न्याय से वंचित जन-समुदाय का।

तुलसी की भक्ति-भावना में लोक-चेतना की इतनी छाप है कि वह जाति-पाँति, कुल, धर्म, यश, धन, बल आदि की क्षुद्र परिधि से बहुत दूर-सर्व-सुलभ है। शबरी-प्रसंग में तुलसी ने कहा है -

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मुहुँ मैं अतिमंद अधारी।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानहुँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुण चतुराई।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

इस प्रकार के सर्व-सुलभ, भक्ति-मार्ग के द्वारा तुलसी ने उच्च वर्णों के कर्मकाण्डीय धर्म के स्थान पर लोक-धर्म को स्थापित किया है, जिसका मूलाधार है प्रेम। तुलसी के इष्ट श्रीराम प्रेम के इच्छुक हैं, न कि कर्मकाण्ड के -

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेइ जो जाननिहारा॥ यही प्रेम-
तत्व तुलसी की भक्ति-भावना का मूल है और उनकी लोक-चेतना का

बीज-भावा इस प्रकार, यह मान्य है कि 'उन्होंने भक्ति के आधार पर जनसाधारण के लिए धर्म को सरल और सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़ें हिला दी।' तुलसी इससे एक कदम आगे बढ़कर किसी सम्प्रदाय या जाति के राम-भक्त (राम के दास) को राम से भी बढ़कर बताते हैं -

मोरे मन प्रभु अस बिसवासा। राम तें अधिक राम कर दासा॥

मध्यकालीन भक्ति-युग में जन-प्रतिष्ठा की यह पराकाष्ठा है। तुलसी की भक्ति में मानवीय सहानुभूति और करुणा का स्वर मुखर है। उनकी कवितावली लोक-पीड़ा की मर्यान्तक गाथा है। तुलसी समकालीन जनमानस की पीड़ा को देखकर विचलित तथा अभिभूत हैं। वे अपने इष्टदेव श्रीराम के रूप में आश्रयविहीन समस्त जन साधारण को उस पीड़ा से मुक्ति का आलम्बन प्रदान करते हैं। वे पेट की आग को बुझाने के लिए भी अपने 'राम घनश्याम' को ही समर्थ मानते हैं -

'तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें।'

आगि बड़वागि तें बड़ी है आग पेट की॥

वस्तुतः, अपने इष्टदेव के प्रति इतनी सान्द्र आस्था और अविचल निष्ठा के कारण ही तुलसी ने अपने आदर्श के अनुरूप अपनी भक्ति-भावना को लोक-चेतना के रंग से सराबोर किया है। वह लोक-जीवन की आचार संहिता का प्रतिमान बन गई हैं।

विमल-विवेक-सम्पन्न तुलसी की रचनाओं में भी उनकी धारणा मिलती हैं, जिसका विश्लेषण भिन्न-भिन्न विद्वानों ने क्रमशः अद्वैतवाद, विषिष्टाद्वैतवाद, सांख्यवाद, योगवाद आदि के आधार पर किया है, किन्तु उनकी दार्शनिक विचारधारा के केन्द्र में भी लोक-चेतना का भाव निहित है। उनका दर्शन निराशावादी न होकर पूर्णतः आशावादी है। उसमें निष्क्रियता के लिए कोई स्थान नहीं है। वस्तुतः तुलसी की दार्शनिकता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि उसका आधार मानवतावादी जीवन-दृष्टि है। तुलसी का ब्रह्म परोक्ष सत् सत्ता भी है। उसकी स्थिति काष्ठगत अग्नि एवं काष्ठबहिर्गत अग्नि के सदृश है - एक दारुगत देखिए एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

इस प्रकार तुलसी की मान्यता है कि परोक्ष सत्ता (निर्गुण ब्रह्म) जितनी सत्य है उतनी ही प्रत्यक्ष सत्ता (सगुण ब्रह्म) भी। तुलसी ने अद्वैतमार्गी दार्शनिकों, गोरखपंथी योगियों तथा कबीर आदि निर्गुणमार्गी संतों द्वारा प्रतिपादित जागतिक जीवन की असत्यता का खण्डन विदेहराज जनक द्वारा कराया है -

झूठो है झूठो है झूठो सदा सब संतक हंत है अंत लहा है।

जनकी जीवन जानि न जान्यों तौ जानि कहाय के जान्यों कहा है।

तुलसी के राम ने स्वयं अपने मुखारविन्द से नररत्नों की ऐसी सुन्दर क्रीड़ा स्थली भवसागर का मुक्तकंठ से महिमागान किया है -

प्रभुदित हृदय सराहत भल भवसागर।

जहैं उपजहिं अस मानिक विधि बड़ नागर।।

तुलसी ने जनसाधारण को कर्म-क्षेत्र में निरन्तर संघर्ष करते हुए दुःप्रवृत्तियाँ का दमन करके परलोक के साथ इहलोक को भी समुन्नत बनाने का परामर्श दिया है -

घर कीन्हें घर जात हैं, घर छोड़े घर जाय।

तुलसी घर बन बीच ही, रहिय प्रेम पुर छाया।।

वास्तव में, तुलसी इहलोक (प्रत्यक्ष जगत) को सीताराममय देखते हैं -

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।

सीय राममय सब जग जानि करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

इस प्रकार, ब्रह्म राम को लोक में देखने से संत-स्वभाव-तुलसी लोक को भी ब्रह्म राममय देखते हैं। यह तुलसी का महाभाव है। जो लोग इस संसार को वर्गों, जातियों, धर्मों, नस्लों, क्षेत्रों आदि में बाँटकर देखते हैं एवं इस प्रकार के कर्म से स्वार्थ-सिद्धि करते हैं, उनमें ऐसा महाभाव नहीं पैदा हो सकता है।

संसार को सीताराममय देखने वाले तुलसी उसकी (संसार-विटप) स्तुति करते हैं -

पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमाम हैं।

इसी के साथ उन्हें मानव-जीवन पर गर्व है, भारत-भूमि पर गर्व है। भारत-जैसा देश, गंगा-जैसी नदी, चित्रकूट तथा हिमालय-जैसा पर्वत, काशी, प्रयाग और अयोध्या-जैसे नगर हम सभी के लिए काम्य है। तुलसी जनसाधारण को अपने प्रिय भारत देश, उसकी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहर एवं इनसे युक्त राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ते हैं -

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।

करषा तजि कै परूसा बरसा, हिम मारूत घाम सदा सहि कै।।

जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।

नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै।।

तुलसी 'जीव' को ईश्वर का अंश मानकर उसे भी सत्य एवं नित्य मानते हैं -

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

इसी प्रकार, तुलसी का दर्शन जीवन की स्वीकृति का दर्शन है, जीवन-संग्राम में संघर्ष का (स्वान्तस्तमषान्तये) दर्शन है। वे जनसाधारण को जीवन से निराश करने या भयभीत करने हेतु मृत्युगान नहीं कर रहे थे। वे उनको राम-कृपा की डोर थमा रहे थे, जिससे वे इस संसार में रहते हुए भी मुक्ति पा सकें। संत-समाजरूपी तीर्थराज एवं राम-भक्ति सुरसरिता में स्नान कराकर जनसाधारण को त्रिताप से मुक्ति दिलाना तुलसी की दार्शनिक विचारधारा के मूल में निहित है। उनकी दार्शनिक अवधारणा की संजीवनी-शक्ति मानवमात्र की मंगल-भावना है।

तुलसी के समाज-दर्शन की आत्मा लोक-चेतना की भावना है। समाज में जन सामान्य की सम्मान प्रतिष्ठा के प्रति तुलसी पूर्णतः प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने अपने इष्ट श्रीराम एवं अन्य पूज्य-पात्रों के कार्यों द्वारा इसे संपादित कराया है। राम समाज में उपेक्षित, त्याज्य, हीन एवं निम्न समझे जाने वाले साधारण जन से जुड़ते हैं। निषादराज, केवट जिसे अस्पृश्य माना जाता था - लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुह लेइअ सींचा।

राम उसे 'सखा' का पद देते हैं एवं भरत के समान भाई भी कहते हैं -

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहत पुर आवत जाता।।

भरत भी केवट से मिलने हेतु रथ का त्याग करते हैं एवं उसे लक्ष्मण-जैसा मानकर भेंटते हैं -

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा।।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाहा।

मनहुँ लखन सन भेंट भह प्रेम न हृदय समाइ।।

इसी प्रकार, अयोध्या की राजमाताओं एवं नगर के नर-नारी सभी ने उसे देखकर इस प्रकार सुख प्राप्त किया मानों उन्हें लक्ष्मण ही दिखायी पड़ गये हों -

कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी।।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सम लाख बरीसा।।

निरखि निषादु नगर नर नारी। भये सुखी जनु लखनु निहारी।।

जब गुरु वशिष्ठ केवट से बरबस मिलते हैं और तुलसी उस दृश्य का वर्णन करते हैं, तब लगता है कि समाजवाद साकार रूप में प्रकट हो रहा है -

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू।।

राम लखा रिसि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेता।।

वस्तुतः, तुलसी के इस चित्रण में लोकमत और वेदमत का मणि-

कांचन योग है। उनका काव्य लोकमत एवं वेदमत का समन्वयात्मक सुमन है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी कविता-रूपी सरयू 'लोकमत' और 'वेदमत' के मंजुल कूलों के बीच ही प्रभावित हुई है -

चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो।
सरयू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला।।

'लोकमत' से तात्पर्य सामान्य जनता के जीवन में स्वीकृत सरल सामाजिक आचार-विचार, रहन-सहन, वेष-भूषा एवं समग्र जीवन में व्यावहारिक मूल्यों का समावेश है। इसका कोई स्वतः निश्चित सर्वमान्य एवं कठोर ठोस रूप नहीं हुआ करता है। यह साधारण जनता की सरल-तरल जीवन-पद्धति का रूप है। वेदमत सांस्कृतिक जीवनयापन की परम्परा है। परम्परानुमोदित आचार-विचार, नैतिक मानदंड, जीवन-दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि विषय वेदमत के अन्तर्गत आते हैं। तुलसी के काव्य में लोकमत एवं वेदमत के समन्वय का रहस्य मानवीय जीवन-मूल्यों के औचित्य-अनौचित्य का निर्देशन है। केवट अपनी जातिगत हीनता के कारण लोकमत की मर्यादा का निर्वाह करते हुए महर्षि वशिष्ठ को दूर से ही दंडवत प्रणाम करता है। तुलसी उसके इस कार्य से लोकमत (लोकव्यवहार) के औचित्य को निर्देशित करते हैं। वहीं महर्षि वशिष्ठ 'राम-सखा' केवट को बरबस हृदय से लगाकर अपनी महानता का परिचय देते हुए वेदमत का निर्वाह करते हैं।

वस्तुतः, तुलसी के काव्य में लोकमत एवं वेदमत के समन्वय वाले प्रसंगों में भी लोक-चेतना की भावना उजागर हुई हैं। 'लोक' एवं 'वेद' के मत में विषमता की स्थिति उत्पन्न होने पर तुलसी ने वेदमत की अपेक्षा लोकमत की व्यावहारिक उपयोगिता को अधिक महत्व प्रदान किया है। श्रीराम के प्रति अपनी अविचल निष्ठा एवं अनन्य सम्बन्ध का साक्षी तुलसी ने लोक को ही बनाया है और राम के समक्ष अपनी लोक-निष्ठा को प्रश्न के रूप में प्रस्तुत कर दिया है -

लोक कि बेद बड़ेरो।

वास्तव में, तुलसी लोक (जनसाधारण) के कवि हैं। उनके राम जननायक हैं। वनवास की अवधि में राम ऋषि-मुनियों के आश्रम में रहने के बजाय समाज में त्याज्य कोल-भीलों के साथ अधिक रहते हैं। उन्हें आदर देकर सम्मान पाते हैं। वहाँ वे मनुष्यता के चरम बिन्दु पर हैं।

जब उन्हें माता कैकेयी एवं पिता दशरथ द्वारा वनवास दिये जाने की जानकारी हुई थी, तब उन्हें किसी प्रकार का दुख नहीं हुआ था, वरन् उन्होंने अपनी माता कौशल्या से कहा था कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है (वनवास नहीं दिया है), जहाँ मेरा बहुत कार्य है -

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

वह कार्य क्या था? वह कार्य समाज में उपेक्षित जनों के दुख-दर्द को दूर करना, कोल-भील-निषाद आदि जातियों को निर्भय कर उनमें आत्म-सम्मान का भाव जागृत करना था। राम उन लोगों को निर्भय करने तथा समाज में गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत करने हेतु ऊपर उठाने का संकल्प ले चुके थे, जो पीड़ित और पद दलित थे -

निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।

तुलसी ने बार-बार राम को 'दीन पालक' एवं 'गरीब-नेवाज' कहकर पुकारा है -

तुलसी एते जानिये, राम गरीब नेवाज।।

तुलसी के गरीब नेवाज राम ने कोल-भील-निषाद प्रभृति आदिवासियों के साथ रहते हुए वन में जिस वन-राज्य को स्थापित किया, वह मानों उनके द्वारा वनवास-अवधि की समाप्ति के पश्चात अयोध्या में स्थापित राम-राज्य की पूर्व पीठिका है। तुलसी ने उस वन-राज्य की विशेषताओं का बड़ा ही मनोहारी चित्रण 15 अध्यायों एवं दो दोहों में किया है।

यह तुलसी का मौलिक समाज-दर्शन है, जिसमें वर्ण और जातियाँ तो हैं, किन्तु उन्हें जोड़ने वाला तत्व 'प्रेम' सर्वोपरि है। प्रेम सारे सामाजिक बंधनों को तोड़कर सभी को एक भाव-भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है। वस्तुतः तुलसी के राम-राज्य की कल्पना सामाजिक-राजनीतिक वैषम्यों से मुक्ति का प्रयास है। इसीलिए तुलसी का स्वप्न श्रमिक जनता के लिए धरोहर है, जिनसे प्रेरित होकर वह समाजवाद की ओर मंजिल-दर-मंजिल बढ़ते जाएँगे।

सचमुच, अपने युग की नारकीय अक्षमता की थोथी आलोचना न करके उन्होंने उसके निदान के लिए 'रामराज्य' के रूप में एक ऐसा यूटोपिया विनिर्मित किया, जिसका सानी शायद ही किसी साहित्य में मिले। किन्तु उसकी कल्पना करके तुलसी ने मनुष्यता को बौनी होने से बचा लिया है। यदि मनुष्य वैसे राज्य की कल्पना करने में भी अपने को असमर्थ समझेगा तो निस्सन्देह मानवता बौनी एवं अपंग हो जायेगी।

तुलसी के लोक-नायक राम समाज में उपेक्षित पुरुष-वर्ग में आत्म-सम्मान का भाव जागृत नहीं करते हैं, अपितु उपेक्षित नारियों के प्रति भी उनके हृदय में करुणा एवं सहानुभूति है। शबरी भील जाति की 'अधम ते अधम, अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं अतिमंद अधारी' है। राम यह सब कुछ जानते हैं, किन्तु उसके जूठे बेर को प्रेमपूर्वक खाते हैं। उसे 'भामिनि' कहकर संबोधित करते हैं -

जनक सुता कह सुधि-भामिनी। जानहि कहु करिबर गामिनी।।

इसी प्रकार, अहल्या जो देवराज इन्द्र द्वारा छली गयी है, अपने

पति महर्षि गौतम द्वारा परित्यक्त की गयी है - जिस पाप-कर्म में उसका अपराध न होकर इन्द्र का अपराध है, फिर भी पति द्वारा उसे ही दण्ड दिया जाता है और दुष्कर्मी इन्द्र के पापकर्मों का फल भोगने के लिए जो विवश है - को राम ने पुनः नारी की गरिमा प्रदान की।

इस संदर्भ में समस्त संसार की सीताराममय देखने वाले समद्रष्टा कवि तुलसी की निम्न पंक्ति को भी देखना चाहिए कि नारी के प्रति उनमें कितनी सहानुभूति एवं करुणा है -

कत बिधि सृजि नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।

समूची नारी-जाति के प्रति इतनी करुणामयी उक्ति हिन्दी साहित्य में शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो। इसी सहानुभूति के कारण तुलसी ने स्त्रियों के लिए भक्ति का मार्ग, उपासना का द्वार खोल दिया। 'राम से मिलने, उनका स्वागत-सत्कार करने, उनका स्नेह पाने में स्त्रियाँ सबसे आगे रहती हैं।' चाहे जनकपुर हो, चाहे चित्रकूट का मार्ग हो, हर जगह इनकी ही भीड़ दिखायी देती है। जितनी आत्मीयता तुलसी ने परस्पर ग्रामीण स्त्रियों और सीता में दिखायी है, उतनी राम, भरत या निषाद में भी नहीं दिखाई। कथा-प्रसंग में जहाँ भी अवसर सुलभ हुआ है, तुलसी नारी-समाज का चित्रण करना नहीं भूलते। वनवास के समय में अनुसूया ही सीता को आशीष नहीं देती है, अपितु ग्रामीण स्त्रियाँ भी उन्हें आशीष देती हैं - अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहु विधि देहिं असीसा।

सदा सोभागिनि होहु तुम, जत लगि महि अहि सीसा। यह है तुलसी का सामान्य नारियों के प्रति निष्ठा भाव। कहाँ सीता का सामाजिक स्तर और कहाँ गाँव की साधारण नारियों की मलिनावस्था। तुलसी ने अपने काव्य में ऐसे मिलन-प्रसंगों में अपनी लोक-चेतना की भावना को पूर्णता के साथ उकेरा है।

गोस्वामी तुलसीदास युगद्रष्टा कवि थे। उन्होंने तत्कालीन समाज में नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश साधारण जनता की दरिद्रता, भुखमरी, बेरोजगारी आदि का चित्रण करते हुए समाज की आर्थिक विषमता एवं प्राकृतिक आपदाओं - अकाल, दुर्भिक्ष आदि का मार्मिक वर्णन किया है। "मध्यकालीन समाज-व्यवस्था में जनता की गरीबी, महामारी आदि का वास्तविक चित्रण करने वाले तुलसी इस युग के सबसे बड़े यथार्थवादी कवि हैं, इसमें संदेह नहीं है।"

समकालीन साधारण जनता की पीड़ा को देखकर छटपटाने वाले एवं यथार्थ को वाणी देने वाले तुलसी कभी भी अप्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। आज भारतीय जनतंत्र में भी जीविकाविहीन चिन्तातुर भीड़ एक-दूसरे से यही पूछती है - 'कहाँ जाई का करी।' राजनेताओं द्वारा बेरोजगारी, गरीबी आदि को हटाने के लिए अनेक खोखले वादे (दावे) किये जाते हैं, किन्तु सब निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं। आज भी भारत तुलसी

के युग का वह संकट झेल रहा है, किन्तु उस पीड़ा का अनुभव कर छटपटाने वाला लोक-चेतना-सम्पन्न तुलसी-जैसा कवि अब दुर्लभ है। तुलसी ने गरुड़ से यह प्रश्न पुछवाया कि -

बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोई संदेपहिं कहहु बिचारी।। मानव-जाति के लिए सबसे बड़ा दुख क्या है? तुलसी की चिन्ता यहाँ स्पष्ट है। उन्हें सम्पूर्ण मानव-जाति की चिन्ता है और बतलाते हैं -

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।

अभावपूर्ण जीवनयापन अर्थात् दरिद्रता से बढ़कर और कोई दुख दुनिया में नहीं। तुलसी इस तथ्य से भली-भाँति अवगत हैं कि पेट की आग अर्थात् बुभुक्षा बड़वाग्नि से भी गहन और भयंकर है -

आगि बड़वागि ते बड़ी है आग पेट की।।

पेट की आग में जलता व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता है?

'बुभुक्षितं, किं न करोति पापम्।' समाज के शोषक वर्ग द्वारा शोषित होने पर वह स्वयं परिवारजनों का शोषक बन जाता है। शोषक की प्रक्रिया में समाज का सबसे असहाय एवं निरीह आर्थिक दरिद्रता के कारण समाज में उत्पन्न शोषण, अत्याचार, दुराचार आदि के कारण दुखी तुलसी अपने युग के सबसे बड़े लोक-चिन्तक होने के कारण भौतिक संकट के इस संवेदनशील प्रश्न पर चुप नहीं हैं।

गोस्वामी तुलसीदास विरागी, नहीं अनुरागी कवि हैं। इसलिए उन्होंने सामाजिक जीवन का निषेधात्मक पक्ष ही प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु जनसाधारण में जीवन के प्रति आशा, उमंग एवं अनुराग उत्पन्न करने के लिए उनके समक्ष आर्थिक रूप से सम्पन्न समाज का कल्पित चित्र भी रखा है। उनके रामराज्य में किसी भी प्रकार की विषमता नहीं है। उस राज्य में कोई दुखी और दरिद्र नहीं है -

नहिं दरिद्र कोई दुखी न दीना।।

जनसाधारण के जीवन-स्तर को समुन्नत बनाने के लिए उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना आवश्यक होता है, क्योंकि 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति', साथ ही किसी भी देश की अर्थ-व्यवस्था देश की जनसंख्या एवं श्रम-विभाजन के सिद्धान्त से प्रभावित होती है। तुलसी दृष्टि इस समस्या पर भी केन्द्रित है। उनके राजा राम के दो पुत्र हैं और उनके भाइयों के भी दो-दो पुत्र हैं -

दुह सुत सुन्दर सीता जाए। लव कुश बेद पुरानन्ह गाए।।

दुह दुहं सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।।

तुलसी का अर्थ-दर्शन, कर्म-सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। जो जिस प्रकार का कर्म करता है, उसे उसी प्रकार के फल की प्राप्ति होती है। इसका प्रतिपादन कर तुलसी ने जनसाधारण में कर्म करने की प्रवृत्ति

जगायी, ताकि जीवन-स्तर सुधर सके -

करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तस फलु चाखा।

वस्तुतः, यह तुलसी द्वारा प्रतिपादित योग्यतानुपाती कर्म-सिद्धान्त है। तुलसी जनसाधारण को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। उनके आराध्य राम एवं वंदनीया सीता भी कार्य करते हुए दिखलाये गये हैं। लंका-विजय के पश्चात जब राम, सीता एवं लक्ष्मण सहित अपने दल-बल के साथ अयोध्या आते हैं, तब उनके राज्याभिषेक की तैयारी होती है। अयोध्या के राजसेवक राम को स्नान कराने, उनकी उलझी हुई जटाओं को सुलझाने तथा उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करने के लिए आते हैं, किन्तु राम उन्हें लौटा देते हैं और उन्हें आदेश देते हैं कि स्नान का श्रीगणेश राजा से नहीं, उनके मित्रों से किया जाए -

राम कहा सेवकन्ह बोलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥

दुख के दिनों में साथ देने वाले सखाओं को राम सुख के अवसर पर भूलते नहीं हैं, अपितु उनका सम्मान और उनकी सेवा अपने से भी पहले करते और करवाते हैं। सखावृन्द के पश्चात राम भरत को बुलाते हैं और उनकी जटाओं को अपने हाथ से सुलझाते हैं। उसके बाद तीनों भाइयों को स्नान कराते हैं। सखाओं और भाइयों को स्नान कराने के बाद राम अपने हाथ से अपनी जटाओं को सुलझाते हैं और स्नान करते हैं। उधर सीता सासुओं को स्नान कराकर उनके अंग-अंग में दिव्य वस्त्र तथा आभूषण सजाती हैं -

पुनि करुणा निधि भरत हँकारें। निज कर राम जटा निरू आरे॥

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥

पुनि निज जटा राम बिखराए। गुरु अनुशासन माँगि नहाए॥

करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग-अंग कोटि छबि लाजे॥

सासुन्ह सादर जानकिंहि मज्जनु तुरंत कराइ॥

दिव्य बसनबर भूषन अंग-अंग बनाइ॥

यद्यपि राज्य-वैभव के समस्त साधन राज-परिवार में उपलब्ध हैं, किन्तु सीता अपने गृह की परिचर्या स्वयं करती हैं-

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी॥

थनज कर गृह परिचरजा करइ। राम चन्द्र आयसु अनुसराई॥

कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवक सबन्हि मान मद नाहीं॥

तुलसी का अर्थ-दर्शन और उसमें निहित उनकी लोक-चेतना की भावना दोहावली के अनेक दोहों में उपलब्ध है। उसमें कृषि-विषयक पचासों दोहे हैं। तुलसी उच्च कृषि-जीवन की सार्थकता के प्रति आस्थावान हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि जनसाधारण का जीवन कृषि पर

ही आधृत है। तुलसी जन सामान्य की जीवन-पद्धति, ग्राम्य-जीवन की सार्थकता एवं पंचायती राज-व्यवस्था पर बल देते हैं -

मुखिया मुख सो चाहिए, खानपान कहूँ एका।

पालइ पोसइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेका॥

उपर्युक्त दोहा सार्वजनिक वितरण-प्रणाली के सिद्धान्त को ओर संकेत करता है, जिससे जन सामान्य का कल्याण हो।

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य-संसार और सृजनात्मक व्यक्तित्व बहुआयामी एवं विषद है। उनके काव्य का कलेवर मात्र भक्ति, नैतिकता, आदर्शवादिता, दार्शनिकता एवं कलात्मकता से ही मंडित नहीं है, अपितु लोकदर्शी तुलसी ने समकालीन राजनैतिक उथल-पुथल, शासकों की महत्वाकांक्षा, स्वेच्छाचारिता, धार्मिक संकीर्णता एवं जनसाधारण की उत्तरोत्तर विकृत होती हुई स्थिति का भी चित्रण अपने काव्य में किया है। उनका काव्य राजनीतिक दृष्टि से पीड़ा भोगते हुए जन सामान्य का दो टूक विवरण प्रस्तुत करता है। तुलसी ने किसी शासक का नाम उल्लेख किये बिना, जनसाधारण के साथ जिस प्रकार का राजनीतिक व्यवहार किया जा रहा था, उसका मार्मिक वर्णन 'मानस', 'दोहावली' एवं 'कवितावली' में किया है। सामान्य जनता का शोषण तत्कालीन शासकों एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा हो रहा था। तुलसी से चुप नहीं रहा गया। उनका मानस पुकार उठा -

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करिदंड बिडंब प्रजा नितहीं।

उस समय के राजाओं को तुलसी ने निर्भीकतापूर्वक प्रजासन (प्रजा-भक्षी) तथा भूमि-चोर कहा है -

द्विज श्रुति बेचक भूप्रजासना। कोउ नहिंमान निगम अनुशासना।

बेद धर्म दूरि गए, भूमिचोर भूप गए।

शासकों की दण्डनीति से पीड़ित निरीह जनता का उल्लेख करना तुलसी नहीं भूलते -

सम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराला।

उस समय सरकारी अमले सरकार की अपेक्षा जनसाधारण पर तीन गुना अधिक अत्याचार करते थे, सज्जनों से टेढ़ा व्यवहार करते थे, सम को भी विषम बना देते थे और सब काम बिगाड़ देते थे। ये अमले सरकार की तुलना में अधिक चोट पहुँचाते थे, जैसे हाथ की अपेक्षा हाथ की तलवार अधिक घातक होती है।

कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाडा।

उस समय जनसाधारण राजसमाज के छल-बल से निरन्तर शोषित एवं उत्पीड़ित हो रहा था -

काल कराल नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोइ छली है।

और भी, प्रीति सगाई सकल विधि वनिज उपाय अनेका।

कल बल छल कलि मल मलिन उहकत एकहिं एक।।

लोक-हितैषी तुलसी जनसाधारण की इस दुर्दशा को देखकर तिलमिला उठे थे, क्योंकि वे परहित को सबसे बड़ा धर्म मानने वाले संत थे -

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

लोक-कल्याण के लिए आत्म-बलिदान करने वाले को वे स्तुत्य मानते हैं -

परहित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेहि।।

इसलिए लोक-पीड़क एवं निरंकुष राजा के प्रति तुलसी क्रमशः अपयश का, नाश होने का एवं नरक-प्राप्ति का उद्घोष करते हैं-

जासु राज प्रिज प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

वनवास के पश्चात राम ने अवध का शासन-भार ग्रहण किया। उनका राज्य धनबल एवं बाहुबल पर अवलम्बित न होकर प्रेम पर स्थापित था। वे जनमत का सम्मान करते थे। इसलिए राम ने स्पष्ट कहा कि प्रजा यदि मेरे दूषण देखे तो मुझे वर्जित करें -

जौं अनीति कछु भाखुँ भाई। तौ मोहि बरजेउ भय बिसराई।।

वस्तुतः तुलसी शासक में प्रजा के प्रति इतना ही सम्मान देखना चाहते थे, जो उनके समय में असम्भव था। तुलसी का यह प्रजा-पक्ष उनकी लोक-चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सत्यतः, ऐसा आत्मालोचन और जनसत्ता का आदर अन्यत्र दुर्लभ है। आज सामाजिक न्याय की दुहाई देने वाले और भ्रष्टाचार में डूबे इस लोकतंत्र के सत्ताधीशों की ओर उँगली उठाकर देखिये तो? कौन जनमत का समादर करने अथवा अपने गिरेबाँ में झाँकने को तैयार है? ये तो तुलसी के लोक-नायक राम हैं, जो सभासदों के सामने धड़ल्ले से जनमत के सम्मान को शब्दशः और कार्यरतः स्वीकार करते हैं। तुलसी के राम अयोध्या के जनसाधारण का ही सम्मान नहीं करते हैं, अपितु बालि-वध एवं रावण-वध के उपरान्त किष्किंधा एवं लंका को अधीन न कर, वहाँ के नृपतियों - सुग्रीव तथा विभीषण को अपना अधीनस्थ सामंत न बनाकर, वहाँ की साधारण जनता को भी सम्मानपूर्वक जीने का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसे उदाहरण विश्व इतिहास में दुर्लभ हैं। राम जैसे लोकनायक से ही इस बात की अपेक्षा की जा सकती है कि वह सेवक की बात का और जनसाधारण की भावना का सम्मान करें -

भरत बिनय सादर सुनिम करिअ बिचारि बहोरि।

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामराज्य के जिस राजनैतिक चरित्र का चित्रण किया है, वह विश्व के किसी भी लोकतंत्र के लिए आदर्श स्वरूप है, कारण यह कि उस रामराज्य का प्रत्येक नागरिक भयमुक्त, भूखमुक्त, शोषणमुक्त, त्रितापमुक्त जीवन व्यतीत करता है। यही तुलसी की विश्व के लिए कामना है। विश्वात्मभाव वाले गोस्वामी तुलसीदास के 'स्वान्तः सुख' में 'सर्वान्तः सुख' निहित है। उनके लिए काव्य और मंगल दोनों एक-दूसरे में समाहित हैं। तुलसी - 'कीरति भनिति भूति भलि सोईः सुरसरि सम सब कहँ हित होई' की शुभ संकल्पना के प्रति प्रतिबद्ध हैं। सुरसरि के समान सबका हित चाहने वाले तुलसी राम के पास भेजी अपनी विनय की व्यक्तिगत पत्रिका में भी जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कह उठे हैं -

दीन दयालु दुरितः दारिद दुख दुनी इसह तिहुँ ताप तई है।

देव दुआर पुकारत आरत सबकी सब सुख हानि भई है।।

इसलिए 'तुलसी हमारे जातीय जन जागरण के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कविता की आधारशिला जनता की एकता है। तुलसी समाज को वर्गों, जातियों, धर्मों, नस्लों और क्षेत्रों आदि की संकीर्ण परिधि में बाँटकर देखने वाले नहीं है। उनका साहित्य लोक-चेतना की समग्रता का साहित्य है। आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार तुलसी ने प्राप्त परम्परा से 'संग्रह त्याग' किया था, उसी तरह हमें भी तुलसी-साहित्य से 'संग्रह त्याग' करना चाहिए, जिसका अधिकार हमें तुलसी ने दे रखा है -

मनिभाजन मधु पारईः पूरन अभी निहारि।

का छाँड़ियः का संग्रहियः कहहु बिबेक बिचारि।।

वस्तुतः, तुलसी का काव्य लोक-चेतना की दृष्टि से अनूठा है। इसी भावना के कारण तुलसी का रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। इसमें देश के जनमानस की पीड़ा एवं व्यथा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उससे मुक्ति के लिए साधन रूप में धर्म-रथ का रूपक बाँधा गया है और जीवन के लिए रामराज्य की आकांक्षा व्यक्त की गयी है। इस प्रकार, लोक मंगल और लोक-चेतना की उदात्त भावना के कारण गोस्वामी तुलसीदास और उनका काव्य भारत के लिए ही नहीं, वरन् विश्व के लिए भी कभी भी अप्रासंगिक नहीं हो सकते।

❖

वरिष्ठ प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय,
श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखण्ड। मोबाइल - 9411533300

महाभारत के मिथक और भारतीय साहित्य

डॉ. रेखा उप्रेती

“चिंतामणि विनायक वैद्य के अनुसार महाभारत का प्रथम रचनाकाल ईस्वी पूर्व 3031 और अंतिम रूप ईस्वी पूर्व 320 से 200 के बीच का है। (‘महाभारत मीमांसा’) ग्रन्थ को पूर्ण विकसित रूप लगभग सात सौ वर्षों में मिला। इस लम्बी अवधि में अनेकानेक आख्यान, उपाख्यान, प्रसंग, नीतिकथाएँ, उपदेशात्मक सन्देश, विविध देवी- देवताओं की महिमा से जुड़े प्रसंग और न जाने क्या-क्या जुड़ता रहा और इस प्रकार व्यास की अद्भुत रचनात्मक प्रतिभा से परिकल्पित और अंकुरित तथा वैशम्पायन और उग्रश्रवा की महती प्रतिभाओं से विकसित इस महाग्रंथ में अनेक अज्ञात, अनाम रचनाकारों का भी सृजन समाविष्ट होता रहा और महाभारत को उसका वर्तमान प्रचलित रूपाकार मिला जिसे विश्वभर में महर्षि व्यास रचित ‘महाभारत’ के नाम से जाना जाता है।”

भारतीय जीवन और दर्शन को समग्रता में प्रतिबिम्ब करता महाकाव्य ‘महाभारत’ ऐसा आकर ग्रंथ है जो सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को निरंतर प्राणवायु देता रहा है। रामायण की कथा और चरित्र जहाँ भारतीय जीवन के आदर्श रूप को सामने रखते हैं वहीं महाभारत जीवन के छल-छंदों, व्यक्ति के अंतर्विरोधों, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम-करुणा, मित्रता-शत्रुता, कुंठाओं, महत्वाकांक्षाओं आदि अनेकानेक मनोभावों, मनोविकारों, स्थितियों, परिस्थितियों के विविधवर्णी रंगों-रूपों में प्रतिभाषित होता है। महाभारत की कथाएँ और चरित्र सीधी सरल रेखाओं से बने नहीं हैं, अच्छे-बुरे साँचों में ढले नहीं हैं। वे जटिल संरचनाओं से युक्त हैं। उनकी बुनावट जीवन के उलझे-सुलझे सूत्रों को समझने और उनके बीच राह बनाते चलने की अनवरत यात्रा है। बने

बनाए निष्कर्षों की जगह गहन प्रश्नाकुलता महाभारत का केन्द्रीय भाव है। हजारों वर्ष के जीवनानुभव और उनसे उपजे संवेदनात्मक ज्ञान को सहेजकर महाभारतकार ने मानो कथाओं में ढाल दिया है। जिससे यह महाग्रंथ भारतीय समाज और संस्कृति के संश्लिष्ट रूप को संजोए हुए है। प्रत्येक भारतीय भाषाभाषी समाज अपने अनुत्तरित प्रश्नों की गूँज महाभारत में सुनता और गुनता रहा है। भारतीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध करने वाली अनेकानेक महत्वपूर्ण रचनाएँ महाभारत के मिथकीय आख्यानों का आश्रय लेकर लिखी गयी हैं।

विस्तृत और गहन फलक पर आधारित बहुआयामी रचना ‘महाभारत’ भारतीय मिथकों का अनंत खजाना समेटे हुए है। इतिहास और मिथक के अद्भुत गुम्फन से रचित यह कृति विशालता, विविधता और अर्थवत्ता में अपना सानी नहीं रखती। जहाँ तक मिथकीय सन्दर्भों का सवाल है, इसकी मूल कथा अर्थात् कौरवों और पांडवों की युद्ध-कथा से लेकर इसमें अंतर्गर्भित अवांतर कथाओं तक सब-कुछ मिथक की अद्भुत सृजनशीलता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कोई भी कथा, प्रसंग, चरित्र मिथकीय जादू से अछूता नहीं है, लेकिन फिर भी जीवन जगत के यथार्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ है। वरदानों और शापों की अनवरत कड़ी पूरी रचना को अद्भुत मोड़ों तक ले जाती है और कथा को कौतूहल, जिज्ञासा, रोमांच के शिखर पर पहुँचा कर छोड़ देती है। मगर करुणा, जिजीविषा, वीरता, साहस, प्रेम, त्याग, कुंठा, निराशा, ईर्ष्या जैसे ठोस मानवीय अनुभव उसे इसी धरती के वास्तविक जीवन, संबंधों, जटिलताओं, संघर्षों से जोड़े रखते हैं। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में – “ये सारे मिथक-कर्म दुष्कर मार्ग को सुगम करते, अज्ञात रहस्यों को खोलते, संकेत देते, उपदेश देते, वस्तु या पात्र को प्रतीकीकृत करते, असंभव को संभव बनाते, दैवीय या आध्यात्मिक शक्तियों की प्रतीति कराते, कथा सूत्र को जोड़ते और कथा को गति देते हैं। साथ ही किसी की रक्षा करने, उठाने, गिराने जैसे नैतिक प्रश्नों का समाधान करने, लक्ष्य सिद्ध करने, असंगत को युक्तिसंगत करने, सीख देने, दैवीय तत्व की प्रतीति करने जैसे पचासों उद्देश्यों के लिए मिथक रचे गए हैं। ये काव्य की

रचनात्मक युक्तियाँ भी हैं और बृहत्तर अर्थों में नियति के रहस्य भी। मनुष्य के महास्वप्न को एक रूपाकार देने का, मनुष्य को ढाढस बँधाने का भी एक विचित्र माध्यम हैं- मिथका।” यही कारण है कि मिथक की अविश्वसनीय प्रतीत होने वाली असंगतियों के बावजूद महाभारत आज भी लोक और साहित्य में सर्वप्रिय, सर्वाधिक प्रासंगिक रचना है।

रामायण की भाँति महाभारत को भी विकसनशील महाकाव्यों की कोटि में रखा जाता है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार – “विद्वानों ने माना है कि सूतों और मागधों के बीच किसी प्राचीन युद्ध के गीत नाराशंसी गाथा के रूप में गाए जाते रहे होंगे। फिर ‘जय’ नाम से इसी कहानी को रूपाकार मिला और तदनंतर ‘भारत’ रचा गया। इसके अनेक-अनेक आख्यान-उपाख्यान, अवांतर प्रसंग, धर्मगीताएँ जोड़कर ‘महाभारत’ का वर्तमान रूप निखरकर सामने आया।” महाभारत पर शोध करने वाले कतिपय विद्वानों के अनुसार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को ‘जय’ काव्य सुनाया जो आठ हजार श्लोकों में था। वैशम्पायन ने उसे परिवर्धित कर चौबीस हजार श्लोकों के ‘भारत’ ग्रन्थ का रूप देकर सौति उग्रश्रवा को सुनाया। उग्रश्रवा ने एक लाख श्लोकों के ‘महाभारत’ का वाचन किया।

‘इदं शत सहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्
उपख्यायै सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमं’

कृष्ण द्वैपायन व्यास ने जिस महाग्रंथ की मूलतः रचना की, उनका समय क्या था इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। एक विकसनशील महाकाव्य के रूप में यह एक निश्चित समय की रचना है भी नहीं। पाश्चात्य विद्वान् विंटरनिट्स ने महाभारत के रचनाकाल पर विस्तार से प्रकाश डाला और उनकी मान्यताएँ इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। उनके अनुसार-

- “महाभारत की कुछ पौराणिक कथाएँ, उपाख्यान तथा वर्णनात्मक कविताएँ वैदिक काल की सीमा को छू लेती हैं।
- फिर भी वैदिक काल में ‘भारत’ तथा ‘महाभारत’ नाम के किसी ग्रन्थ का अस्तित्व नहीं था।
- महाभारत की नीति-संबंधी कुछ सूक्तियों और कथाओं का समय ई.पू. छठी शताब्दी भी हो सकता है।
- यदि ई.पू. छठी शताब्दी से लेकर ई.पू. चौथी शताब्दी तक महाभारत नाम का कोई ग्रन्थ रहा भी हो तो वह बौद्ध-धर्म की आवास भूमि में अपरिचित था, क्योंकि बौद्ध-ग्रंथों में ‘महाभारत’ का कहीं उल्लेख नहीं है।
- ई.पू. चौथी शताब्दी से पहले महाभारत काव्य के अस्तित्व का

निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

- ई.पू. चौथी शताब्दी से लेकर ई. के बाद की चौथी शताब्दी तक आज का महाभारत बनता रहा है। संभवतः क्रमशः ही यह इस रूप में आया है।
- ई. की चौथी शताब्दी में महाभारत प्रायः वर्तमान रूप धारण कर चुका था।
- बाद की शताब्दियों में भी इसमें कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन होते रहे और कुछ श्लोक जुड़ते रहे।
- महाभारत का एक रचनाकाल नहीं है। अतः काल निर्णय करते समय इसके प्रत्येक भाग पर पृथक-पृथक विचार करना चाहिए।”

चिंतामणि विनायक वैद्य के अनुसार महाभारत का प्रथम रचनाकाल ईस्वी पूर्व 3031 और अंतिम रूप ईस्वी पूर्व 320 से 200 के बीच का है। (‘महाभारत मीमांसा’) ग्रन्थ को पूर्ण विकसित रूप लगभग सात सौ वर्षों में मिला। इस लम्बी अवधि में अनेकानेक आख्यान, उपाख्यान, प्रसंग, नीतिकथाएँ, उपदेशात्मक सन्देश, विविध देवी- देवताओं की महिमा से जुड़े प्रसंग और न जाने क्या-क्या जुड़ता रहा और इस प्रकार व्यास की अद्भुत रचनात्मक प्रतिभा से परिकल्पित और अंकुरित तथा वैशम्पायन और उग्रश्रवा की महती प्रतिभाओं से विकसित इस महाग्रंथ में अनेक अज्ञात, अनाम रचनाकारों का भी सृजन समाविष्ट होता रहा और महाभारत को उसका वर्तमान प्रचलित रूपाकार मिला जिसे विश्वभर में महर्षि व्यास रचित ‘महाभारत’ के नाम से जाना जाता है। मूलतः पांडवों और कौरवों के मध्य घटित युद्ध-कथा होते हुए भी इस कथा का विस्तार और गहनता इतनी व्यापक और विस्तृत है कि भारतीय जीवन और दर्शन का कोई पहलू इससे अछूता नहीं रह गया है। “अनंत-अनंत कथाओं के आख्यान-उपाख्यान इसमें अंतर्गुम्फित हैं। इसलिए महाभारत के लिए कहा जाता है कि भारत में जो है वह सब कुछ महाभारत में है। यही कारण है कि इस महाभारत गाथा को ‘महाकाव्य’ या ‘सागा’ मात्र कहकर नहीं समझा जा सकता। यह तो अपने विचार-विस्तार में भारत का ‘होल लिटरेचर’ या सम्पूर्ण-समग्र साहित्य है- साहित्य का विश्वकोश है।” बांग्ला विद्वान बुद्धदेव वासु ने भी महाभारत को एक विपुल विस्तृत विश्वकोश के रूप में परिभाषित किया है- “ विश्वकोश के एक अर्थ में यह निश्चित विश्वकोश है। इसमें तत्कालीन भारत में प्रचलित समस्त ज्ञान और विज्ञान, भावना और साधना; धर्मतत्व-नीतितत्व, विधि-विधान, सब उपाख्यान और उपकथा; लोकाचार, लोकविद्या और प्रवचन; सब सौन्दर्यबोध और आनंदबोध; सांसारिक अभिलाषा और आध्यात्मिक अभीप्सा; सब ज्योत्सना और सूर्य किरण; सब द्वंद्व और संशय संभावित समाधान का समावेश है।”

आज भी महाभारत के कथा प्रसंग और चरित्र अप्रासंगिक नहीं लगते। वे आज भी हमें जीवन को देखने समझने की दृष्टि देने में समर्थ हैं। जैसा कि डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं- “हम चकित रह जाते हैं यह देखकर कि पाँच हजार साल पहले एक ऋषि कवि ने इक्कीसवीं सदी के हमारे जीवन के सरोकारों, चिंताओं, द्वंद्वों, विषमताओं, विश्वासों, अनुभूतियों, आवश्यकताओं को कैसे जान लिया? और हमारे बिलकुल पड़ोस में आकर कैसे मुस्कुराता हुआ बैठ गया? जैसे हम जो माँगे, वह सांताक्लॉज़ की तरह झोली से निकालकर हमें दे देगा।” यही कारण है कि अपने सृजन के समानांतर संस्कृत साहित्य में और उसके बाद से लगातार सभी भारतीय भाषाओं में सम्पूर्ण महाभारत के रूपांतर, अनुवाद, पुनर्सृजन हुए हैं। उसके विविध आख्यानों, घटनाओं, चरित्रों पर हर युग में हर विधा में नयी-नयी अर्थछवियों के साथ सृजन होते रहे हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के तेलुगु कवि नन्नय ने महाभारत की विविधमुखी संभावनाओं को पहचानते हुए कहा कि यह धार्मिकों के लिए धर्मशास्त्र; नैतिकों के लिए नीतिशास्त्र, कवियों के लिए सरस काव्य; इतिहासकारों के लिए इतिहास और पौराणिकों के लिए पुराणों का पुराण है। रचनाकारों के लिए तो यह विविध भावों, विचारों, जीवन स्थितियों और मानव चरित्रों का अथक स्रोत है। हर युग के रचनाकार ने अपनी प्रवृत्ति, दर्शन, स्थिति-परिस्थिति, भाव, विचार के अनुसार महाभारत के मिथकीय आख्यानों को सृजित, अनुसृजित, पुनर्सृजित, परिवर्तित, परिवर्धित किया है। महाभारत के आदिपर्व में वर्णित यह उक्ति भारतीय साहित्य के रचनाकर्म के लिए सटीक भविष्यवाणी सिद्ध होती रही है-

“सर्वेषां कवि मुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति

पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः”

(यह अक्षय भारतवृक्ष उसी प्रकार समस्त कवियों का उपजीव्य होगा जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन दाता होता है।) महाभारत की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं- “भारतीय दृष्टि से महाभारत पाँचवाँ वेद है, इतिहास है, स्मृति है, शास्त्र है, और साथ ही काव्य है। आज तक किसी भारतीय पंडित या आचार्य ने इसकी प्रमाणिकता पर संदेह नहीं किया। कम से कम दो हजार वर्ष से यह भारतीय जनता के मनोविनोद, ज्ञानार्जन, चरित्र-निर्माण और प्रेरणा-प्राप्ति का साधन रहा है।”

महाभारत सभी भारतीय भाषाओं के लिए आदिकाल से ही स्रोतस्विनी की तरह जीवनप्रद रहा है। विभिन्न युगों में साहित्यकारों ने अपने समय और समाज की चुनौतियों, संघर्षों, प्रश्नों, सरोकारों को अभिव्यक्त करने के लिए महाभारत के विस्तृत कथा फलक से सामग्री ली है और अपनी भाषिक संस्कृति के अनुरूप उसे पुनर्सृजित किया है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में -“ महाभारत द्वारा अनेक रचनाओं को जन्म देने का पहला बड़ा कारण तो यह प्रतीत होता है कि यह एक उदार रचना है जो

अपने स्रोत से जन्म लेने वाली किसी रचना की स्वायत्तता का हरण नहीं करती, किसी को ‘अनुकरण’ की लज्जा में नहीं बाँधती, उलटे सर्जक को देशकाल की भिन्नता के बावजूद सृजन की मौलिकता के लिए मुक्त करती है।” सम्पूर्ण महाभारत का संक्षिप्त रूपांतरण करने की प्रवृत्ति हर भाषा के प्रारम्भिक युगों में देखने को मिलती है। तमिल में ‘विल्ली भारत’, तेलुगु में ‘आंध्र महाभारत’, मलयालम में ‘महाभारत किलिप्पाट्टू’, कन्नड़ में ‘गदुगिन भारत’, मराठी में ‘आर्य भारत’, हिंदी में ‘पांडव चरित’, बांग्ला में ‘पांडव विजय’, उड़िया में ‘सारला महाभारत’, असमिया में ‘रामसरस्वती महाभारत’ आदि रचनाएँ इन भाषाओं के प्रारम्भिक महाकाव्य हैं। सम्पूर्ण महाभारत के साथ-साथ महाभारत के विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं तथा पात्रों पर काव्य सृजन की परम्परा भी सभी भाषाओं में प्रारंभ से ही प्रचलित रही। द्रौपदी, कर्ण, अर्जुन, भीम, कुंती, गांधारी, दुर्योधन, भीष्म, सत्यवती, अम्बा, अश्वत्थामा, एकलव्य आदि पात्रों के जीवन की बिडम्बनाओं, उनकी चारित्रिक सबलताओं-दुर्बलताओं को केंद्र बनाकर लिखी गई सर्वाधिक रचनाएँ आधुनिक भारतीय साहित्य की अक्षय निधि हैं। जीवन के विविध रंग, चरित्रों की बहुस्तरीय छवियाँ, जीवन के बहुआयामी अनुभव इन कथाप्रसंगों के माध्यम से अभिव्यक्त हो उठे हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं की कथावस्तु के रूप में बहुप्रयुक्त होने के साथ-साथ महाभारत के पात्र, प्रसंग आधुनिक सन्दर्भों में दृष्टांत या बिम्ब-प्रतीक उपमान योजना आदि अभिव्यक्ति के उपकरणों के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। महाभारत अपनी संरचना में धर्म-अधर्म, आदर्श-यथार्थ, अच्छे-बुरे के बीच स्पष्ट रेखा नहीं खींचता, कोई भी चरित्र न पूर्णतः उजला है न मैला। हर घटना, प्रसंग में इतनी परतें अनुस्यूत हैं कि उसके अनुकर्ता के लिए अर्थ ग्रहण की अनेक संभावनाएँ हैं। अतः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने अपने समय, स्थान, परिवेश और मनोवृत्ति के अनुसार महाभारत की व्याख्या की है और उसका पुनः पुनः नए-नए अर्थों, सन्दर्भों में प्रयोग किया है। इसलिए सहस्राधिक रचनाएँ होने पर भी हर रचना अपने में नवीन है, विशिष्ट है, अद्वितीय है।

संदर्भ ग्रंथः

1. नगेन्द्र, (सं.), 1989, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली
2. बसु, बुद्धदेव, 2004, महाभारत की कथा (मूल बांग्ला-महाभारतेर कथा,) अनुवाद-बच्चन सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
3. श्रोत्रिय प्रभाकर, 2014, भारत में महाभारत, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली



एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9818166648



महादेवी वर्मा

एक भास्वर स्त्री वाक् : महादेवी वर्मा

इंदिरा दांगी

“आधुनिक नारी-उसकी स्थिति पर एक दृष्टिकोण” निबंध में महादेवी जी नये समय की स्त्री की बात करती हैं जो सदियों के शोषण से मुक्ति चाहती है लेकिन उसने इसके कारणों की गहराई में जाकर समाधान पाने की कोशिश न की बल्कि पश्चिम की तरह पुरुष को अपना प्रतिद्वंदी समझा लेकिन दूसरी ओर उसको आकर्षित भी करना चाहती है। इस तरह आधुनिक स्त्री ने अपनी स्थिति कुछ इस तरह की बना ली है पुरुष के लिए जैसे इन्द्रधनुष जो आँखों को पल-दो पल को बाँधता तो है लेकिन उसकी कोई स्थाई उपयोगिता नहीं। जीवन में कोई स्थाई आदान-प्रदान तब संभव नहीं होता और स्त्री की स्थिति पूरी आधुनिकता के बाद भी दयनीय ही रहती है। इस निबंध में व्यक्त महादेवी जी की बातों का सार यदि एक पंक्ति में कहें तो –समाज उच्च शिक्षित स्त्री का अविश्वास करता है!

वास्तव में स्त्री विमर्श लोकतंत्र का ही एक आयाम है जहाँ स्त्री को समानता का अधिकार देने की बात कही जाती है और उसे एक मनुष्य के तौर पर देखने की सिफारिश की जाती है न कि दोगम दर्जे के नागरिक की तरह जैसा कि अधिकांश समाजों में होता ही है।

महादेवी भारतीय ही नहीं बल्कि विश्व स्त्री विमर्श की पुरोधा हैं। उनकी पुस्तक ‘श्रृंखला की कड़ियाँ’ सन् 1942 में प्रकाशित हुई जबकि सीमोन द बोउवार की ‘द सेकंड सेक्स’ सन् 1949 में। महादेवी जी की पुस्तक स्त्री विमर्श की एक श्रेष्ठ कृति है किन्तु हिंदी साहित्य की पुरुषवादी आलोचना ने उनकी पुस्तक की उपेक्षा की; और दीर्घकाल में यह पुस्तक यदि अपना स्थान बना सकी है भारतीय साहित्य में तो वह

इसकी अपनी उच्च कोटि की रचनात्मकता के कारण संभव हुआ है। इस पुस्तक की भूमिका में ही वे लिखती हैं कि भारतीय नारी में साधारण दयनीयता है और कहीं असाधारण विद्रोह है, परन्तु संतुलन से उसका जीवन परिचित नहीं है। यह पुस्तक इसी संतुलन की तलाश है।

‘हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ’ पुस्तक का प्रथम आलेख है जिसमें महादेवी जी स्त्री की पराधीन मानसिक बुनावट पर बात करती हैं जो सदियों के गहरे अनुकूलन के पश्चात अब यहाँ तक आ चुकी है कि स्त्री पराधीनता और शोषण के जीवन को भी अपना सौभाग्य समझती है यहाँ तक कि शिक्षित स्त्रियाँ भी। महादेवी लिखती हैं, “असंख्य विषमताओं का कारण, स्त्री का अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को भूलकर विवेकशक्ति को खो देना है। उसके बिना जाने ही उसका कर्तव्यपथ निश्चित हो चुकता है जिस पर चलकर न उसे सफलताजनित गर्व का अनुभव होता है, न असफलताजनित ग्लानि का। वह अपनी सफलता या असफलता की छाया पुरुष की आत्मतृष्टि या असंतोष में देखने का प्रयत्न करती है, अपने हृदय में नहीं।”¹

पुस्तक का अगला निबंध ‘हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ – 2’ है जिसमें लेखिका उन अधिकांश स्त्रियों के बारे में बात करती हैं जिन्हें ये भी नहीं ज्ञात कि घर की दीवारों के बाहर भी उनका कार्यक्षेत्र हो सकता है और कुछ अधिकार या कुछ सुविधाएँ भी उन्हें अपने जीवन में मिलनी चाहिए। वे लिखती हैं, “स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल पता है।”²

इस आलेख में लेखिका बहुसंख्यक अज्ञानी महिला समुदाय के उठान के लिए पढ़ी-लिखी बहनों को आगे आने को कहती हैं। दूसरे शब्दों में जिसे यूनिवर्सल सिस्टरहुड कहा जाता है, महादेवी जी उसकी बात करती हैं और विश्व स्त्री विमर्श की लगभग समस्त किताबों में भी यूनिवर्सल सिस्टरहुड की बात की ही जाती रही है जिसकी आरंभिक विमर्शकर्ताओं में महादेवी वर्मा एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

‘युद्ध और नारी’ महादेवी जी का एक चर्चित निबंध है। इसमें वे आदिम समय से स्त्री और पुरुष के स्वभावों की चर्चा करती हैं। पुरुष स्वभाव से ही युद्धप्रिय रहा है। स्त्री इसके विपरीत शांतिप्रिय है क्योंकि वह सृजनकर्ता है संहारक नहीं। उसने पुरुष के साथ घर बसाया और उसे सामाजिक प्राणी बनाया। इसके बदले में पुरुष ने उसे दुर्बल माना और उसके हाथ में भी अस्त्र थमा दिया। नये समय के युद्धप्रिय देशों में जो स्त्रियाँ युद्ध में शामिल होना गर्व का विषय समझती हैं वे वास्तव में स्त्री न होकर पुरुष की अनुकृति मात्र बनने को प्रयासरत हैं और जो कि वे नहीं हो सकतीं। लेखिका इन भ्रमित स्त्रियों के लिए लिखती हैं, “आधुनिक युद्धप्रिय राष्ट्रों की नारियों में यह संस्कार जन्म पा रहा है कि करुणा, दया, स्नेह आदि स्वभाव-जात गुणों के संहार के लिए यदि पुरुष जैसा पाशविक बल उसमें न आ सके तो उनकी जाति जीने योग्य नहीं। इसी से वह मातृ-जाति अपनी संतानों का गला काटने के लिए अपनी तलवार में धार देने बैठी है।”³

‘नारीत्व का अभिशाप’ इस पुस्तक का एक अन्य चर्चित निबंध है। इसमें वे भारतीय समाज में स्त्री की दारुण स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं। वे लिखती हैं, “हिन्दू नारी का, घर और समाज इन्हीं दो से विशेष संपर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है इसके विचार मात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय कांपे बिना नहीं रहता।”⁴

वे बताती हैं कि जिस पितृगृह में उसका जन्म होता है वहाँ भी वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ नहीं। न वह आपत्ति के समय वहाँ आश्रय पा सकती है और न ही कोई भूल करने पर उनका स्नेह। ससुराल में भी उसकी स्थिति संशय से भरी रहती है। यदि वह संतान न दे सकी, यदि वह पति को पसंद नहीं है तो उसका जीवन दासत्व में ही बीतता है। यदि वह विधवा हो जाती है तब तो उसके दुखों का कोई अंत नहीं। विधवा को कितना अपमानजनक जीवन जीना पड़ता है, वह सर्वविदित है। बाल

विधवाओं पर समाज कितने अत्याचार करता है यह सब जानते ही हैं। स्त्री-अपहरण की मूल समस्या भी यही है कि जब समाज अपनी स्त्रियों से पशुवत व्यवहार करता है तो वे बहकावे में आ जाती हैं। स्त्रियों पर अत्याचारों का अंत नहीं है। इस स्थिति में बदलाव तभी आएगा जब लोग जागरूक होंगे अन्यथा नारीत्व को तो इस समाज ने एक अभिशाप ही बना डाला है।

‘आधुनिक नारी—उसकी स्थिति पर एक दृष्टिकोण’ निबंध में महादेवी जी नये समय की स्त्री की बात करती हैं जो सदियों के शोषण से मुक्ति चाहती है लेकिन उसने इसके कारणों की गहराई में जाकर समाधान पाने की कोशिश न की बल्कि पश्चिम की तरह पुरुष को अपना प्रतिद्वंदी समझा लेकिन दूसरी ओर उसको आकर्षित भी करना चाहती है। इस तरह आधुनिक स्त्री ने अपनी स्थिति कुछ इस तरह की बना ली है पुरुष के लिए जैसे इन्द्रधनुष जो आँखों को पल-दो पल को बाँधता तो है लेकिन उसकी कोई स्थाई उपयोगिता नहीं। जीवन में कोई स्थाई आदान-प्रदान तब संभव नहीं होता और स्त्री की स्थिति पूरी आधुनिकता के बाद भी दयनीय ही रहती है। इस निबंध में व्यक्त महादेवी जी की बातों का सार यदि एक पंक्ति में कहें तो—समाज उच्च शिक्षित स्त्री का अविश्वास करता है !

उपरोक्त निबंध के भाग दो में वे उन क्रांतिदूतियों के विषय में लिखती हैं जो क्रांति की अग्रदूत बनीं लेकिन इस कारण उनके सुरक्षित गृह जीवन में एक रुक्षता व्याप्त हो गयी। यह निबंध भले ही सन् 1934 में लिखा गया लेकिन आज तक यह भारत के सामाजिक जीवन पर शत-प्रतिशत लागू हो रहा है। सिर्फ करियर-नौकरी की सफलता को महत्व देने वाली युवतियों में से अनेक को यदि हम आजीवन अविवाहिता ही रह गयी देखते हैं तो इसका कारण यही है कि समाज उनकी रुक्षता से सभित रहता है जो कि कार्यक्षेत्र से आगे बढ़कर व्यक्तिगत जीवन में भी आ चुकी होती है और अगर महादेवी जी के शब्दों में कहें तो ‘उच्चश्रृंखलता की सीमा का स्पर्श करती हुई स्वतंत्रता, प्रत्येक अच्छे-बुरे बंधन के प्रति उपेक्षा का भाव, अनेक अच्छे-बुरे व्यक्तियों से सख्यत्व और अकारण कठोरता आदि विशेषताओं के कारण ही उनका सामाजिक जीवन कठिन और असफल हो जाता है।

‘घर और बाहर’ निबंध में महादेवी जी आधुनिक युग की स्त्री के जीवन की आवश्यकताओं पर बात करती हैं। वे स्त्रियाँ जो शिक्षित

हैं, जो समाज और परिवार दोनों के हित में घर के बाहर भी कार्य कर सकती हैं। स्त्री मात्र संतान पालन और पति के मनोविनोद की वस्तु नहीं है, आधुनिक स्त्री घर-बाहर दोनों में सामंजस्य करने का प्रयास करती है लेकिन पुरुष अभी भी उसको समानता का अधिकार नहीं देना चाहता यही कारण है कि एक शिक्षित पुरुष अशिक्षित स्त्री से तो विवाह करना चाहता है लेकिन एक उच्च शिक्षित स्त्री से विवाह नहीं करना चाहता क्योंकि उसको ऐसा लगता है कि वह समानता का जीवन चाहेगी, न कि उसकी दासी बनकर रहेगी। उच्च शिक्षित स्त्रियों में लोकतान्त्रिक चेतना होती है और वे अपने साथी पुरुष के मनोरंजन की वस्तु और कीर्तदासी मात्र बनकर नहीं रह सकतीं। वे घर और बाहर दोनों जगह एक सामंजस्यपूर्ण और सम्मानजनक जीवन जीना चाहती हैं। महादेवी जी लिखती हैं, “ऐसी सामंजस्यपूर्ण स्थिति के उत्पन्न होने में अभी समय लगेगा और संभव है यह मध्य का समय हमारी क्रमागत सामाजिक व्यवस्था को कुछ डाँवाडोल भी कर दे, परन्तु निराशा को जन्म देने वाले कारण नहीं उत्पन्न होने चाहिए।”⁵

इस निबंध के दूसरे भाग में लेखिका सार्वजनिक जीवन के उन क्षेत्रों की बात करती हैं जिनमें स्त्री की सेवाएँ उतनी ही उपयोगी हैं जितनी कि पुरुष की। वे सबसे पहले शिक्षा के क्षेत्र की बात करती हैं जहाँ उन शिक्षित स्त्रियों की आवश्यकता है जो माँएँ हैं और उच्च शिक्षित होकर भी अपने घरों में बैठी हैं। इसी तरह वे चिकित्सा के क्षेत्र की भी बात करती हैं जहाँ महिला चिकित्सकों का बहुत अभाव है और कानून के क्षेत्र में भी महिलाओं की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि बहुसंख्यक स्त्री आबादी अपने अधिकार जानती ही नहीं। घर के बाहर स्त्री को उसकी रुचि, शिक्षा और अवकाश के अनुरूप काम करने देने में पुरुष को उसका सहयोगी बनना चाहिए, विरोधी नहीं।

‘घर और बाहर’ निबंध के तीसरे हिस्से में वे उन कार्यों की चर्चा करती हैं जिनमें स्त्री घर में रहकर भी योगदान दे सकती है, जैसे कि साहित्य का क्षेत्र। वे लिखती हैं कि स्त्री जब साहित्य सृजन करती है तो उसका लिखा अधिक वास्तविक होता है यदि वह महिलाओं और बालकों पर लिख रही है। वे घर में साहित्यिक वातावरण निर्मित करने की बात करती हैं जिसके लिए पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यिक किताबों की आवश्यकता होती है। इन सब से घर की स्त्रियों को वंचित रखा जाता है और उनकी प्रतिभा का विकास नहीं हो पाता।

‘हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व’ महादेवी जी का एक अत्यंत चर्चित निबंध है, इसमें वे विवाह की अनिवार्यता पर प्रश्न करती हैं और लिखती हैं कि सौ में से सौ स्त्रियों के लिए विवाह अनिवार्य इसलिए है क्योंकि उनके जीविकोपार्जन के लिए समाज ने कोई और व्यवस्था नहीं की। विवाह से ही उसको भोजन, वस्त्र, आश्रय मिलता है। जीविकोपार्जन का ये कितना निकृष्ट साधन हमारे समाज ने अपनी स्त्रियों को दिया है। इस समस्या पर तत्कालीन तो क्या, आज तक किसी लेखक या लेखिका ने इतनी साफगोई से न लिखा है और न इतने श्रेष्ठ गद्य रूप में स्त्री विमर्श कोई कर सका है। आगे वे लिखती हैं, “उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व तथा अंतिम मातृत्व समझा जाता रहा, अतः उनके जीवन का एक ही मार्ग और आजीविका का एक ही साधन निश्चित था। यदि हम कटु सत्य सह सकें तो लज्जा के साथ स्वीकार करना होगा कि समाज ने स्त्री को जीविकोपार्जन का साधन निकृष्टतम दिया है।” वे यहाँ स्त्री को अपना साथी स्वयं चुनने की उस स्वतंत्रता की बात करती हैं जो विवाह को साहचर्य में बदलता है, कारा में नहीं।

‘जीवन का व्यवसाय’ निबंध में स्त्री-विमर्श के बहुत जरूरी मुद्दे पर वे बात करती हैं। वे उन स्त्रियों की बात करती हैं जिन्हें पत्नीत्व और मातृत्व से निर्वासित कर स्वर्ग में अप्सरा और धरती पर वारांगना बना दिया गया। पुरुष ने अपनी वासना के भोजन के लिए इन स्त्रियों को रख छोड़ा है। लेखिका लिखती हैं, “उसने कहीं इस स्त्री को देवता की दासी बनाकर पवित्रता का स्वांग भरा, कहीं मंदिर में नृत्य कराकर कला की दुहाई दी और कहीं केवल अपने मनोविनोद की वस्तु-मात्र बनाकर अपने विचार में गुण-ग्राहकता ही दिखाई।”⁶

इस निबंध के भाग दो में वे इस समस्या के कारणों पर विचार करती हैं। वास्तव में यह समाज स्त्री को या तो देवी या फिर दासी बनाकर रखता है और जो भी स्त्री इन दो भूमिकाओं से इतर आचरण करती है उसकी साधारण मनुष्यगत भूलों को भी समाज क्षमा नहीं करता है और न ही उसके लिए समाज में वापसी का कोई रास्ता ही छोड़ता है। यहाँ तक कि ऐसी स्त्री की संतति को भी समाज एक भी अवसर नहीं देता कि वे मुख्य धारा में लौट सकें या कोई अन्य सम्मान का व्यवसाय कर सकें। जबकि यह पुरुषप्रधान समाज उन पुरुषों को कोई दोष नहीं देता जिनके कारण समाज में देह व्यापार फल-फूल रहा है। महादेवी जी लिखती हैं, “किसी भी पुरुष का कैसा भी चारित्रिक पतन उससे सामाजिकता का अधिकार नहीं छीन लेता, उसे गृह-जीवन से निर्वासन

नहीं देता, सुसंस्कृत व्यक्तियों में उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं बनाता और धर्म से लेकर राजनीतिक तक सभी क्षेत्रों में ऊँचे-ऊँचे पदों तक पहुँचने का मार्ग नहीं रोक लेता।”⁷

‘स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न’ निबंध में वे भारतीय समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या पर बात करती हैं। समाज ने स्त्री को जीवनयापन के लिए विवाह की व्यवस्था कर दी। उसे माता बनना होता है और पत्नीत्व का निर्वाह करना होता है। आजीवन वह कार्य करती है किन्तु अर्थ पर उसका कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं होता। उसे पिता, पति अथवा पुत्र से ही अपने जीवनयापन के लिए धन माँगना होता है। उसका जीवन उस शून्य की तरह बना दिया गया है जो पुरुष के साथ होने पर ही सार्थक है अन्यथा निरर्थक। लेखिका स्त्री की समाज में पीड़िता की स्थिति के लिए बहुत हद तक अर्थ-स्वातंत्र्य न मिलने को मानती हैं। वे लिखती हैं, “सहयात्री वे कहे जाते हैं, जो साथ चलते हैं; कोई अपने बोझ को सहयात्री कह कर अपना उपहास नहीं करा सकता। भारतीय पुरुष ने स्त्री को या तो सुख के साधन के रूप में पाया या भार रूप में, फलतः वह उसे सहयोगी का आदर न दे सका।”⁸

इस निबंध के दूसरे भाग में वे आधुनिक स्त्री की बात करती हैं; समाज ने क्योंकि कभी भी ये व्यवस्था नहीं रखी है कि स्त्रियों के पास स्वयं का धन हो। और उत्तराधिकारका तो प्रश्न ही नहीं उठता; न वह पिता की संपत्ति में उत्तराधिकारिणी है न ससुराल की। यह स्थिति अत्यंत असंतोषजनक है आज की शिक्षिताओं के लिए। वे लिखती हैं, “समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थसम्बन्धी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या संशोधन को आवश्यक न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आंधी-जैसा वेग पकड़ता जायेगा और तब एक निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ और न पा सकेगा। ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सर्जनात्मक।”⁹

बिलकुल यही बात सीमोन द बोउवार अपने इन शब्दों में कहती हैं, “आर्थिक विकास के कारण औरत की समकालीन स्थिति में आए भारी परिवर्तनों ने विवाह-संस्था को हिला दिया है।”¹⁰

‘हमारी समस्याएँ’ निबंध में महादेवी जी शिक्षित स्त्रियों की समस्याओं पर बात करती हैं। एक तो, स्त्री को सदियों की अशिक्षा के बाद अब कहीं जाकर थोड़ा बहुत अधिकार मिला है शिक्षित होने का। लेकिन उसने शिक्षित होकर पुरुष के उन्हीं दुर्गुणों को अपना लिया

जिनसे वह तब बची थी जब अशिक्षित थी। वे लिखती हैं, “यदि कटु सत्य कहा जाये तो केवल दो ही प्रकार की महिलाएँ उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर होती हैं; एक वे जिन्हें पुरुषों के समान स्वतंत्र जीवन-निर्वाह के लिए उपाधि चाहिए और दूसरी वे जिनका ध्येय इसके द्वारा विवाह की तुला पर अपने आपको गुरू बना लेना है।”¹¹

वे इसका समाधान बताती हैं कि समाज में संतानों की कमी नहीं है, माताओं की कमी है। यदि कुछ स्त्रियाँ अनाथ बच्चों को शिक्षित करने का दायित्व ले लें तो इससे समाज का भी हित होगा और उनकी शिक्षा भी सार्थक होगी। शिक्षा का ध्येय मात्र अर्थउपार्जन तो नहीं होता, या नहीं होना चाहिए।

इस निबंध के दूसरे भाग में, वे समाज में शिक्षित स्त्री की स्थिति पर बात करती हैं। बालकों को बचपन से ही नैतिकता का पाठ नहीं पढ़ाया जाता है और न ही समाज में वो स्वस्थ वातावरण है जिसमें बालक-बालिकाएँ एक-दूसरे को जानें। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि वे एक-दूसरे के साथ जीवन में कभी भी सहज नहीं हो पाते। युवतियाँ तो वैसे ही समाज में कम दिखाई देती हैं इस कारण वे आकर्षण का केंद्र होती हैं। युवतियाँ इस कारण अपना ध्येय भूल जाती हैं और बनाव-श्रृंगार पर अधिक ध्यान देने लगती हैं न कि अपनी योग्यता बढ़ाने पर।

‘समाज और व्यक्ति’ निबंध में निबंधकार व्यक्ति और समाज के सापेक्षित संबंधों की बात करते हुए मनुष्य के लिए समाज की आवश्यकता से अपनी बात आरम्भ करती हैं। वे लिखती हैं, “समाज की दो आधारशिलायें हैं, अर्थ का विभाजन और स्त्री-पुरुष सम्बन्ध। इनमें से यदि एक की भी स्थिति में विषमता उत्पन्न होने लगती है, तो समाज का सम्पूर्ण प्रसाद हिले बिना नहीं रह सकता।”¹²

प्राचीनकाल से स्त्री की क्या स्थिति रही है, इस पर चर्चा करते हुए वे एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात कहती हैं कि कोई समाज कितना विकसित है, यह उसकी स्त्रियों की दशा देखकर ही जाना जा सकता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में मातृशक्ति का बहुत सम्मान था लेकिन निरंतर युद्धों के कारण स्थिति बिगड़ी और स्त्री तब पुरुष के अधिकार की वस्तु बनती गयी धीरे-धीरे। नये दौर में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से सिर्फ बाहरी वातावरण बदला है और इससे तो हमारी हानि ही हुई है कि हमारी देह आधुनिक है, मन प्राचीन। समय के साथ मूल्य बोध बदलते हैं और नए युग में स्त्री को समानता का अधिकार पुनः मिलना चाहिए

वैसे ही जैसे प्राचीनकाल में था।

‘जीने की कला’ निबंध में वे सदियों से चली आ रही भारतीय स्त्री की दारुण कष्ट स्थिति का वर्णन करती हैं। कन्या पिता के घर में जन्म से ही ऐसा माहौल पाती है कि अपने को पराया धन समझने लगती है और उस घर से न जाने की इच्छा करना भी उसके लिए पाप समझा जाता है। पति के गृह में चाहे कितने भी अत्याचार उस पर होते रहें, सीता और सावित्री के अलौकिक आदर्श का भार संभाले रहना उसकी विडंबना है। पिता के ऐश्वर्य को भोग रहे भाई को भगिनी सिर्फ शुभकामनायें ही दे सकती है और जीवन में विपत्ति पड़ने पर भी उस गृह से अन्न-वस्त्र तक के लिए याचक नहीं मानी जाती, अधिकार की तो बात दूर है। भारतीय स्त्री को एक शव की तरह निष्क्रिय रहना और अपनी इच्छा-अनिच्छा को प्रकट न करना सिखाया जाता है। पशु समान पति का हर अत्याचार यदि वह धर्म समझ कर नहीं सहती है तो वह ही समाज की दृष्टि में दंडनीय व्यक्ति है। उसे एक सफल दासी बनाना ही इस समाज की हर चेष्टा का ध्येय होता है और जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री को दासी बनाये रखने के लिए भाँति-भाँति की यातनाओं का विधान इस समाज ने कर रखा है। लेखिका लिखती हैं, “हिन्दू समाज ने उसे प्राचीन गौरव-गाथा का प्रदर्शन-मात्र बनाकर रख छोड़ा है और वह भी मूक-निरीह भाव से उस सबको वहन करती जा रही है। ...परिस्थितियाँ बदल रही हैं, परन्तु समाज स्त्री को, जिसे उसने दासता के अतिरिक्त और कुछ देना नहीं सीखा, प्रलय की उथल-पुथल में भी शिला के समान स्थिर देखना चाहता है। ऐसी स्थिरता मृत्यु का श्रृंगार हो सकती है, जीवन का नहीं।”¹³

शिक्षित स्त्रियाँ भी जब शव के समान पुरुष सत्ता के सब अत्याचार सहती हैं तो उनकी शिक्षा हास्यास्पद लगती है, विडंबना भी !

संभवतः इसीलिए श्रृंखला की कड़ियाँ पुस्तक विश्व स्त्री विमर्श में एक मील का पत्थर है, और स्वयं महादेवी भारत की एक महनीय भास्वर स्त्री वाक् चेतना का अन्यतम रूप |

संदर्भ सूची :

1. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 15
2. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 20
3. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली

मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 31

4. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 31
5. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 54
6. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 78
7. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 85
8. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 90
9. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 95
10. खेतान डॉ. प्रभा (अनुवाद) : स्त्री उपेक्षिता (सीमोन द बोउवार), हिन्दू पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली -110003, संस्करण 2002, पृ. क्र. 194
11. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 100
12. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 115
13. वर्मा महादेवी: श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001, पंचम संस्करण 2019, पृ. क्र. 127



खेड़ापति हनुमान मंदिर
सूद पेट्रोल पंप के पीछे, लाऊखेड़ी, एयरपोर्ट रोड भोपाल 462030
मो. 9179131980

अंतिम संस्कार का खेल

तेजेन्द्र शर्मा

“एक ई-मेल बनाई। अपने एम.डी., डायरेक्टर, मैनेजर और तमाम रेल्वे स्टेशनों पर ई-मेल भेज दी - “मित्रो एक दुःखद समाचार साझा करना चाहता हूँ मुझे आज अभी अभी रॉजर की पत्नी कार्ला का फ़ोन आया और उन्होंने सूचना दी कि कल रॉजर का नींद में ही निधन हो गया। आप सबको याद होगा कि रॉजरमिचम ने हमारे साथ करीब दस वर्षों तक काम किया और अपने स्वभाव, कार्यशैली और विनम्रता से सबका दिल जीता। रॉजर को बाग़बानी का बहुत शौक़ था और उसने अपने स्टेशन को ख़ूबसूरत बनाने के लिये अलग अलग तरह के फूलों के गमले तैयार किये थे। रॉजर के नेतृत्व में हमारे स्टेशन को बेहतरीन स्टेशन का ख़िताब भी मिला था।... अभी फ़्यूनरल की तारीख़ तय नहीं हुई है। तारीख़ तय होते ही कार्ला मुझे सूचित करेगी।”

नरेन के फ़ोन की रिंगटोन बज उठी।

उसने अपने फ़ोन पर एक फ़िल्मी गीत की धुन सजा रखी है।- “ज़िन्दगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मक़ाम, वो फिर नहीं आते...’ मजेदार बात यह है कि वह अपने अन्य मित्रों का मज़ाक़ उड़ाता रहता है जिनके फ़ोन पर फ़िल्मी रिंगटोन लगी हो। मगर अपने मामले में कहता है, “देखो भाई, राष्ट्रकवि आनन्द बक्षी के इस गीत में पूरा फ़लसफ़ा है। ज़िन्दगी को समझना चाहते हो तो इस गीत को रोज़ सुबह शाम एक बार सुना करो... किसी हनुमान चालीसा से कम नहीं हैं इस गीत को बोला।”

नरेन आनन्द बक्षी को हमेशा राष्ट्रकवि के नाम से संबोधित करता है। अगर कोई पूछ बैठे कि भई ये कब राष्ट्रकवि बने और किसने बनाया,

तो जवाब सीधा होता -‘आम आदमी ने’। फिर आँख़ दबा कर कहता, “... मगर केजरीवाल वाला आम आदमी नहीं।”

फ़ोन की ओर देखा। मगर नंबर फ़ोन में सेव नहीं कर रखा था। इसलिये कुछ पता नहीं चला कि आख़िर फ़ोन है किसका। वह आमतौर पर जब ड्यूटी पर होता है तो बिना नाम वाले फ़ोन उठाता नहीं है। बहुत अनमने ढंग से फ़ोन उठा ही लिया, “हलो, इज़दैटनरेन?...”

“जी, मैं नरेन बोल रहा हूँ आप कौन?”

“नरेन, मैं कार्ला बोल रही हूँ। आपके कलीगरॉजर की पत्नी।

पहचान गया नरेन। रॉजर की पत्नी कार्ला और बेटी लिली से मिल चुका था। वे स्टेशन पर आई थीं एक बार, रॉजर का सामान लेने। उन दिनों रॉजर बीमार चल रहा था। नरेन ने मन ही मन सोचा... रॉजर की ख़ैर हो। वरना कार्ला उसे क्यों फ़ोन करेगी।

“अरे हाँ कार्ला, मैं आपको पहचान गया। कैसी हैं आप?... और रॉजर कैसा है?”

“नरेन, रॉजरइज़नो मोर!... कल सुबह वो बिस्तर में...”

“ओह... बहुत दुःख हुआ सुन कर। तुम तो बिल्कुल टूट गयी होगी... और लिली...”

“लिली भी रो रही है... सब बहुत अचानक हो गया। कल रात रॉजर डिनर के बाद ठीक-ठाक सोया। बस सुबह जब मैं उसके लिये चाय बना कर उसे उठाने गयी तो देखा कि वो तो वहाँ था ही नहीं।... हम उसे तत्काल हस्पताल ले गये। मगर...वो तो पहले ही जा चुका था।”

अभी पिछले हफ़्ते की ही बात है कि उसने रॉजर के साथ फ़ोन पर बात की थी। दोनों ने साथ साथ एक ही स्टेशन पर पाँच साल काम किया था। कलीग से कुछ आगे बढ़ कर मित्र जैसे हो गये थे। रॉजर पहला गोरा

ब्रिटिश था जिससे नरेन की दोस्ती जैसी हो गयी थी। इससे पहले उसकी कुछ महिला मित्र तो बनी थीं मगर रेल्वे से बाहर।

“क्या अंतिम संस्कार की कोई तारीख तय हुई है अभी?”

“नहीं नरेन। क्योंकि मौत घर में हुई है इसलिये कोरोना पोस्ट-मॉर्टम की डेट तय करेगा। पोस्ट-मॉर्टम के बाद ही कुछ फ़ाइनल हो सकेगा।”

“मुझे बहुत अफ़सोस है काली। रॉजर के साथ मेरी बहुत सी यादें जुड़ी थीं।... कई बार दोनों ने पब में शामें बिताई थीं।... मेरा तो दिल ही टूट गया है।”

“ओके नरेन, जब कुछ तय हो जाएगा तो मैं तुम्हें फ़ोन करूँगी।”

फ़ोन रखने के बाद नरेन शून्य में ताकने लगा। उसे याद था कि रॉजर डनहिलसिगरेट पिया करता था... नरेन के मना करने के बावजूद उससे सिगरेट छूट नहीं पा रही थी। नरेन ने तो जीवन में कभी सिगरेट पी ही नहीं थी। रॉजरके फेफड़ों में पॉलिप्स उग आये थे। डॉक्टरों को शक था कि कहीं कैंसर न हो। खांसी इतनी बढ़ी कि रॉजर के पास सिगरेट छोड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

रॉजर ने उसे कहा भी था, “नैरी,मैन, आई ओ माईलाइफ़ट्यू...” उस दिन भी दोनों एक साथ ही स्टेशन पर काम कर रहे थे। रॉजर खींच खींच कर साँस ले रहा था। पहले तो उसने कुछ ख़ास ध्यान नहीं दिया मगर आहिस्ता आहिस्ता रॉजर की साँसें उखड़ने सी लगीं। नरेन इन साँसों का अर्थ समझता था। उसके अपने पिता सिगरेट पिया करते थे।... ठीक ऐसे ही उसके सामने बैठे-बैठे उनकी साँसें उखड़ती चली गयीं और वह बस देखता रह गया।

मगर आज नहीं... उसने रॉजर से पूछा, “रॉजर, मुझे लगता है कि तुम्हें एम्बुलेंस की ज़रूरत है।”

“नहीं नरेन, मुझे तो ऐसा होता ही रहता है। अपने आप ठीक हो जाएगा।”

नरेन भला कहाँ मानने वाला था। उसने फ़ोन उठाया और एम्बुलेंस को बुलवा लिया। थोड़ी ही देर में मैनेजर भी आ गये। उनको पूरी स्थिति समझाई। मैनेजर ने नरेन की पीठ थपथपाई। मगर नरेन की पीठ जैसे अचानक सख्त हो आई थी। उस पर मैनेजर का हाथ महसूस नहीं हो रहा था। उसके भीतर जैसे रॉजर का पूरा व्यक्तित्व ज़ब्त हो गया था। उसके आसपास का पूरा माहौल रॉजरमयी हो चला था।

तय कर लिया कि आज काम के बाद सीधा हस्पताल जाना है और अपने मित्र को हौसला देना है। वैसे उसे कुछ परेशानी भी हो रही थी क्योंकि उसके मैनेजर के चेहरे पर केवल प्रोफ़ेशनलिज़्म दिखाई दे रहा था किसी प्रकार का कोई इमोशन नहीं।

नरेन सोचता भी है। उसने लंदन में आने के बाद यहां के लोगों से बहुत कुछ सीखा है। अपनी भावनाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन करने से बचता है। मगर भीतर से तो भारतीय है। भावनाओं का पूरी तरह से दमन नहीं कर पाता। भीतर ही भीतर उसे कुछ न कुछ कचोटता रहता है।

शाम को ही वॉटफ़र्ड जनरल हस्पताल में पहुँच गया था। रॉजर को अभी तक ऑक्सीजन लगी हुई थी। साँस पहले से बेहतर चल रही थी। दोनों की आँखें मिलीं। रॉजर की आँखें शुक्रिया कर रही थीं। उसने खुद ही ऑक्सीजन मॉस्क को हटा दिया और नरेन से बात करने लगा।

“अरे रॉजर, ऑक्सीजन लगाये रखो यार। डॉक्टर से पूछ कर हटाना।”

“इसमें कोई दिक्कत नहीं है। मुझे कहा गया है कि जब-जब दिक्कत महसूस हो खुद ही लगा लेना। बीच-बीच में लगा लेता हूँ फिर थोड़ा आराम देता हूँ।”

“अरे रॉजर आज एक ख़ासी कम्पलीकेटिड टिकट इश्यू करनी पड़ी।... उस वक्त तुम्हारी बहुत याद आई। एक तो वैसे ही मूड ख़राब था और अपना मैनेजर भी सिर पर था। मैंने अकाउण्ट सेक्शन को फ़ोन किया। वहाँ किसी ने उठाया नहीं। रेचल को फ़ोन लगाया, उसने हेलप की तब जा के टिकट बना पाया। अगर तुम होते तो कितना आसान हो जाता।”

रॉजर के चेहरे पर एक मुस्कान सी उभर आई थी। उसे महसूस हुआ कि वह कितना महत्वपूर्ण है। उसके ज्ञान से कितने साथी कर्मचारियों को लाभ होता है।

नरेन ने उठते-उठते पूछा, “यहाँ का खाना कैसा है? टेस्टी लगता है क्या?... कुछ चाहिये तो नहीं?”

“खाने की तो यहाँ अच्छी च्वाइस है। हाँ अगर मेरे लिये ड्राईशैम्पू ले आओ तो ख़ासी मदद हो जाएगी।”

“ड्राईशैम्पू!... ये क्या होता है?”

“इसको लगाने के बाद सिर को धोना नहीं पड़ता। बूट्स केमिस्ट से मिल जाता है। जब अगली बार आओ तो लेते आना।”

नरेन की जानकारी में बढ़ोतरी हुई कि ड्राईशैम्पू नाम की कोई चीज भी होती है। इस मामले में उसे न तो किसी ब्राण्ड की जानकारी थी और न ही उसे यह मालूम था कि ड्राईशैम्पू एक स्प्रे होता है। गूगल से सहायता मांगी। बस हो गया काम। नरेन को मालूम था कि रॉजर को चिकन टिक्का बहुत पसन्द है। शैम्पू की तरह वो भी ड्राई ही पसन्द है। बस दोनों ड्राई चीजें लेकर अपनी दोस्ती की चाशानी में भर कर चल दिया अपने मित्र की ओर।

रॉजर की एक अलग सी आदत यह भी थी कि वह जब किसी चीज से प्रभावित होता तो होंठ को टेढ़ा सा कर के मुस्कुरा देता। खुल कर तारीफ़ करना उसके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं था। शैंपू देखकर उसने थैंक्स कहा और पूछा, “ढूँढने में मुश्किल तो नहीं हुई?” मगर चिकन टिक्का देखकर उसका नीचे का होंठ थोड़ा सा टेढ़ा हुआ और आँखों में ख़ास किस्म की ख़ुशी का भाव उभरा।

भाव तो नरेन के चेहरे पर आज भी उभरा है... अपने मित्र को खो देने का भाव। वह सोच में पड़ गया कि अब सबको कैसे सूचित किया जाए। कहीं मन में यह ख़याल भी आया कि जब वह सबको रॉजर की मृत्यु का समाचार देगा तो सब पर एक अलग सा रौब भी पड़ेगा कि वह परिवार के कितना नज़दीक है। फिर अपने आप को डाँटा... कितनी घटिया सोच हो गई है उसकी।

नरेन को याद आया कि उसने कभी रॉजर के कुछ फ़ोटो भी स्टेशन पर खींचे थे। रॉजर को बाग़बानी का बहुत शौक था। वह अपने स्टेशन पर भी फूल पौधे लगाया करता था। एक दिन ऐसे ही उसे फूलों के साथ खेलते हुए नरेन ने कुछ फ़ोटो खींचे थे। उसने अपने कम्प्यूटर में खोजा। तो फ़ोटो वहाँ मौजूद थे।

एक ई-मेल बनाई अपने एम.डी., डायरेक्टर, मैनेजर और तमाम रेल्वे स्टेशनों पर ई-मेल भेज दी - “मित्रो एक दुःखद समाचार साझा करना चाहता हूँ। मुझे आज अभी-अभी रॉजर की पत्नी कार्ला का फ़ोन आया और उन्होंने सूचना दी कि कल रॉजर का नींद में ही निधन हो गया। आप सबको याद होगा कि रॉजरमिचम ने हमारे साथ करीब दस वर्षों तक काम किया और अपने स्वभाव, कार्यशैली और विनम्रता से सबका दिल जीता। रॉजर को बाग़बानी का बहुत शौक था और उसने अपने स्टेशन को ख़ूबसूरत बनाने के लिये अलग-अलग तरह के फूलों के गमले तैयार किये थे। रॉजर के नेतृत्व में हमारे स्टेशन को बेहतरीन स्टेशन का खिताब भी मिला था।... अभी फ़्रयूनरल की तारीख तय नहीं

हुई है। तारीख तय होते ही कार्ला मुझे सूचित करेगी।”

नरेन ने ई-मेल के साथ ही अपने कम्प्यूटर में से रॉजर की एक फ़ोटो भी लगा दी थी। एम.डी. ने एकदम शोक संदेश भेजा और कहा, कि फ़्रयूनरल के बारे में उसे सूचित किया जाए। ज़ाहिर है कि नरेन को बहुत अच्छा लगा।

अचानक उसके फ़ोन में कुछ ऐसी आवाज़ आई जैसे कि व्हट्सएप पर कोई संदेश आया है। नरेन ने फ़ोन खोला और पाया कि चार्ली ने, जो कि रॉजर के स्टेशन पर काम करता था और यूनियन लीडर भी था, अपने ग्रुप में एक संदेश छोड़ा था। संदेश पूरा का पूरा नरेन की ईमेल से कॉपी किया था मगर उसे अपने नाम से ऐसे भेजा जैसे सारी सूचना उसी के माध्यम से साझा की जा रही है।

नरेन को यह बात चुभी कि चार्ली ने अपने संदेश में उसके नाम का हवाला क्यों नहीं दिया। यदि कार्ला उसे न फ़ोन करती तो चार्ली को भला कैसे पता चलता कि रॉजर की मृत्यु हो गयी है।

अभी वह अपनी भीतरी भावनाओं से जूझ ही रहा था कि अचानक एक बार फिर व्हट्सएप ने संदेश की घन्टी बजाई। संदेश खोला - “हैलो तेज, मैं रॉजर की बेटी लिली। डैड आपकी बहुत तारीफ़ किया करते थे। अभी कोरोना ने फ़्रयूनरल की डेट तय नहीं की है। अभी तो पोस्ट-मॉर्टम होना है। उसके बाद ही कुछ तय हो पाएगा।... मैं तुम्हें ताज़ा हालात की जानकारी देती रहूँगी।”

उधर ग्रुप में लगातार लोग चार्ली से सवाल पूछे जा रहे थे। ज़ाहिर है कि उसके पास उनका कोई जवाब नहीं था। कोई मृत्यु के कारण पूछ रहा था तो कोई मृत्यु का समय। और सभी अपने आप को रॉजर का बेस्ट-फ़्रेंड दिखाने का प्रयास कर रहा था। चिढ़ते हुए नरेन ने पूरी सूचना ग्रुप में दी कि कार्ला का फ़ोन उसे आया था। और यदि किसी को कोई जानकारी चाहिये हो तो उससे पूछ ले।

नरेन ने अपने मैनेजर को ई-मेल भेजते हुए कहा कि हमें रॉजर के अंतिम संस्कार के लिये कुछ पैसे इकट्ठे करने चाहियें ताकि वहाँ ज़रा ख़ूबसूरत सी पुष्पमाला बनवा कर भेजी जा सके। चाहें तो पुष्पमाला के बीच रॉजर की फ़ोटो लगवा दी जाए या फिर अण्डरग्राउण्ड रेल्वे का स्मृति-चिन्ह।

अगले ही दिन व्हट्सएप ग्रुप में चार्ली का संदेश पहुंच चुका था कि यह निर्णय लिया जा चुका है कि सब दस दस पाउण्ड इकट्ठे करेंगे ताकि एक ख़ूबसूरत सी पुष्पमाला या रीथ बनवा कर उसमें

अण्डरग्राउण्ड रेल्वे का स्मृति-चिन्ह बनवाया जा सके।

नरेन इस बात को नहीं मानता था कि ब्रिटेन में रंगभेद की नीति आज भी सक्रिय है। बल्कि वह तो इस बात को सिरे से नकार देता था। आज अचानक उसके मुंह से निकला, “साले अंग्रेज, ये सब क्यों आमामादा हैं कि मुझे कोई क्रेडिट ना मिले? क्यों ये रॉजर की मौत में भी अपनी चौधराहट दिखाने की कोशिश में लगे हैं?”

मन के भीतर से आवाज़ आई, “भाई तुम्हें क्या फ़र्क पड़ता है। अगर सब लोग एक आवाज़ में कह दें कि नरेन रॉजर का सबसे करीबी दोस्त है तो तुम्हें क्या हासिल हो जाएगा? तुम अपनी ईगो में क्यों मरे जा रहे हो? तुम यह क्यों नहीं समझ पा रहे कि हालात कैसे भी क्यों न हों तुम गोरे नहीं बन सकते। गोरो का देश है, वो जो चाहेंगे करेंगे। रॉजर तो मर चुका है। रॉजर तो तुम्हारे साथ ऐसी हरकत नहीं कर रहा। फिर इन लोगों से क्यों तुम कुछ महानएक्शन की अपेक्षा रखते हो?”

अपने दिल को तसल्ली देने के लिये कार्ला और लिली को व्हाट्सएप पर रॉजर के फ़ोटो भेजने शुरू कर दिये। एक के बाद एक भेजे जा रहा था। उधर से लिली हर फ़ोटो पर अपना कोई न कोई कमेण्ट लिखे जा रही थी। कुछ एक चित्रों में रॉजर और नरेन इकट्ठे भी खड़े थे। उसने तय कर लिया था कि लिली और कार्ला के मन में यह बैठा देगा कि रॉजर का सबसे करीबी दोस्त वही है।

नरेन ने हार नहीं मानी और एक बार फिर अपने मैनेजर को एक ई-मेल के जरिये सलाह दी कि रॉजर की याद में एक ऐसा प्लॉक स्टेशन पर लगाया जाए जिससे यात्रियों को उसे श्रद्धांजलि देने में आसानी हो। अबकी बार मैनेजर का जवाब आया, “ओके, मैं चार्ली के साथ डिस्कस करूंगा।”

नरेन का गुस्सा उसके क्राबू से बाहर हुए जा रहा था... उसका हर नया आइडिया भला चार्ली के साथ क्यों सलाह-मश्विरा माँगता है। उसने अपने मन की भड़ास पुष्पा के साथ साझा करना चाही। पुष्पा पूर्ण रूप से एक सकारात्मक व्यक्ति है। उसके मुँह से किसी की बुराई निकलती ही नहीं। उसने पूरी बात ध्यान से सुनी और कहा, “नरेन, तुम्हारे दोस्त रॉजर की मृत्यु हो गयी है। तुम्हारी सोच यही होनी चाहिये कि कैसे उसके फ़यूनरल को यादगार बनाया जाए। तुम उसके जरिये हीरो बनने के चक्कर में मत पड़ो। यह अशोभनीय है।”

अगर पुष्पा ऐसा कह रही है तो ज़रूर मैं कोई ग़लती कर रहा हूँ मगर पूरी लाइन पर उससे फ़यूनरल के बारे में कोई बात ही नहीं कर रहा।

लग रहा है जैसे वह कोई डाकिया था जिसका काम केवल और केवल मृत्यु का संदेश देना था। बाक़ी सब लोग उससे अधिक महत्वपूर्ण हैं जो कि हर बात का निर्णय ले रहे हैं।

एक बार मन में आया कि फ़यूनरल की डेट किसी को बताए ही न और अकेला फ़यूनरल अटेंड कर आए। हैरानी यह भी थी कि दूसरों के कमीनेपन की शिकायत करता नरेन स्वयं उसी कमीनेपन का शिकार होता जा रहा था। उसका उद्देश्य होना चाहिये कि रॉजर के अंतिम संस्कार में अधिक से अधिक लोग शामिल हो सकें ताकि सब मिल कर रॉजर को श्रद्धांजलि दे सकें। उल्टा खुद अकेला वहां जानने के बारे में सोचने लगा है।

दरअसल उसके मन में एक निर्लज्ज चाह थी कि किसी अंग्रेज परिवार के फ़यूनरल में एक हिंदुस्तानी को वो महत्व मिले जो किसी भी और साथी कर्मचारी को कभी न मिला हो। वह गोरे लोगों से अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देना चाह रहा था। दिखावा कभी भी उसके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं था मगर न जाने क्यों रॉजर के मामले में वह कंजूस और छोटे दिल का होता जा रहा था। वह रॉजर के फ़यूनरल में किसी और को महत्व लेते देख नहीं पा रहा था।

स्टेशन पर अचानक क्रिस्टोफ़रनोलन दिखाई दे गया। “हैलो नरेन, क्या रॉजर के फ़यूनरल की डेट फ़िक्स हो गयी? तुम तो जा रहे हो न? मैं भी अपना रेस्ट डे एडजस्ट कर रहा हूँ। मेरा और रॉजर का पुराना साथ था।”

नरेन ने सोचा कि उसे भी अपने मैनेजर से बात कर लेनी चाहिये ताकि उसे भी यह तसल्ली हो जाए कि उसे फ़यूनरल वाले दिन के लिये रिलीज़ मिल जाएगा। उसने एक ई-मेल मैनेजर को भेज दी।

जवाब ने उसके बुझे हुए दिल को और बुझा दिया, “नरेन, आप फ़यूनरल के लिये एक दिन की छुट्टी की एप्लीकेशन भेज दीजिये। मैं छुट्टी सैंक्शन कर दूंगा।” न जाने क्यों नरेन यह बात दिल में बैठाए हुये था कि उसे इस काम के लिये विशेष अवकाश दिया जाएगा क्योंकि वह रॉजर का बहुत करीबी दोस्त है। न जाने क्यों इतने वर्षों के बाद भी नरेन गोरे अधिकारियों की सोच को ठीक से समझ नहीं पाया है... या फिर समझते हुए भी उसके मन में कहीं एक चाह है कि इन लोगों के दिल में भी भावनाएँ हिलोरे मारने लगें...

नरेन के दुखते दिल पर नशतर चलाने के लिये चार्ली का एक नया ई-मेल चला आया। “यह तय किया गया है कि रॉजर की याद में

एक मेमोरियल स्टेशन पर बनाया जाए जिसमें सभी यात्रियों को भी निमंत्रित किया जाए। मैं इस बारे में अपने मैनेजर और उच्चाधिकारियों से बातचीत कर रहा हूँ। कुछ भी निर्णय लेने के बाद आपको सूचित किया जाएगा कि यह कब किया जाएगा।”

उसके मुँह से पंजाबी की भद्दी सी गाली निकली। सच भी है कि इन्सान या तो दुख में या गुस्से में अपनी मातृभाषा में ही अपनी बात बेहतर ढंग से कह पाता है। अपने गुस्से पर काबू पाने के लिये उसने एक बार फिर पुष्पा को फ़ोन कर लिया। अचानक ख्याल आया कि कहीं उसी को लेक्चर न पिलाने लगे। फ़ोन बन्द कर दिया।

मगर तब तक पुष्पा ने फ़ोन की घन्टी सुन ली थी। उसका फ़ोन वापिस आ गया, “अरे क्या हुआ। दो घंटियाँ बजा कर फ़ोन रख क्यों दिया?”

“कुछ नहीं, बस मूड थोड़ा ठीक नहीं था। फिर सोचा कि आपका मूड क्यों खराब किया जाए?”

“मगर हुआ क्या?”

“यह ऑफ़िस में मेरे साथ राजनीति खेली जा रही है। सभी गोरे मिल कर लगातार मेरी बेइज़्जती कर रहे हैं। आई फ़्रील सो हेल्पलेस!”

“क्या फिर से रॉजर को लेकर कुछ हुआ है?”

“वही तो सिलसिला चल रहा है आजकल। मैंने अपने मैनेजर को आइडिया दिया कि स्टेशन पर रॉजर का एक मेमोरियल बनाना चाहिये। और देखिये, मुझे ही उस स्कीम से निकाल दिया और अब चार्ली से बात हो रही है। ऐसे कमीने लोग हैं...!” पुष्पा के सामने कमीने से बड़ी गाली तो दे नहीं सकता था।

“हम्म... तुम ऐसा करो, थोड़ी देर टॉयलट में जाकर रो लो। दिल हल्का हो जाएगा।”

“यह क्या बात हुई कि रो लूँ मैं क्यों रोऊँ?”

“वैसे भी तो रो ही रहे हो। वैसे तो तुम इतनी मैच्योर बातें करते हो। दूसरे लोगों की काउंसलिंग तक कर देते हो और खुद को समझा नहीं पा रहे कि तुम सिस्टम के विरुद्ध लड़ नहीं सकते। यह सिस्टम है कि मैनेजमेन्ट और यूनियन मिल कर ऐसे कामों में निर्णय लेते हैं और वही हो रहा है। तुम बस डाकिये का काम ही करो। उधर का संदेश इधर करते रहो और अपने आप को नकारात्मकता से बचाने का प्रयास करो।”

“चलो छोड़ो इस बात को। कल दोपहर को फ़िल्म देखने चलते

हैं। मेरी शिफ़्ट 12:30 पर ख़त्म होगी। 13:30 का शो देखते हैं सफ़ारी में। सुना है कि छिछोरे अच्छी फ़िल्म है। अब तो नये लड़के भी अच्छी एक्टिंग करने लगे हैं। सुशान्त सिंह है इस फ़िल्म में।”

“ठीक है। अब हंसो और कुढ़ना बन्द करो।”

नरेन का मन कहीं टिक नहीं पा रहा था। क्या इतना ही आसान है इस दबाव से मुक्ति पा लेना। दिमाग़ को चैन नहीं... एक बात अचानक दिमाग़ में आती है... लगता है कि यह तो सीधा सिकसर होगा... बॉल बाउण्डरी के बाहर...

रॉजर की बेटा लिली को एक मैसेज भेजता है, “लिली, अगर तुम्हें ठीक लगे तो फ़्रयून्सल में स्टाफ़ की तरफ़ से मैं दो शब्द श्रद्धांजलि के बोलना चाहूँगा। तुम तो जानती हो कि मैं और रॉजर एक दूसरे को बहुत पसन्द करते थे। ज़रा अपनी मम्मी से पूछ लेना।”

और पांच ही मिनट में जवाब भी आ गया, “अरे यह तो बहुत बढ़िया आइडिया है। मैं ज़रा फ़्रयून्सल डायरेक्टर टैन्सलर से बात कर लूँ। वहाँ की चीफ़ जिलियनब्राऊन है। मैं तुम्हें एक दो दिन में बताती हूँ।”

नरेन को अच्छा लगता है कि लिली उसे अंकल वगैरह कह कर नहीं बुलाती। सीधी नरेन और तुम कहती है। उसे इसमें अपनेपन की खुशी मिलती है।

इस बीच व्हाट्सएप ग्रुप में रोज़ाना रॉजर की तारीफ़ का कोई न कोई संदेश ज़रूर पढ़ने को मिल जाता है। जैसे सब उसके चहेते थे।

उधर स्टेशन पर रॉजर के बनाए गमलों, कारियों पर चार्ली और डेविड मिल कर ख़ासा काम कर रहे हैं। एक लोकल नर्सरी को भी साथ जोड़ लिया है। नरेन की कुढ़न बढ़ती जा रही है। कम हो भी तो कैसे।

लिली का व्हाट्सएप संदेश फ़ोन पर चमका। जल्दी से देखा... “मेरी बात हो गयी है। सब लोग इसे लेकर बहुत प्रसन्न हैं कि तुम इस अवसर पर ट्रिब्यूट दोगे। बस ऐसा करना कि अपना ट्रिब्यूट लिख कर टैन्सलर की जिलियन को ई-मेल कर देना। - लिली।”

बस अब नरेन का मन भीतर से खुश था। कमाल तो यह है कि अपने मित्र की मृत्यु पर श्रद्धांजलि देने में वह भीतर से खुशी महसूस कर रहा था। मगर उसे तो कुछ मालूम नहीं था कि अंग्रेज़ लोग फ़्रयून्सल में श्रद्धांजलि देते कैसे हैं। वैसे तो कई बार कुछ अंग्रेज़ों के अंतिम संस्कार में क्रेमेटोरियम गया है मगर न तो उनकी बात समझ आती और न ही

उसे कोई रुचि होती। उसने तय किया कि वह बिल्कुल बी.बी.सी.अंदाज में अपनी श्रद्धांजलि पढ़ेगा।

जल्दी से लिखने बैठा। सबसे पहले गूगल पर ढूँढ़ मचाई कि किसी साथी कर्मचारी की मौत पर लिखी कुछ मॉडल श्रद्धांजलियाँ पढ़ने को मिल जाएं।

मिलीं तो कई मगर कोई भी श्रद्धांजलि उसके मन को छू नहीं पाई। अचानक उसने सिर को एक हल्का सा झटका दिया और तय कर लिया कि अब वह स्वयं अपने दिल की बात कागज़ पर उतारेगा। और एक झटके में सीधा टाइप करना शुरू कर दिया। सोच रहा था कि पांच सौ से कम शब्द ही होने चाहियें वरना बहुत लम्बी हो जाएगी—

“हैलोलिली, कार्ला और रॉजर एवं उसकी स्मृति से प्यार करने वाले सभी मित्रो...

मैं लंदन के ओवरग्राउंड में अपने सभी सहयोगियों एवं यात्रियों की ओर से रॉजरमिचम की याद में श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए यहाँ खड़ा हूँ।

एक सहकर्मी की मृत्यु कार्यस्थल में एक व्यक्तिगत और पेशेवर शून्य छोड़ देती है। मेरे मामले में रॉजर सिर्फ एक सहयोगी ही नहीं था। उससे बढ़ कर बहुत कुछ अधिक था। हमने अपने स्टेशन पर एक साथ कुछ बेहतरीन समय बिताया।

किसी भी अन्य रिश्ते की तरह, हमें एक-दूसरे को समझने में कुछ समय लगा। और वैसे भी कोई हड़बड़ी नहीं थी। हम दोनों परिपक्व थे और एक दूसरे के साथ अच्छी तरह से मिलजुल कर काम कर रहे थे।

रॉजर अपने काम में एक परफ़ेक्शनिस्ट था। हमेशा सलीक़ेदार कपड़े पहन, एक प्रोफ़ेशनल की तरह अपने काम को अंजाम देता था। वह अधिकांश नियमित यात्रियों को उनके पहले नाम से जानता था। अपने काम के बारे में उसका ज्ञान इतना गहरा था कि अन्य स्टेशनों के कर्मचारी कुछ जटिल किस्म की टिकट जारी करते समय उनकी मदद लिया करते थे।

यह कहा जाता है, "एक आदमी का मूल्यांकन इस बात को देख कर किया जाना चाहिए कि वह अपने जीवन में औरों को क्या देता है और वो नहीं जो वह प्राप्त करने में सक्षम है" ... एक शब्द में कहूँ तो रॉजर इस मामले में खरा उतरता था। मैं यहाँ रॉजर की मृत्यु का सोग मनाने के लिये नहीं खड़ा हूँ; मैं उसकी जिंदगी का जश्न मनाना चाहूँगा। वह एक विलक्षण प्रतिभा का धनी था, उसकी उपलब्धियाँ हमें प्रेरित करती हैं कि हम उसका अनुकरण करें।

एक टीम के रूप में रॉजर और मैंने सफलता का जश्न तब मनाया जब हमारे स्टेशन को वर्ष 2012 में श्रेष्ठ स्टेशन घोषित किया गया।

बागबानी रॉजर की विशेषता थी। उसने अपने स्टेशन पर हरित क्रांति का निर्माण किया। जहाँ तक बागवानी का सवाल है, मेरे पास दो बाएं हाथ हैं। खुरपी चलाना मेरे बस का काम नहीं। हमारे स्टेशन पर बनाए गए पौधों की क्यारियों की देखभाल के लिए वह अपने रेस्ट डे पर भी स्टेशन आ जाया करता था। यहाँ तक कि वह पौधों की देखभाल के लिए दूसरे स्टेशनों पर भी जाया करता था।

रॉजर तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि चार्ली और डेविड तुम्हारे लिए खुशखबरी लाए हैं। इस वर्ष भी तुम्हारे स्टेशन को सर्वश्रेष्ठ फूल-व्यवस्था के लिए पुरस्कार मिला है। यह तुम्हें हम सबकी ओर से श्रद्धांजलि है।”

उसने एक, दो, तीन बार पढ़ा। अंतिम पंक्ति तक पहुँचते-पहुँचते उसकी अपनी आँखें कुछ गीली होने लगीं। संतोष हुआ कि यदि उसके अपने दिल पर ये शब्द इतना असर कर रहे हैं तो गमजदा लोगों के दिलों को तो ये शब्द झिंझोड़ ही देंगे।

उसने ई-मेल करने से पहले ज़रूरी समझा कि लिली को एक बार पढ़वा ले तो बेहतर रहेगा। उसकी प्रतिक्रिया जान लेना ज़रूरी है।

दस मिनट में ही लिली का संदेश वापिस आ पहुँचा... “दिस इजसिम्पलीअमेज़िंगनरेन! मुझे गर्व है कि मेरे डैड के तुम्हारे जैसे साथी और दोस्त थे। तुम कितने ग्रेट हो!”

मन ही मन नरेन को महसूस हुआ जैसे उसने अपने विरोधी दल को आधा दर्जन गोल के अंतर से हरा दिया है। अब वे बॉल पकड़ कर टापते रहेंगे और वह दनादन गोल पर गोल दागता जाएगा। उससे अपनी खुशी छिपाए नहीं बन रहा था... पुष्पा को बता दे तो शायद मन को चैन मिल जाए। फ़ोन किया, “आपसे एक बात शेयर करनी है।”

“आज रॉजर की बेटी का फ़ोन आया था। उसने मुझे कहा कि मैं उसके डैड के फ़्रूनरल में ट्रिब्यूट दूँ। मैं मान गया। अब इन सालों को पता चलेगा कि मैं परिवार के कितना निकट हूँ। किसी को नहीं बताऊँगा कि मैं श्रद्धांजलि पढ़ने वाला हूँ... मैंने अपनी लिखित श्रद्धांजलि फ़्रूनरल डायरेक्टर को भेज भी दी है।... आपको भेजूँ?”

पुष्पा जानती थी कि इस वक़्त नरेन पूरी तरह भावनाओं से सराबोर है। यदि उसने न कह दिया तो बेचारे का दिल टूट जाएगा, “अरे वाह, ज़रूर भेजो। देखो मैं कहती थी ना कि रॉजर का परिवार तुमको चाहता

है तो वही लोग तुम्हारा सम्मान भी करेंगे।”

नरेन ने जल्दी से अपनी श्रद्धांजलि पुष्पा जी को ई-मेल कर दी। वह हमेशा कोशिश करता है कि पुष्पा जी के साथ कभी झूठ न बोले... मगर ऐसे झूठ से क्या फ़र्क पड़ता है जिससे पुष्पा जी का कोई नुक़सान नहीं हो रहा?”

अब नरेन ने इस मामले में चुप्पी साध ली थी। जब कभी कोई बात उठती भी तो वह ऐसा दिख़ाता जैसे उसे इसमें कोई ख़ास रुचि नहीं है।

लिली ने फ़्रयूनरल की तारीख़ भी नरेन को ही सूचित की। ज़ाहिर है कि नरेन की ईगो थोड़ी और बूस्ट हो गयी। अबकी बार उसने एक ई-मेल भी बनाई और एक व्हट्सऐप संदेश भी। दोनों में बहुत अकड़ के लिखा कि रॉजर के परिवार ने उसे फ़्रयूनरल की तारीख़ और विवरण भेज दिया है। मैं आप सबकी सुविधा के लिये साझा कर रहा हूँ।

नरेन को अभी तक समझ नहीं आया था कि उसका पाला चार्ली जैसे घाघ से पड़ा है। उसने कहीं शुक़्रिया वगैरह तो नहीं कहा, बल्कि एक नयी ई-मेल बना दी, “दोस्तो, अब रॉजर की अन्त्येष्टि की डिटेल्स आ चुकी हैं। हम लोग वाटरलू स्टेशन से रेल द्वारा जाएँगे और वहाँ पहुंच कर हमें या तो टैक्सी लेनी होगी या फिर पैदल चलना होगा। वाटरलू से ट्रेन चलने का समय सुबह के दस बजे कर तेरह मिनट का है। हम साढ़े ग्यारह तक अपने गंतव्य तक पहुंच जाएँगे। फ़्रयूनरल बारह बजे है। यानि कि हम सब समय पर रॉजर के परिवार के साथ अंतिम संस्कार के लिये ठीक समय तक पहुंच जाएँगे।”

नरेन ने आज बुरा नहीं माना। उसे यह तो अहसास था कि चार्ली इस बार भी उसे कोई महत्व नहीं देने वाला। मगर वह आहिस्ता आहिस्ता सीख रहा था कि गोरा आदमी कैसे शतरंज की चाल में हमेशा एक कदम आगे कैसे रहता है। यह भी तो एक खेल है। अंतिम संस्कार का खेला। मगर कोई नहीं जानता था कि उसकी आस्तीन में तुरूप का इक्का छिपा हुआ है।

अंतिम संस्कार के बाद क्रिमेटोरियम के निकट ही पब में भोजन का प्रबन्ध था। यह एक अब्दुत रिवाज है। नरेन तो इस रिवाज का मुरीद बन चुका है। रोना धोना घर पर, बसा सार्वजनिक रूप से मरने वाले के जीवन का जश्र मनाया जाए। दिवंगत आत्मा को खुशी-खुशी विदा किया जाए और उसी पल से एक नये जीवन का संचार शुरू।

यहाँ भी परिवार केवल भोजन उपलब्ध करवाता है। शराब या बीयर हर व्यक्ति स्वयं ही ख़रीदता है।

निश्चित तिथि पर करीब दर्जन भर संगी साथी वाटरलू स्टेशन पर पहुँच गये। सबके पास रेल्वे का पास था। इसलिये टिकट ख़रीदने का झंझट ही नहीं था। रास्ते में लिसा ने उसे कुरेदते हुए पूछा, “नरेन तुम कोई स्पीच देने वाले हो क्या? रॉजर तो तुम्हारा अच्छा दोस्त था।”

नरेन ने बस कन्धे उचका भर दिये। लिसा ने फिर बात को आगे बढ़ाया, “तुमने कोई कविता लिखी है रॉजर पर क्या?”

नरेन ने बात को पलट दिया। वह चाहता नहीं था कि किसी को भी पता चले कि वह श्रद्धांजलि पढ़ने वाला है। ट्रेन के सफ़र में सब ऐसे बातें कर रहे थे जैसे किसी दावत में जा रहे हों। कहीं ऐसा महसूस नहीं हो रहा था कि किसी मय्यत में शामिल होने जा रहे हैं।

स्टेशन से उतर कर सबने निर्णय लिया कि गूगल पर चेक कर लिया जाए कि क्रिमेटोरियम रेल्वे स्टेशन से कितनी दूर है। जवाब आया कि करीब बारह मिनट का पैदल का रास्ता है। पैदल ही चला जाए। नरेन इन दिनों दिन में कम से कम दस हजार कदम चलने का प्रयास करता है और अपने टेलिफ़ोन में उसने हेल्थ का ऐप भी एक्टिवेट कर रखा है। उसे पैदल चलने का निर्णय पसन्द आया।

बारह लोगों में से तीन काले, आठ गोरे और एक अकेला भारतीय मूल का नरेन। फ़्रयूनरलहॉल में दाखिल हुये तो वहाँ करीब पंद्रह लोग बैठे थे। कार्ला और लिली के साथ रॉजर का बेटा और भाई भी मौजूद थे। अंदर घुसते ही फ़्रयूनरल डायरेक्टर जिलियन ने पूछा, “तुम नरेन हो?”

नरेन ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और फिर मुड़ कर अपने साथियों की तरफ़ देखा... उसके चेहरे के भाव कह रहे थे कि देख लो सब लोग यहाँ केवल मेरे बारे में पूछा गया है। उसे यह सोच कर प्रसन्नता हो रही थी कि सबके चेहरे उतर गये हैं। भीतर से डाँट लगी... बदतमीज़ अंतिम संस्कार में शामिल होने आए हो। इस वक़्त घटिया सोच को बाहर करो।

रॉजर के बेटे ने अपने पिता की शान में एक कविता लिखी थी जो उसने सबके सामने पढ़ कर सुनाई।

अगला नाम नरेन का पुकारा गया कि वह अब रॉजर को अपना ट्रिब्यूट देगा। अचानक नरेन के भीतर का महान् पुरुष जाग उठा। उसने कहा कि वह यह श्रद्धांजलि पूरे रेल्वे परिवार की ओर से दे रहा है। नरेन का अंग्रेज़ी पढ़ने का अंदाज़ बिल्कुल बीबीसी टीवी जैसा था। एक एक शब्द को तौलते हुए, उसके अर्थ के अनुसार शब्दों पर ज़ोर देते हुए। पूरे हॉल में सब रॉजरमयी हो रहे थे। बीच बीच में नरेन ने कार्ला, लिली और

चार्ली के चेहरों को पढ़ने का प्रयास भी किया।

जब वह अपना संदेश पढ़ कर अपनी सीट पर वापिस बैठने को आया तो उसे महसूस हो रहा था कि चार्ली का चेहरा उतरा हुआ था। वहीं यह भी सच था कि चार्ली जल्दी से हार मानने वाले लोगों में से नहीं था। उसने अपने चेहरे को निर्विकार बना रखा था।

रॉजर के परिवार ने उसके पार्थिव शरीर को दफ़नाने के स्थान पर जलाने का निर्णय लिया था। बाइबल की हिम्स के साथ साथ कॉफ़िन आहिस्ता आहिस्ता अपने गंतव्य की ओर बढ़ चला। सच में कहीं कुछ खो जाने का अहसास नहीं था। लग रहा था कि हम सब रॉजर की उपलब्धियों का उत्सव मना रहे थे।

सिवाय कार्ला के बाक़ी सभी चेहरे किसी भी तरह के मातम से मुक्त थे। कार्ला और लिली सभी रेल्वे-कर्मियों के सामने नरेन को कस कर गले मिलीं, जैसे अपना सारा दुःख भुला देना चाहती हों। नरेन का कमीनापन यहाँ भी उसे छोड़ नहीं पा रहा था। एक दबी हुई विजयी मुस्कान से उसने सभी साथियों की ओर देखा। न जाने क्यों सबने तय कर रखा था कि नरेन को खुश नहीं होने देंगे। सब एक दूसरे से बतियाने में मस्ता।

वहाँ से दो कारों में सवार हो कर सभी सहयोगी पब में पहुँच गये। रॉजर हमेशा वोदका और डायट कोक पिया करता था। सभी मातमपुर्सी करने वाले अपने-अपने ड्रिंक खरीद रहे थे। नरेन देख रहा था, कौन कौन ड्रिंक खरीद रहा है। कौन कौन सा ड्रिंक पी रहा है। उसने आगे बढ़ कर एक डबल वोदका और डायट कोक का ऑर्डर दिया।

कार्ला ने सुना... “अरे, यही तो रॉजर का फ़ेवरिट ड्रिंक था।”

“उसी की याद के लिये तो बनवाया है कार्ला।” और कार्ला एक बार फिर हल्के से नरेन के गले लिपट गयी।

कार्ला से बातचीत के चक्कर में नरेन अपना छुट्टा वापिस लेना भूल गया। यह भी नहीं कहा कि टिप रख लिया जाए... बारटेण्डर पूरी तरह कन्प्रयूज्ड सा खड़ा रहा। फिर सिर को एक झटका देकर दूसरे ग्राहक का ड्रिंक बनाने लगा।

वहाँ भी नरेन ने देखा कि सभी गोरे लोग एक ग्रुप बना कर रेल्वे की बातें कर रहे थे। तीनों काले अपने ग्रुप में खड़े थे और वह हमेशा की तरह अकेला था। कालों के लिये गोरा था और गोरों के लिये काला था।

कार्ला और लिली ने वहाँ भी रॉजर और नरेन का एक चित्र दीवार

पर लगा रखा था। नरेन के लिये इस चित्र ने जैसे एक जादू का सा असर किया। उसे इससे बढ़कर और क्या चाहिये था कि एक गोरा परिवार एक भारतवंशी को इतना महत्व दे रहा है। उसे क्या लेना है ऐसे सहयोगियों से जिनका मुख्य काम असहयोग है।

थोड़ी ही देर में उसे थकान सी महसूस हुई। उसने कार्ला और लिली से इजाज़त माँगी कि वह अब जाना चाहता है। कार्ला अचानक एक आजदा का कैरियर बैग उठा लाई, “नरेन तुमको शायद मालूम नहीं की रॉजरपेंटिंग किया करता था। उसने अपने स्टेशन की यह पेंटिंग बनाई है। मेरे हिसाब से तो यह तुम्हारे पास ही ठीक रहेगी।”

नरेन बिना किसी को बोले वो पेंटिंग उठाए घर आ गया। सारे रास्ते वह हर पल को कई कई बार जिया और अंततः अपने बैग में से पैनाडॉल की दो गोलियां पानी के साथ निगल गया। इससे अधिक टेन्शन सह पाने की हिम्मत शायद उसमें नहीं थी।

घर पहुँच कर उसने पेंटिंग खोल कर अपने बिस्तर पर फैला कर देखी। बहुत खूबसूरत पेंटिंग बनी थी। दो दिन वो पेंटिंग उसी तरह उसके बिस्तर पर पड़ी रही और वह लिविंग रूम में सोफ़े पर सोता रहा। शायद उसे कोई निर्णय लेना था। सवाल यह था कि क्या यह पेंटिंग उसके घर की दीवारों के लिये ठीक है? यदि उसके घर की दीवारों पर लगा दी जाती है तो बस वही इस पेंटिंग को देख पाएगा। उसे क्या करना चाहिये... क्या पुष्पा से बात करनी चाहिये?

बेचैनी बढ़ती जा रही थी। मन में यह इच्छा बलवती होती जा रही थी कि यह पेंटिंग स्टेशन की दीवार पर लगेगी तो आते-जाते यात्री भी देखेंगे और रॉजर की याद अमर हो जाएगी। किससे बात करे अगर चार्ली से बात करता है तो वो सारा क्रेडिट ले जाएगा और सबको बताएगा कि कार्ला ने उसे यह पेंटिंग दी।

नरेन नहीं चाहता था कि अंतिम संस्कार के खेल के बाद अब पेंटिंग का खेल शुरू हो जाए। उसने अपने फ़ोन से उस पेंटिंग की फ़ोटो खींची और अपने मैनेजर को व्हाट्सएप कर दी... अब चार्ली उससे यह खेल नहीं कर पाएगा।



33A, Spencer Road, Harrow & Wealdstone,
Middlesex HA3 7AN United Kingdom
Mob. +44 7400313433
Email: tejendra.sharma.77@facebook.com

मैं सिर्फ बीज बेचता हूँ

डॉ. रमेश यादव

“जैसे ही वह वहाँ से उठा, मैंने केबिन के बाहर अपनी शाखा के चारों ओर एक सरसरी नजर दौड़ाई। आज कुछ अलग तरह की सुगबुगाहट थी। लोग-बाग अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। कुछ लोगों के माथे पर चिंता और परेशानी की लकीरें, ऐसी उभरी हुई थीं कि मानों सारी दुनिया का भार उन पर ही लाद दिया गया हो! कुछ लोग ठिठोली कर रहे थे तो कुछ काउंटर पर खड़ी महिलाओं को निहार रहे थे। दो महिलाएँ काउंटर से चिपकी, दुनिया की राग रंग से दूर आपस में सुंदरता और शॉपिंग की बातों में मस्त थीं। कुछ बैंक कर्मि कम्प्यूटर के ‘की-बोर्ड’ और स्क्रीन से लड़ रहे थे, तो कुछ गप्प लगा रहे थे। ग्राहक भी अपनी-अपनी धुन में थे। जिनको लोकल ट्रेन पकड़ना था, या ऑफिस जाना था, वे जल्दबाजी में थे। कुछ ग्राहक ऐसे थे जिन्हें कोई जल्दबाजी नहीं थी, वे सोफे पर इत्मीनान से बैठे थे।”

आपाधापी भरा मुम्बई का जीवन और दो घंटे लोकल ट्रेन की नारकीय यात्रा करते हुए रोज की तरह ठीक नौ बजे मैं बैंक पहुँच गया। गेट पर कुछ देहाती किस्म के लोग दरवान से हाथ जोड़कर विनती कर रहे थे। दरवान कंधे पर बंदूक लटकाए मूँछों पर ताव दे रहा था। उनके करीब गया तो पता चला किये लोग बैंक के अंदर जाने के लिए गुजारिश कर रहे थे और दरवान अपनी ड्यूटी बजाने के चक्कर में उन्हें अंदर जाने से रोक रहा था।

‘मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े पहने ये लोग भला क्या बैंकिंग करेंगे! इनके पास तो जरूरी कागजात भी नहीं होते हैं। बेमतलब वक्त जाया करते हैं,’ शायद दरवान की कुछ ऐसी सोच रही होगी।

बैंकिंग इंडस्ट्री ने आज जिस तरह से मुनाफा कमाने के लिए आधुनिकता के कल्चर को अपनाया है, उससे दरवान की इस सोच को गलत नहीं ठहराया जा सकता था। इस तरह के मसलों को एक निगाह में तौलने का तजुर्बा अब मुझे हो चुका था। चालाक व्यापारी और बैंकर अपने ग्राहक को पहली नजर में ही परख लेता है। मन ही मन मैंने सोचा, यार गरीबों को भी जीने का हक होता है। आखिर ज़िंदगी ने जितनी चादर दी है, उतना ही ओढ़ेंगे बिछाएंगे ना! हम कौन होते हैं उन्हें रोकने वाले? वे भी इस आज़ाद देश के सम्मानीय नागरिक हैं।

जैसे ही मैं गेट के करीब पहुँचा, “गुड मॉर्निंग सर” कहते हुए दरवान ने सलामी दी और दरवाजा खोलकर मेरे स्वागत के लिए खड़ा हो गया, ऐसे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो!

“रामसिंग, कौन हैं ये लोग? क्या चाहते हैं? तुम इन्हें अंदर जाने से क्यों रोक रहे हो?”

“सर....., वो पिछली बार बड़े साहब ने कहा था ना कि.....!”

वह कुछ और बोलता उसके पहले ही उनमें से एक आदमी आगे बढ़ा और बोला,

“मनीजर साहब, परनाम.....हम हैं.... रामखेलावन ! पहचानित हैं ना हमको? कुछ दिन पहले आए थे ना खाता खुलवाने के लिए अपनी मेहरारू और लड़के के साथ....”

“हाँ - हाँ जानते हैं, कहो आज कैसे आना हुआ? और ये इतने लोग कौन हैं ?”

मेरे इस वाक्य से उन सबकी उम्मीदों को छोटी-सी किरण का एक सहारा मिल गया। उनके चेहरों पर इस भाव को मैं साफ-साफ पढ़

रहा था।

“सरकार, वु हम कहे थे ना कि और परिवार वाले, बिरादरी, और गाँववालन के खाता खुलवाने के खातिर....तो इन सबको हम आपके बारे में बताया कि बैंक के मनीजर बाबू बहुत अच्छे हैं और अपने मुलूक के हैं। बड़े खुश हो गए सभै इसलिए सबन को खाता खोलवाने के लिए ले आया हूँ। साहब ई लोग अपनी कमाई इधर-उधर दबा के रखत हैं। चोर उचक्कों का डर हमेशा लगा रहता है बाबू।”

राम खेलावन हाथ जोड़कर मेरी ओर आशा भरी नजरों से निहारने लगा। मानो कितनी उम्मीदों के साथ वह आया था। बैंक कारोबार के समय में अभी आधे घंटे का वक्त बाकी था। मैंने दरवान को निर्देश दिया, “जानता हूँ तुम्हारी नौकरी पक्की है, इसका मतलब ए नहीं होता कि तुम गरीबों को चोर या डकैत समझ बैठो! आँखों के साथ भगवान ने दिमाग भी दिया है, जरा उसका भी उपयोग कर लिया करो! बैंक का समय होने पर तुम स्वयं इन सबको मेरे पास ले आओगे समझे?”

“जी सर” कहते हुए दरवान ने अपनी गरदन झुका ली। उस गरीब राम खेलावन के कंधों को थपथपाते हुए मैं अंदर प्रवेश कर गया।

मेरी आँखों के सामने देश की गरीबी का वह चित्र चलने लगा जो मैंने अपनी रूरल पोस्टिंग के दौरान अनुभव किया था। मुंबई आने से पहले मैं गोरखपुर के बडहलगंज शाखा में तीन साल तक बतौर प्रबंधक पोस्ट था। गाँव क्या होता है? किसान क्या खाता है? गरीबी किसे कहते हैं? मेहनत-मजदूरी क्या होती है? यह सब मैंने बड़े करीब से देखा था।

सरकार द्वारा जारी वित्तीय समावेशन योजना (जनधन) को लेकर मैं वहाँ किस कदर जी-जान से लगा था, वह सारा दृश्य मेरी आँखों में तैर गया। अपनी निरक्षरता और गरीबी के कारण देश का एक बहुत बड़ा वर्ग बैंकों से अब तक जुड़ नहीं पाया था। जिससे तमाम तरह की आर्थिक सुविधाओं से वे वंचित रह गए थे। ऐसे लोगों को बैंकों से जोड़ना और उन्हें विकास की मुख्य धारा में लाना ही इस योजना का मकसद है। अतः यह अपेक्षित है कि बैंक इन लोगों तक जाएँ तथा उन्हें बैंकिंग की तमाम सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ। आर्थिक असमानता समाज में एक अभिशाप है। यह कई तरह के विकारों को जन्म देती है।

समाज में आज भी ऐसे करोड़ों गरीब मजदूर, लघुकृषक, दस्तकार, निर्माण कार्य में लगे मजदूर, चरवाहे, दिहाड़िए, रिक्शावाले,

ठेलेवाले, मलिन बस्तियों के निवासी, आदिवासी अल्प अथवा अशिक्षित महिलाएँ इत्यादि का एक विशाल वर्ग है जो देश की प्रगति की रफ्तार में काफी पीछे छूट गए हैं। इनको बैंकिंग सेवाओं से जोड़ना ही वित्तीय समावेशन का व्यापक अर्थ है।

कवि नीरज जी की ए पंक्तियाँ मुझे बरबस याद आ रही थीं - अब तो मजहब कोई ऐसा चलाया जाए

जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए

मेरे दुख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा

मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए !

मैं अपनी पुरानी यादों में खोया था, मेरी आँखें नम होने को थीं। अचानक आई “सर” की आवाज ने मुझे सावधान कर दिया। देखा तो सामने केश अधिकारी और हेड कैशियर डबल लॉक (तिजोरी) की चाबी लेकर मेरे सामने खड़े थे।

ब्रीफकेस से चाबी निकालकर मैं कैशवाल्ड की ओर बढ़ गया। सोच रहा था कि रामसिंग को आज दिन में ही तारे नजर आ गए होंगे। फटेहालों का भी इस देश में अपना वजूद है, वे भी इस देश के नागरिक हैं इसका एहसास उसे होना चाहिए। नौकरी मिल गई तो अपनी गरीबी भूल गया! उन बेचारों को बैंक में आने नहीं दे रहा था ये कोई बात हुई ? माना कि सरकारी बैंक आधुनिक होते जा रहे हैं इसका मतलब ये नहीं होता कि हम बैंकों के राष्ट्रीयकरण के मूल उद्देश्य को भूल जाएँ!

आवश्यक कामों को निपटाते हुए जैसे ही मैं केबिन की ओर बढ़ा तो दरवान को यह कहते सुना, “हे बिरादर लोग हमका माफी दै दो, आज हम तुम सबको चाय पिलायेंगे और अब हमरे संग मैंनेजर के कैबिन में चलो।” उसकी इस बदली हुई सोच पर मैं प्रसन्न हो गया।

रामखेलावन की टीम मेरा इंतजार कर रही थी। मैंने उन सबसे बैठने के लिए कहा। वे लोग जमीन पर बैठने की कोशिश करने लगे। तब मैंने उन्हें कुर्सियों पर बैठने के लिए कहा। पहले तो वे लोग संकोच करने लगे पर जब मैंने उन्हें समझाया और रामखेलावन ने इशारा किया तो वे लोग बैठ गए। कुर्सियाँ कम पड़ रही थीं तो दरवान से कहकर बाहर से मँगवाई। कैंटीन वाले को फोन करके सबके लिए चाय मँगवाई। चाय की चुस्कियाँ लेते हुए रामखेलावन और उसके साथी आपस में बातें करने

लगे। तब तक मैं लॉगिन करके कम्प्यूटर स्क्रीन पर कुछ खोजने लगा। राम खेलावन का नाम पंच करके देखने लगा और कब गत स्मृतियों में खो गया पता ही नहीं चला।

जब वह पहली बार बैंक में आया था, तब भी उसे किसी ने तुल नहीं दिया था। इधर-उधर झांकते, सहमते किसी तरह से वह मेरी केबिन तक आ गया और नमस्कार करते हुए खाता खोलने की बात कहने लगा। मैंने उसे बैठने के लिए कहा।

“ठीक है सरकार” कहते हुए वह जमीन पर बैठने लगा।

“दादा, जमीन पर नहीं कुर्सी पर बैठो, यह आपही की बैंक है।”

“नहीं बबुआ, आपके सामने भला हम कैसे कुर्सी पर बैठ सकते हैं? कुर्सी गंदा हो जाई।”

“कोई बात नहीं, हमारी कुर्सी गंदी होती है तो हो जाने दो, हम साफ कर लेंगे। तुम जैसे लोग भी जब इस कुर्सी पर बैठेंगे, तब सही मायनों में बैंकिंग का मकसद पूरा होगा।” मैंने उसे समझाया।

“बाबू आप देवता आदमी हैं, आप जैसे भला इंसान अब दुनिया में कहाँ मिलत हैं! तीन बार हम आपके बैंक से वापस लौट गए, काम नहीं हुआ। आज ठान के आए थे कि मनीजर बाबू से मिले बगैर नहीं जाएँगे, तब आप तक पहुँच पाए सरकार।” उसने आगे कहा, “ई हमार फोटो, राशन कार्ड, बोटिंग कार्ड देख लो, हम दसखत करें नहीं जानत, अंगूठा लगावत हैं। खाता खुलावाकर हमरा मदद कर दो साहिब। बाहर बैठे जो साहब लोग हैं वो हमरी बात सुनते ही नहीं! सुनात बा कि सरकारी पैसा अब बैंक में जमा होई ! बड़ी मेहरबानी होगी साहिब।”

मैं उसके पेपर्स देख रहा था, तभी बड़े संकोच से वह बोला, “साहब, बाहर हमरी औरत और बेटा भी आए हैं अगर हुकूम हो तो उन लोगों को भी बुला लेवे, उनका भी खाता खोलवाना है।”

“हाँ-हाँ उनको भी बुला लो, उन्हें बाहर क्यों खड़ा किया है?”

जैसे ही वह वहाँ से उठा, मैंने केबिन के बाहर अपनी शाखा के चारों ओर एक सरसरी नजर दौड़ाई। आज कुछ अलग तरह की सुगबुगाहट थी। लोग-बाग अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। कुछ लोगों के माथे पर चिंता और परेशानी की लकीरें, ऐसी उभरी हुई थी कि मानों सारी दुनिया का भार उन पर ही लाद दिया गया हो! कुछ लोग ठिठोली

कर रहे थे तो कुछ काउंटर पर खड़ी महिलाओं को निहार रहे थे। दो महिलाएं काउंटर से चिपकी, दुनिया की राग रंग से दूर आपस में सुंदरता और शॉपिंग की बातों में मस्त थीं। कुछ बैंक कर्मी कम्प्यूटर के ‘की-बोर्ड’ और स्क्रीन से लड़ रहे थे, तो कुछ गप्प लगा रहे थे। ग्राहक भी अपनी अपनी धुन में थे। जिनको लोकल ट्रेन पकड़नी थी, या ऑफिस जाना था, वे जल्दबाजी में थे। कुछ ग्राहक ऐसे थे जिन्हें कोई जल्दबाजी नहीं थी, वे सोफे पर इत्मीनान से बैठे थे। दो-तीन लोग तो उसी सोफे पर सो भी रहे थे। जिस काउंटर पर महिलाएँ थीं, वहाँ रेल-चेल अधिक थी।

दरवाजे की ओर नज़र गई, देखा तो मिस जेनी डिसोजा का प्रवेश हमेशा की तरह “हाय-हैलो,” जैसे फ्रेश अंदाज में हो रहा था।

जेनी हमारे एक कार्पोरेट क्लाइंट की पर्सनल सेक्रेटरी थी जो मॉडर्न, चुलबुली और लटके-झटके वाली अंदाज में हमेशा पेश आती है। बैंक में वह अकसर आती रहती है जिससे उसकी पहचान लगभग सभी कर्मचारियों से है। उससे मिलकर सभी की तबियत हरी-भरी हो जाती है। उसकी अदाएँ उन तितलियों जैसी होती है जो उड़ती कम और फड़फड़ाती ज्यादा हैं।

शेयर मार्केट में अचानक बिकवाली के चलते कुछ शेयरों के भाव जैसे गिर जाते हैं, वैसे ही जेनी के आते ही बैंक में कुछ महिलाओं की स्थिति हो जाती है। वे उससे खासी खफा रहती हैं। मगर जेनी असली नब्ब पकड़ते हुए पुरुषों के आस-पास ज्यादा मंडराती है। अतः उसका काम जल्दी हो जाता है। उसके इस अंदाज से उसका बॉस भी उससे खुश रहता है।

किसी सुंदर महिला ग्राहक को देखते ही हमारी शाखा के अधिकारी देशपांडे जी अपनी पचपन की उम्र भूलकर बचपन में चले जाते हैं और फिर जवान हो जाते हैं ऐसे कि जैसे किसी बुढ़िया का गंठिया रोग ठीक हो गया हो। वे फुर्ती से फुदकने लगते हैं। वैसे ज़वांदिली की ए निशानी है और सभी को दिल से जवान होना भी चाहिए। मगर दुख तो इस बात का हो रहा था कि जब रामखेलावन आया तो उसे अटेंड करने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ा। और इस तितली के आते ही लोग भौरों की तरह गुंजन करने लगे।

अचानक आई ‘बाबूजी’ की आवाज से मैं जाग गया, देखा तो सामने रामखेलावन, अपनी पत्नी और बेटे के साथ खड़ा था। मैंने उन्हें

बैठने के लिए कहा, वे बैठ गए।

“बाबूजी ! देर इसलिए हो गई कि दरवान की डर से ए लोग अपनी जगह छोड़कर सड़क उस पार खड़े हो गए थे। इनको खोजने में समय लग गया। अब हम सबका खाता खोल देंगे सरकार, टीन के डिब्बे में रुपया रखते-रखते अब बहुत खतरा महसूस होने लगा है। रात-भर नींद नहीं आती, बहुत परेशानी में बाटीं हम लोग साहिबा।”

कैंटिनवाले से मैंने उनके लिए चाय मँगाई और उनके कागजात जाँचने लगा। सेविंग बैंक के अधिकारी को बुलाकर उसे उनके खाते खोलने के लिए कहा और अपने काम में व्यस्त हो गया।

बाद में पता चला कि कुल मिलाकर दो सेविंग, दो फिक्स डिपॉजिट और उनके बेटे का एक स्टुडेंट अकाउंट खोला गया। पासबुक और फिक्स डिपॉजिट खाते की रसीद पाते ही वह परिवार बेहद खुश हो गया। जाते-जाते वे लोग दुहाई देने लगे। मेरे पाँव छूने को लपक ही रहे थे कि मैंने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

“अरे भाई ए क्या कर रहे हैं आप लोग ! ग्राहकों की सेवा करने के लिए ही तो हमें यहाँ रखा गया है, यह हमारा फर्ज है।”

“नहीं बबुआ, सब लोग आप जैसन नहीं होत हैं। आप भल मनई हैं, हमरे लिए तो देवता हैं, पिछले कई सालों से खाता खोलने के लिए हम तरस रहे थे। इहाँ से दुइ बार और दूसरे बैंक से तीन बार हमें घर लौटा दिया गया था। आज बड़ी हिम्मत करके जब हम आपके पास पहुँच पाए तब जाकर काम हुआ। जानो गंगा नहा लिए हम आज, जय हो बम्बा मईया की। अब हम अपने गाँववाला को भी बतायेंगे और उनको खाता खोलने के लिए कहेंगे। वु लोग भी बड़े परेशान हैं बबुआ। दरअसल हम लोग मजदूर आदमी हैं, कौन सुनता है हमरी बात?”

“कोई बात नहीं, अब आप लोग जाइए और आगे जब भी कोई जरूरत हो तो बेधड़क मेरे पास चले आना। वे लोग मुड़ने को थे कि मुझे कुछ याद आया,

“सुनो! आपका लड़का बड़ा होनहार लग रहा है जब तक इसकी इच्छा है, तब तक इसे पढ़ाना, एक दिन यह भी साहब बन जाएगा। पैसों की चिंता मत करना अब ऊँची पढ़ाई के लिए बैंक से शिक्षा लोन भी मिलता है जो पढ़ाई पूरी होने के बाद या नौकरी लगने के बाद विद्यार्थी

को वापस करना होता है। तो इस बच्चे की पढ़ाई आप लोग जारी रखना।” नमस्कार करते हुए वे लोग चले गए। किसी जरूरतमंद की मदद करने के बाद की सुखद अनुभूति को मैं दिल से महसूस कर रहा था। मेरे अंदर अजीब-सी संतुष्टि का भाव जाग रहा था। इस परिवार की मदद करते हुए मैंने एक नई ज़मीन तलाशने की कोशिश की थी।

“सर, सेविंग खाता खोलने के ए फॉर्म हैं।”

इस आवाज से मेरी तंद्रा भंग हुई और मैं भूतकाल से वर्तमान में लौट आया। देखा तो मेरे सामने टीम रामखेलावन बड़ी आशा के साथ बैठी थी। उनकी चाय खत्म हो गई थी।

मैंने बैंक के उस युवा अधिकारी किशोर कदम से कहा, “आप दो लोगों को अपनी मदद के लिए ले लो और इन सबका इनकी जरूरत के अनुसार खाता खोल दो, वह भी आज ही।”

कदम ने बेमन से हामी भरी और उन लोगों को अपने साथ लेकर अपने टेबल पर चला गया। सारे कागजात लेकर उन्हें पैसेज में बैठने के लिए कहकर वह दो अन्य साथियों की मदद से उनके खाता खोलने के काम में लग गया।

बैंक में भीड़ थी, बावजूद इसके उन सभी के खाते उसी दिन खुल गए। वे लोग सुखद अनुभूति के साथ मुझे और रामखेलावन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अपनी रोजी-रोटी की ओर चल दिए। उनके जीवन में आज कोई बड़ी बात हो गई हो, ऐसा भाव उन लोगों के चेहरों पर साफ-साफ नज़र आ रहा था।

मैंने कदम और उसके सहयोगी कर्मियों की हौसलाआफ़जाई की। तब कदम ने बताया कि सर आज इनके माध्यम से कुल 15 खाता खुले तथा 20-25 लोगों के खाते खुलवाने के लिए ए लोग अपनी सुविधानुसार बाद में फिर आएंगे। आज उनके पास जरूरी कागजात नहीं थे।

मैंने कदम को विशेष रूप से धन्यवाद दिया और उसे संकेत दिया कि कुछ और लगन से यदि हम काम करेंगे तो रामखेलावन और उसकी टीम के जरिए हम कम से कम 150 से 200 जनधन खाते खोल सकते हैं जो हमारे टारगेट को पूरा करने में बेहद उपयोगी सिद्ध होगा। मैंने उसे वित्तीय समावेश, जनधन और ‘नो फ्रील’ (जिरो बॅलेंस) खातों के बारे

में और शाखा के टारगेट के बारे में विस्तार से बताया।

“आय थिंक इट्स ए चैलेंजिंग जॉब, बट आय विल ट्राय मय बेस्ट सरा” कदम ने जिम्मेदारी को संभाल लिया। उसकी अगुवाई में तीन कर्मियों को मैंने इस काम में लगा दिया। कुछ ही दिनों में रामखेलावन एवं उसकी टीम के जरिए हमने कुल 250 जनधन खाते खोले और उन्हीं लोगों के दल में दस ‘स्वयं सहायता ग्रुप’ की स्थापना की। इन खातों के साथ ही मेरी शाखा को दिया गया वित्तीय समावेशन खातों का टारगेट पूरा हो गया था।

हाल ही में मैंने रिजर्व बैंक का सर्कुलर पढ़ा था, जिसके तहत ग्रामीण भागों के साथ-साथ शहरों में भी इस योजना को लागू करने की बात पर जोर दिया गया था। कौन रामखेलावन? कहाँ से आया वह? उसका मेरा क्या नाता? कुछ दिन पहले तक मैं उसे जानता भी नहीं था। पर आज वह जाने-अनजाने में मेरे काम-काज का एक अहम हिस्सा बनकर मेरा मददगार साबित हुआ था। मन ही मन मैं बड़ा खुश हो रहा था। जिन्हें हम लोग सामान्य कहते हैं वे ही लोग असामान्य काम कर जाते हैं। रामखेलावन ने न केवल मेरा टारगेट पूरा कर दिया था बल्कि मेरे सहकर्मियों की आँखें भी खोल दी थीं।

उस परिसर के अन्य बैंक भी अपने-अपने ढंग से इस योजना को अंजाम दे रहे थे। मैं सोच रहा था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन तथा राष्ट्र का विकास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हम मनचाहे ढंग से बाजार से प्राप्त कर लें या कम्प्यूटर का बटन दबाकर रिजल्ट प्राप्त कर लें। यह कोई नट-बोल्ट भी नहीं, जिसे हम गरीबों के जीवन के कारखाने में फिट कर दें और प्रगति नाप लें। इसके कार्यान्वयन के लिए हमें अपने आस-पास के उपलब्ध श्रोतों को ही तलाशना होता है। अकसर हम लोगों को पहचानने में भूल कर जाते हैं और आया हुआ अवसर हाथ से गँवा देते हैं। मेरे मन में यह विचार कौंध रहा था। चूंकि ग्रामीण क्षेत्र में इस काम को मैंने सफलता पूर्वक अंजाम दिया था इसलिए मेरा हौसला यहां भी बुलंद था। इस तबके की मदद मैं दिल से करना चाहता था।

शाम को शाखा की बैठक में मैंने अपनी इस भावना को अपने सहयोगी कर्मचारियों के बीच साझा किया। मैंने देखा कि उनका उत्साह भी बढ़ गया था और वे लोग ग्राहकों की सेवा के लिए मेरे साथ तत्पर खड़े होते नजर आए।

अंततः वह दिन भी आया जब जनधन योजना को सफलता पूर्वक लागू करने के लिए मेरी शाखा को सर्वोत्कृष्ट शाखा का पुरस्कार प्रदान किया गया। मैं गदगद हो गया। इसका श्रेय मैंने कदम और उसके सहयोगियों को दिया। कदम और अन्य सहयोगियों को प्रशंसा पत्र देते हुए महाप्रबंधक जी ने हम सभी को प्रोत्साहित किया। मन ही मन मैं बड़ा प्रसन्न हो रहा था। कदम की आँखों में खुशी के आँसू छलकने के लिए बेताब हुए जा रहे थे मैंने उसे गले से लगाया। इस वर्ष उसका प्रमोशन भी ड्यू था।

अचानक मेरी आँखों के सामने बचपन का वह दृश्य तैर गया - मेरे पिताजी जो एक गरीब किसान थे। बरसों पहले मुंबई आने के बाद वे भी रामखेलावन की तरह बैंक में खाता खुलवाने के लिए खासे परेशान थे। उनकी भी मदद उस समय किसी बैंक अधिकारी ने की थी, तब से उनका सपना था कि मेरा बेटा भी बड़ा होकर बैंक में साहब बने। आज वे हमारे बीच नहीं हैं पर उनकी यादें जेहन में सदा मौजूद रहती हैं। मैंने अपना पर्स खोला और माता-पिता की तस्वीर को प्रणाम किया।

वे अकसर एक किस्सा सुनाया करते थे -

किसी व्यापारी ने भगवान से पूछा, “आप क्या-क्या बेंचते हैं?”

भगवान ने कहा, “तुम्हारा मन जो चाहता है वो सब कुछ !”

तब व्यापारी ने कहा, “क्या आप मुझे सुख, शांति, खुशी और सफलता देंगे?”

भगवान मुस्कराए और बोले, “वत्स! मैं सिर्फ बीज बेंचता हूँ, फल नहीं।”



481 / 161 - विनायक वासुदेव बिल्डिंग
एन. एम. जोशी मार्ग, चिंचपोकली (पश्चिम)

मुंबई - 400011, फोन - 9820759088 / 7977992381

एक था नेत और एक थी आनू

डॉ. संगीता सक्सेना

“सभी साथियों ने आजीविका के लिए जो मिला वही साधन अपना लिया। यहां भी फूल ही नेत की जीविका का साधन बने। धीरे-धीरे एक छोटा-सा शोरूम हो गया उसका फूलों का। फूलों के गहने ही नहीं तरह-तरह के गुलदस्ते बनाने में भी प्रवीण हो गया था नेत। पर जब फूलों पर उसके हाथ चलते तो आंखों से अविराम धाराएं बहती रहतीं। हाय... इस कला की जनक कैसी होगी.. मेरी नेतानू किस हाल में होगी.. जिंदा भी होगी या...। ओरिहू देख लेता तो लाड लड़ाता बाप का। “बस बस, रोना-धोना बंद। देखना मैं एक दिन मिला दूंगा आपको मां से।” उजाड़ मन में आस का दीप बुझने ना पाता। बीस साल का ओरिहू अब नौकरी करने लगा था किसी बड़ी कंपनी में। बच्चे से बड़े हुए उसके साथ के अन्य युवक भी अपने जीवन व्यवस्थित कर चुके थे। ओरिहू अक्सर छोटा जहाज किराए पर लेकर छुट्टी मनाने अपने दोस्तों के साथ अनजान द्वीपों की यात्रा पर निकल जाता था।

“यह फूल तुम्हारे माथे पर यूँ चिपक जाता तो तुम कितनी सुंदर लगतीं। बिल्कुल ऐसे जैसे चांद पर भी बिंदा!! पर चिपकाऊं कैसे?” नेत ताजे खिले लाल लिली के बड़े से फूल के पिछले हिस्से को हटा, बिंदा बना उसके माथे पर रखता। “धत~, हटाओ भी, फिर नहीं आऊंगी मैं तुझसे मिलने..” आनू कहती। “तो मैं आ जाऊंगा लिली लेकर।” ऐसे ही एक प्यार भरी सुबह सुर्ख लिली के साथ हरी लता को गूथ बहुत सुंदर मुकुट बना उसके सिर पर धर दिया नेत ने और निरखता रहा देर तक सामने बैठा नेत। प्यार और लाज से जुड़ाती आनू की दृष्टि ही न उठ सकी ऊपर, कुछ बोलना तो दूर। फिर तो लिली के कंगन, तरकी, मुंदरी, झल्लर, पायल, माला, बाजूबंद, कमरबंद,..... सब बनने लगे और बस आनू पर ही सजाता नेत। दूसरी लड़कियां चोरी-छिपे यह लीला देख

हिंस से जलतीं। पर नेत और आनू अपनी ही दुनिया में मगन रहते।

पर वह चला गया था छोड़कर उसे। जल्दी लौटने का वादा करके आनू ही क्या, दो सौ ढाई सौ लोग चले गए थे। अब बची हुई चालीस-पचास की आबादी में क्या तो द्वीप, क्या रौनक, क्या तीज त्योहार। समुद्र के बीच में होते हुए भी द्वीप की प्यास बढ़ती ही चली गई। पानी की भी, धन की भी। सहेजा ही नहीं। कोई कहता दक्षिण दिशा वाले द्वीप की काली जादूगरनी की नजर है इस द्वीप पर। कोई कहता खुशहाली को अपनी ही नजर लग गई, कोई कहता ऊपर की हवा है। पर बीस बरस गुजरे, इस द्वीप की रौनकों का आसपास कोई द्वीप सानी नहीं था। वनस्पति हरी-भरी थी, उत्सवों के बहाने थे, ढोलों की टंकारें थीं, नृत्यों की थापें थीं, पकवानों की खुशबुएं थीं, समंदर की तेज उछालें थीं, पैर भर धरती थी, कौली भर आकाश था।

बचपन में कोई भी दिन नहीं जाता था जो नेत और आनू मिलते ना हों। वयस्कता आने पर प्रगाढ़ता और भी गाढ़ी हो गई। एक समुद्री दुर्घटना में दोनों के माता-पिता को बहुत पहले ही समुन्दर देवता ने अपने पास बुला लिया था। द्वीप के बाशिंदों की करुणा ने उन दोनों के बड़े होने तक उन्हें दाने-पानी की कमी महसूस नहीं होने दी। उनके खिलखिलाते प्यार को शादी के कोमल-बंधन में बांध दिया और थमा दी डोर एक-दूसरे के हाथों में।

“तुम इतने सुंदर गहने बनाते हो फूलों के कि...” उसकी बात टोक वह छेड़ता, “मैं कहां बनाता हूँ, आनू बनवाती है मुझसे जबरना।” “आनू नहीं, नेतानू।” “अब यह नेतानू कौन है?” “नेत की आनू यानी नेतानू। मेरा नाम अब नेतानू है।” भीगी पलकों वाले नेत के पास इस प्यार के बदले शब्द ही नहीं बचे कुछ कहने को, आलिंगित कर सब aaaअकह प्रेम akह डाला। “हाँ तो मैं कह रही थी कि गहने ज्यादा बनाकर तुम द्वीप पर सबको देते क्यों नहीं? बदले में जरूरत की चीज घर आएगी। हम किसी

पर भार नहीं रहेंगे। हमें किसी का मुंह भी नहीं तकना पड़ेगा।” कुछ पल बाद नेह से भीगी आवाज में आनू ने कहा। सुझाव में गृहिणी के गंभीर दायित्व थे। बढ़ने वाली ज़रूरी ज़िम्मेदारियों का अहसास था। “ओहो, मेरी नेतानू सुंदर के साथ इतनी समझदार भी है। तूने तो मेरी चिंता ही दूर कर दी।” निश्चिंतता ने आसमान को सितारों वाली खुशियों से भर दिया। पूनम के चांद को और सुंदर कर दिया। दोनों सो गए प्रेम मगन।

जीवन सहज हो, सुंदर हो और उसमें प्रेम हो तो वह कपूर की सुगंध सा उड़ता जाता है। नेत का फूलों का हुनर निखरता गया। शादी ब्याह, घर बनाई, बच्चे का जनम, उत्सव, जलसा, अंतिम किरियाकरम --कुछ भी अब बिना नेत के फूलों के ना होते। गरमी से बारिश तक का समय लिली का रहता बाकी दूसरे फूलों का। नेतानू तरह-तरह के फूल उगाती घर के आगे पीछे। और नेत गहने बनाता। बदले में कभी पालतू जानवर मिलता, कभी अन्न मिलता, कभी नारियल, कभी शहद, कभी छालवस्त्र और कभी कुछ भी नहीं। दोनों के ओठों की मुस्कराहट माथे की शिकन कभी न बनने पाती। पूरे द्वीप के लाइले थे दोनों। दो बरस में ही उन दोनों का लाइला ओरिहो आ गया। फूलों की बगिया और भी निखर गई।

बहुत प्यार करती थी वह अपने नेत को। नेत भी उसके असीम गुरुत्वाकर्षण में बंधा बस उसी के फेरे लिया करता। पर हतभाग्य! पन्द्रह-बीस बरस पहले, सभी की रवारवी में नेत भी चला गया था उसे छोड़कर। बात तो ये हुई थी कि “मैं ये गया और ये आया, बाहर की दुनिया देखा। शायद बेहतर हो! तेरे बिना कहीं नहीं रुक सकता मैं। पर न वो आया, न उसकी कोई खबर। गया हुआ कोई भी तो द्वीपवासी, संगी-साथी वापस नहीं आया था। अधिकतर जने तो परिवार सहित ही गए थे। किसी-किसी के पीछे ही रोने वाला बचा था। यहां तो बेचारी अकेली रह गयी नेतानू के पास जीने का कोई बहाना ही ना रहा था। पांच साल का ओरिहो भी तो जिद करके पिता के साथ ही चिपक गया था, कुछ ही दिनों में वापस जो आना था। कुछ बुरा न नेतानू ने विचारा, न आनू ने। पर दुर्भाग्य का कुदेवता जाग चुका था। उसी का तो वाहन था वह रक्तवर्णी जहाज जो उस बेनाम द्वीप से छीनकर ले गया सैकड़ों लोगों को अपने साथ, सुनहरे सपने दिखाकर।

हुआ क्या था कि उस रात में कहीं से दिशा भटककर उस द्वीप पर आ लगा था वह आदमखोर जहाज। द्वीप के लोग सीधेसादे थे। बल बहुत था। पर छल नहीं जानते थे। न कपट बहता था उनकी रगों में। जहाज के चारों चालकों की खूब आवभगत की द्वीपवासियों ने। उनकी बातों के जंजाल में फंसकर अपना सुनहरा-धन और प्रकृति-धन भी दिखाया। उनके इस सुनहरी धन, जिसे बाहरी दुनिया में सोना कहते थे, का बाहर अकूत मोल था। यहां

यह धूल में पड़ा था। शुद्ध रूप वाली इस कीमती कच्ची धातु का बाजार भाव बहुत अधिक होने के अनुमान ने उन सबका सिर घुमा दिया। छुपे लोभ ने उन दुष्ट चालकों के मन में सर उठाया। सीधे ही कुछ करते तो जान से हाथ धो बैठते। इसलिए सोच-समझकर उन्होंने उनके सामने बाहर की रंगीन दुनिया के रहन-सहन, चालचलन, पहनावे, खानपान, टीवी आदि के ऐसे-ऐसे रंगीन चित्र खींचे, अपनी बातों में ऐसे झांसे दिए, बनावटी प्यार में ऐसे लिपटाया कि उसे करीब से देखने जाने के लिए जवान-जहान द्वीपवासियों ने अपना सब सुनहरा-धन उन अजनबियों को सौंप दिया। चढ़ती उम्र का उछाह अप्राप्य को पाने के लिए सदा लालायित रहता है। कुछ तो मन ही मन वहीं बसने के लिए भी तैयार हो गए थे, कुछ घरवालों को साथ ही लेकर चलने को आमादा थे। न घरवालों की मिन्नतों ने असर किया, न बुजुर्गों की अनुभवी समझाइश ने। फिर सबके सब उन लालची अजनबियों के साथ चले गए अनजान देस, दो दिन में वापिस आने की कहकर।

रो-रोकर बेहाल हुई, फिर से अनाथ हुई, बेसहारा हुई नेतानू को बहुत दुलारा बचे-खुचे उम्रदराज द्वीपवासियों ने, पर दुःख ने पत्थर कर दिया था उसे। वह रोज आस लिए वहीं जाकर बैठ जाती जहां से वह निरमोही जहाज रवाना हुआ था। कोई जहाज तो क्या, कोई नाव तक कभी किनारे ना लगी। फूल उगाकर दिनचर्या जस की तस रखते हुए ऊपर से उसका जीवन भले सामान्य चल रहा था पर उसे न फूलों में रंग नजर आते, न कलियों में रंगता। दुनिया वहीं ठहर गयी थी नेतानू की। अन्य बचे द्वीपवासियों को भी रो-धोकर दुर्भाग्य से समझौता करना पड़ा था। जीवन का कठोर नियम ही यही है कि जो स्थितियों से अनुबंध कर लेता है, हकीकतों को स्वीकार कर लेता है, वह जी जाता है, नहीं तो उसकी सांसे उसका साथ छोड़ देती हैं। और परिस्थितियों से तालमेल न बिठाने वाला यदि जी भी जाता है तो मृतक समान ही होता है।

उधर, पांच दिन बाद जहाज किनारे लगा तो आनू और द्वीपवासी पहुँच गए थे अजनबी दूरदेश। पर सबकी खुशी काफूर हो चुकी थी। अच्छा तो उन्हें जहाज पर भी नहीं लगा था जब जहाज चालक उनसे भद्दे और अपमानजनक ढंग से बात करते थे। इस देस में तो भाषा, नागरिकता, रोजी-रोटी, वेशभूषा, पहचान के ही संकट नहीं आन खड़े थे, जीवन का भी संकट आन खड़ा था। घबराकर अगले दिन ही भोले-भाले द्वीपवासियों ने वापस अपने द्वीप जाना चाहा पर वह जहाज वाला मालिक तो ओझल हो चुका था। बहुत ढूँढा पर मिला ही नहीं। उसे तो उस द्वीप के वासियों से होने वाली अपनी अंधाधुंध, अनापेक्षित सुनहरी कमाई से ही तो मतलब था। दूसरा कोई जहाज उन्हें वहां वापस तब ले जाता जब वह उस द्वीप का नाम बता पाते। आकाश जैसा फैलाव

समंदर का। नाम तो था नहीं द्वीप का, भोले द्वीपवासी, दिशा जैसी कोई चीज होती है, कैसे समझ पाते? जाया कैसे जाए? अजीब मुसीबत थी। अब दो ही रास्ते थे- मरो या नया संघर्ष करो जीने के लिए। जरूरतों ने उन सबकी एकता और प्यार को और भी मजबूत कर दिया था। एक की मुसीबत में दूसरा उसका कवच बन जाता और तीसरा उसकी ढाल। दस-पंद्रह साल लग गए सब द्वीपवासियों को उस अनजान देश में अपने जीवन पटरी पर लाने में। आनू को छोड़कर आने का नेत का अपराधबोध उसे जीने नहीं देता था और ओरिहू का मुख उसे मरने नहीं देता था। साथियों के समझाने और द्वीप तक वापस पहुंचने का कोई भी चारा ना होने के कारण उसने हार मान ली दुर्भाग्य के आगे।

सभी साथियों ने आजीविका के लिए जो मिला वही साधन अपना लिया। यहां भी फूल ही नेत की जीविका का साधन बने। धीरे-धीरे एक छोटा-सा शोरूम हो गया उसका फूलों का। फूलों के गहने ही नहीं तरह-तरह के गुलदस्ते बनाने में भी प्रवीण हो गया था नेता पर जब फूलों पर उसके हाथ चलते तो आंखों से अविराम धाराएं बहती रहतीं। हाय... इस कला की जनक कैसी होगी.. मेरी नेतानू किस हाल में होगी.. जिंदा भी होगी या...। ओरिहू देख लेता तो लाड लड़ाता बाप का। “बस बस, रोना-धोना बंद। देखना मैं एक दिन मिला दूंगा आपको मां सो।” उजाड़ मन में आस का दीप बुझने ना पाता। बीस साल का ओरिहू अब नौकरी करने लगा था किसी बड़ी कंपनी में। बच्चे से बड़े हुए उसके साथ के अन्य युवक भी अपने जीवन व्यवस्थित कर चुके थे। ओरिहू अक्सर छोटा जहाज किराए पर लेकर छुट्टी मनाने अपने दोस्तों के साथ अनजान द्वीपों की यात्रा पर निकल जाता था। ना राह का पता था, ना दिशा का, मंजिल पर पहुंचता कैसे? भटकता रहता फिर वापिस आ जाता। पिता की गोद में सिर रखकर सुबकने लगता तो अब नेत समझाता, “ना बेटा, जो हारे वो मनुज कहां? कोई बात नहीं।”

जहाज चलते सारी रात गुजर चुकी थी। सुबह ओरिहू ने डेक पर जाकर दूरबीन से चारों तरफ देखा तो पेड़ों से घिरा एक छोटा सा टापू नजर आया। उसने अपने दोस्तों को आवाज लगाई और उत्साह से द्वीप की ओर इशारा किया, “देखो, कितना सुन्दर है? यहीं रुकते हैं आज।”

“नहीं यार, ना कोई रौनक है ना आकार, जहां कुछ खाने-पीने का, मजे करने का साधन हो कहीं ऐसी जगह चलते हैं।” एक ने विरोध किया।

“प्लीज, बस एक दिन, फिर आगे चलेंगे।” ओरिहू के अनुरोध पर सब सहमत हो गए।

सब एक ही भाव के भीगे जो थे। जहाज उस द्वीप की ओर मोड़ा गया। पास आते कुछ आकृति स्पष्ट होने लगी। कोई द्वीपवासी मछली का जाल पकड़े खड़ा था। एक औरत आंखों के ऊपर हाथ से आड़ ले

किसी की राह तक रही थी। “देखा, मैंने कहा था ना यहां कोई होगा जरूर।” ओरिहू चिल्लाया। जहां तक जहाज जा सकता था आ गया। चारों दोस्त पानी से निकलकर आगे बढ़े।

“जरा संभलकर कहीं हमारी चटनी ही ना बना दें यह द्वीपवासी।” एक ने कहा।

“ओखली में सिर दिया मूसलों से क्या डरना।” दूसरा बोला।

“जैसे खुद तो आसमान से उतरे थे उस देस में। हम सब ऐसी ही किसी जगह की पैदावार हैं।” तीसरा बोला।

और चौथा? उसके पैरों में तो जैसे पहिए लग गए थे सबसे आगे भागता हुआ आकृति के पास पहुंचा, कुछ बोलता उससे पहले ही चकित हो गया!! “अरे नहीं, यह तो पुतला है, एकदम सजीव!!”

“क्या?” सब आ गए थे फिर उस औरत तक पहुंचे वह भी पुतली थी।

“इन खेल रहे बच्चों को जरूर पता होगा।” ओरिहू ने कहा तो सब उधर चले। पर यह क्या? यह सबके सब पुतले थे। बोल पड़ने को आतुर पुतले। आश्चर्य को शब्द नहीं मिल रहे थे। आंखों में इशारा हुआ, सब सावधानी से टापू के अंदर की ओर बढ़े।

कोई नारियल के पेड़ पर चढ़ने की कोशिश में था। कोई सुपारी बीन रहा था। उस औरत के पेट पर बच्चा लटका हुआ था। पर सब बेजान। अजीब सी आकृति का जानवर भी वहीं था। सबको लग रहा था जैसे किसी कहानी के कल्पनालोक वाले द्वीप में आ गए हैं। “यह बड़ा सा खुला-खुला कोई मकान है। दरवाजा भी खुला है, चलो इसमें देखते हैं।” ओरिहू बोला। अधेड़ उम्र का एक व्यक्ति खड़े होकर कुछ सिखा रहा था। जमीन पर बैठे बच्चे सीखने का प्रयास कर रहे थे। पर सबके सब पुतले। अब सबका सिर घूमने लगा। कहीं वे फंस तो नहीं चुके। जितने कमरे थे, सबमें वही सजीव सन्नाटा।

इतने में ही कहीं हलचल दिखी। दो लड़के सच में भागते दौड़ते दिखे तो खुद पर शक होने लगा उन्हें कि कहीं गलत तो नहीं दिख रहा। पर नहीं यह सच था उन्हें मुश्किल से पास बुलाया। अजनबियों को देख बुरी तरह घबरा चुके थे। बड़ों के बारे में पूछा तो उन्होंने एक तरफ इशारा किया। वे उनके साथ चल पड़े। रास्ते में हाट बाजार पड़ा, वहां भी तो वही अबोली आकृतियां। मंदिर में देवता तो अबोला होता ही है, यहां पुजारी भी अबोला था। यह कैसा अद्भुत चमत्कार था? कैसी अनूठी कला थी? वे द्वीप के अंदर की तरफ जा रहे थे। यदा-कदा हलचल नजर आ रही थी। वे दोनों किशोर उन्हें द्वीप के कदाचित्त सबसे बड़ी उम्र

के आदमी के पास ले आए थे। शायद वह उनका मुखिया रहा होगा। अभिवादन के बाद कुछ इशारों से, कुछ टूटी-फूटी भाषा में बातचीत शुरू हुई, “इतने सारे पुतले क्यों है?”

“यहां आबादी बहुत कम है इसलिए द्वीप का सूनापन भरने के लिए बनाए हैं। तुम बताओ पहले, तुम लोग कौन हो? यहाँ क्यों आए हो?” बुजुर्ग कुछ और छिन जाने की आशंका से सशंकित हुआ।

पर ओरिहू तो अपने बचपन की धुंधली तस्वीरों को साफ़ करने में लगा था, “आबादी क्यों कम है?”

अपना प्रश्न भूल वह बुजुर्ग पन्द्रह बरस पहले के दुर्भाग्य को याद करते रुआंसे हो गए। “...बेटा, सालों पहले एक रक्तवर्णी जहाज भटकता हुआ यहां आया था, रुका था और सब जवान औरत, मर्द, बच्चों को ले गया था जिनका आज तक ना कोई अता है ना पता। रह गए थे उस समय के बुजुर्ग और अर्धेड लोग। बुजुर्ग तो मेरे अलावा कोई बचा ही नहीं अब। ये जो दो जवान बच्चे देख रहे हो ये मेरे छोटे बेटे जिन्हू और उसकी पत्नी पितोऊ के हैं। जिन्हू की माँ मेरी पत्नी थी और पितोऊ की माँ मेरे दोस्त की। दोनों माओं को उस वक्रत पूरे दिन था इसलिए उन्हें यहाँ रुकना पड़ा। और मुझे तो आहत थी बुरे दिनों की सो मैं गया ही नहीं। नहीं तो ये दोनों भी नहीं..।”

द्वीप पर गुनगुनी सी धूप फैल चुकी थी। “...अब इन लोगों को तुम लोग ले जाना और बाहरी दुनिया में छोड़ देना...बेचारे जीना सीख जाएंगे। कुछ दिनों में हम सब तो मरखप जाएंगे फिर कौन इन्हें...।”

ओरियो की स्मृतियों को ताजी हवा मिली। बचपन की आकृतियाँ आकार लेने लगीं।

“यह सब कौन बनाता है?” दोस्त का मतलब पुतलों से था।

“एक दुखियारी औरत बनाती है। अपना, अपने मन का और द्वीप का सूनापन भरने के लिए।”

“द्वीप का...क्या उसका पति भी..।” दूसरे ने पूछा।

“एक दिन में थोड़े ही बने हैं पिछले पंद्रह साल से बना रही है नेतानू। उसका पति और पांच साल का बेटा भी था जाने वालों में... यह बनाकर ही तो वह जिंदा है हमें जिंदा रखे है। इन पुतलों से द्वीप का कोना-कोना भरा पूरा दिखाई देता है..। सूनापन नहीं काटता। द्वीप के आबाद होने का भ्रम रहता है।”

सच में, भ्रम ही तो हैं जो मनुष्य को सहारा दिए रहते हैं। आज अपनी खोज पूरी होती लग रही थी ओरिहू को। यादों में खोये-खोये ही पूछा, “..वह फूल भी उगाती थीं बड़े बड़े।”

“हां, लिली के। पर तुम्हें कैसे अंदाजा?” कोलिहू बाबा ने पूछा।

“बाबा, मैं नेत और आनू का बेटा ओरिहू।”

“..हे ईश्वर! कहीं यह सपना तो नहीं है!!”

“नहीं बाबा, और यह है आपका बड़ा पोता।” ओरिहू ने अपने पहले दोस्त की ओर इशारा किया। सब हकबक थे पर प्रसन्न थे।

“..मुझे जल्दी से मां के पास ले चलो बाबा।”

“हां हाँ, चलो। पर वह पथरा गई है तबसे। एकदम मत बताना बेचारी को..धीरे-धीरे बताना। बेटा..नेत और बाकी सब कहां हैं..क्या हुआ उनका..?” अपने पोते को कसके पकड़े-पकड़े ही चलते-चलते कोलिहू बाबा ने पूछा।

अपनी जड़ों की खोज असीम सुख देती है और जड़ें भी तो अपनी शाखाओं और पत्तियों से ही समृद्ध होती हैं। सबके सब चल पड़े नेतानू के घर की तरफ। यह क्या? वहां पांच साल का ओरिहू तो हर तरफ मौजूद था। खेलता हुआ ओरिहू...पढ़ता हुआ ओरिहू...नहाता हुआ ओरिहू...मां को भगाता हुआ ओरिहू...रोता हुआ ओरिहू...और सोता हुआ ओरिहू। सच के ओरिहू की आँखों से अविरल धाराएँ बहने लगीं। और नेत भी तो अभी अभी लौटा है काम से। हाथ मुंह धो रहा है। इतने सजीव पुतले। समय वहीं का वहीं ठहरा-ठहरा। ठिठका सा। सिसका सा। किसकी आँखें न भर आती इन पुतलों के बनने का मर्म जानकर...सभी के अश्रु बहने लगे थे।

“..बेटा, इन्हीं के सहारे तेरी मां जिंदा रहने की सजा काट रही है।”

“मां ही क्या, हम सब भी सजा ही काट रहे हैं जाने किस अपराध की।” नेतानू को देख ओरिहू एकदम उससे गले लगने को आतुर हो गया पर उसने रोका खुद को बाबा के इशारे के कारण। कोलिहू बाबा ने आवाज लगाई, “नेतानू क्या कर रही हो?”

“यह फूल तोड़ रही हूँ बाबा। आनू आने ही वाला होगा। बोलेगा इतनी देर हो गई अभी तक नहीं तोड़े, अब गहने कैसे बनाऊं?”

“अच्छा..अच्छा..वह देखो तुमसे मिलने कौन आए हैं। बच्चे आए हैं।”

“हां बाबा, कुछ खाने को लाती हूँ अभी। ओरिहू भी आ रहा होगा न खेलकर।” नेतानू की चहक में छिपी चिंतायें उसके व्यथित चित्त की साथिनें थीं।

“यही जीवन है इसका। कमर झुक गई पर इसकी जिंदगी वही ठहरी है पंद्रह बीस बरस पहले। बेटा, इसे मिलवा दो नेत से। नहीं तो इसके प्राण भी नहीं निकल पाएंगे..बहुत प्यार करती है ये अपने नेतानू

से, बेटे से।”

“चिंता मत करो बाबा। अब सब ठीक हो जाएगा। हम नेत को ही नहीं सबको लेकर यहां आयेंगे। सब आने के लिए व्याकुल हैं पर द्वीप का पता ही नहीं था। आते कैसे?” माँ के कलेजे से लगने की हॉस ओरिहू को मन में ही दबानी पड़ी, उसकी मानसिक हालत को देखते हुए।

द्वीप खोज लिया गया था। दिशा नोट कर ली गई थी। फोटोज ले लिए गए थे। अब द्वीप के खोजने या रास्ता भटकने का सवाल ही नहीं था। सोच-विचारकर चारों ने तय किया कि ओरिहू यहीं रुकेगा और बाकी तीन दोस्त जाकर नेत और बाकी सभी द्वीपवासियों को लेकर दो दिन में यहाँ आएंगे।

दो दिन बाद सभी आ गए। खुशी आ गई। जैसे रौनक आ गई। उत्सव आ गया। नृत्य आ गए। गीत सजीव हो गए। वनस्पति हरिया गयी। समंदर की उछालें तेज हो गयीं। सबके गिलेशिकवे कहे सुने जाने लगे। पर नेतानू अपनी उसी दिनचर्या में लगी थी। उसके लिए मानो कुछ बदलाव ही नहीं था। रोज की तरह वह पानी लाई घर में लगी लिली में देने लगी कि पीछे से आनू ने कंधे पर हाथ रखा,

“नेतानू अभी तक काम में लगी हो। आओ इधरा बैठकर बातें करेंगे।”

“अब तुम मेरा ही लाड़ लड़ाओगे या गहने भी बनाओगे। जाओ फूल रखे हैं उधर तोड़कर मैंने डलिया में।”

“आओ ना पहले यहां बैठो। आज हम बातें करेंगे फिर काम करेंगे।” अपने आंसू छुपाते हुए नेत ने पंद्रह-बीस साल पहले वाला लाड़ ही अपनी आवाज में लाकर उसे मनाने की कोशिश की।

“अच्छा जी, यह लो।” बिना किसी शिकवा-शिकायत के नेतानू नेत के बिल्कुल करीब आकर बैठ गई। जैसे कुछ हुआ ही ना हो, समय गुजरा ही ना हो।

नेत ने विलगते हिरदय और बहते भावों से फूलों की लड़ी नेतानू के सफ़ेद हुए बालों में सजा दी। “बिंदा कौन लगाएगा जी?” कह आनू लजा गयी। नेत ने लिली का बिंदा भी उसे लगा दिया। ओरिहू भी पांचसाला बच्चे की तरह उसकी गोद में सिर रखकर धीरे से लेट गया। माँ बेटे का माथा चूम प्यार से उसके बालों में उंगलियाँ फिराने लगी, माथा सहलाने लगी। ममता के इस अकह स्पर्श को बरसों से तरसते ओरिहू ने अपने भावों को बह जाने दिया माँ की गोद में। काश! विधाता इस वक़्त समय की चक्की वहीं की वहीं रोक देते।

बाकी सब परिवार भी मिलजुल चुके थे। इकट्ठे हो चुके थे। नेत ने बताना शुरू कीं यहां से जाने के बाद की बातें.....न आ पाने की

मजबूरियां...संघर्ष की कहानी...जीवन की जदोजहद..। बुरी यादों से सबके जी भर आए।

“फिर तो आपको पता ही है।”

“हां बेटा, अब ईश्वर का शुक्रिया करो। प्रेम से रहो सब यहीं। इसी द्वीप पर।” कोलिहू बाबा ने सबको खूब आशीषा। नए सिरे से द्वीप पर जीवन शुरू करने की सलाह दी।

“नेतानू..! नेतानू..!!” कहानी सुनते-सुनते नेतानू शायद सो चुकी थी। नेत ने सोचा कि अंदर लिटा दूं....ओह ये क्या.. नेतानू तो पुतली बन चुकी थी.. शायद अति सुख से, शायद अति दुख से। सच्चे प्रेम के दो पल ही पूरा जीवन जी जाने के लिए भरपूर होते हैं। वह चिरनिद्रा में सो चुकी थी। शायद आनू और ओरिहू से मिलने की प्रतीक्षा ही उसको जिलाए रखी थी।

प्रेम के अनेक रूप होते हैं व्यक्त-अव्यक्त, कथित-अकथित। विपरीत समय में भी प्रेम त्याग और विश्वास की मांग करता है। इस कसौटी पर खरा उतरना ही प्रेम की गहराई को नियत करता है। नेतानू ने पुतले बनाकर खुद को जिंदा रखा था और अपने प्रेम को भी। अब उसके बनाये पुतलों से उसकी यादों को, उसके प्रेम को जिंदा रखेंगे -- यह ओरिहू और उसके दोस्तों ने ठान लिया था।

अब द्वीप की पहचान न गुमे, उसका स्थायी पता बने इसलिए नेत और आनू के प्रेम के प्रतीक इस द्वीप का नाम रखा गया- ‘नेतानू द्वीप’। इन्टरनेट साइट्स पर तस्वीरें, दिशा और पता अपलोड कर नई पीढ़ी ने नेतानू द्वीप को पर्यटन स्थल में बदलने का ठाना और जल्द ही बदल भी दिया। द्वीप का अनूठा आकर्षण थे लिली के फूल, फूलों के गहने और सजीव पुतले। आनू ने अपना शेष जीवन इन्हीं को जस का तस बनाए रखने, प्रेम को जीवित रखने और जन जन में फैलाने में लगा दिया। अब खूब पर्यटन था, खूब आय थी नयी पीढ़ी के लिए। ‘नेतानू द्वीप’ उर्फ पुतली द्वीप की ख्याति दूरदराज तक फैलती जा रही थी। नेतानू का प्रेम अमर हो गया था। किवदंती बन गया था। जब तक जीवित रहा तब तक हर आने-जाने वाले को आनू अनोखी प्रेमपगी दर्दभीगी कहानी जरूर सुनाता था...एक था नेत एक थी आनू....।



नीड़, 72 / 123 पटेल मार्ग, मानसरोवर जयपुर – 302020

टेलीफ़ोन-0141-2363686(कार्या.), 2784545(नि.)

Mob.: 9413395928 Email: sangeeta20saxena@gmail.com

कश्मीरी लोक संस्कृति में स्त्री :

'नीलमत पुराण', 'राजतरंगिणी', 'कथा सतीसर' से 'कश्मीरनामा' तक

कृष्णा अनुराग एवं गौरव रंजन

“शिशु का जन्म माता-पिता और परिवार के लिए उत्सव सरीखा होता है लेकिन जब शिशु के रूप में बेटी का आगमन होता है तो ऐसा लगता है कि लोगों की घिग्गी बंध जाती है। इसी प्रकरण को चित्रित करते हुए चंद्रकांता लिखती हैं- "लड़की? हाँ बहन, दूसरी बेटी!" इस क्षणिक वार्ता में चंद्रकांता ने कश्मीरी स्त्री जीवन के उस सत्य को रेखांकित किया है जो सबसे स्याह है। वही माताएँ जो कभी खुद भी किसी की बेटियों के रूप में जन्मी होंगी वे ही बेटी के जन्म पर मातम मनाते देखी जा सकती हैं। इसके पीछे भी कई कारण हैं, मसलन वह परिवेश जो स्त्रियों को बोलने, चलने, खेलने, पढ़ने तक की आज़ादी नहीं देता हो, जहाँ माएँ और दादियाँ भी अपने 'औरत जन्म' को कोसती नज़र आती हों वे भला क्यों चाहेंगी कि उनकी कोखों से बेटियों का जन्म हो और वे भी आजीवन उन्हीं चीजों को झेलें जिन्हें झेलते हुए वे अपनी ज़िंदगी गुजारने को मजबूर हैं।”

कश्मीरा और शारदा देवी की भूमि 'कश्मीर' का प्राचीन इतिहास 'राजतरंगिणी' के रूप में विश्व के समक्ष सदियों से उपलब्ध है। कल्हण अपनी 'राजतरंगिणी' में जिस 'नीलमत पुराण' का उल्लेख करते हैं उसमें 'कश्मीरा देवी' की चर्चा आयी है। विद्वानों के एक वर्ग का यह मानना है कि उक्त कश्मीरा देवी के नाम पर इस सुरम्य वादी का नाम कश्मीर पड़ा। यद्यपि कई और विद्वान इस नाम को ऋषि कश्यप के साथ भी जोड़ते हैं। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कश्मीर को लोग भले ही 'शैव' प्रदेश मानते हों लेकिन नीलमत पुराण आदि प्राचीन पुस्तकों में देवी उमा को शिव से ज्यादा महत्त्व दिया गया है। इसके पीछे तर्क यह कि सम्पूर्ण कश्मीर मंडल देवी 'उमा' का ही रूप है। उपर्युक्त सन्दर्भों से यह निश्चित रूप से स्पष्ट होता है कि कश्मीर निवासियों ने आदिकाल से ही

मातृ शक्ति को अपनी जीवनशीली के केंद्र में रखा है। आज के इस उत्तर आधुनिक युग में स्त्री-विमर्श जब विश्व साहित्य का एक प्रमुख आंदोलन है तो ऐसे में कश्मीरी लोक संस्कृति और लोक-जीवन में स्त्रियों के स्थान को रेखांकित करना आवश्यक जान पड़ता है।

ऋषि-मुनियों, विदुषियों और महान रानियों की भूमि कश्मीर में प्राचीन काल से ही स्त्रियों को वह मान-सम्मान हासिल था जिसकी आज कल्पना की जाती है। उन्हें राज-काज से लेकर सामाजिक जीवन तक में पूर्ण स्वतंत्रता और स्वायत्तता मिली हुई थी। तत्कालीन सम्राटों ने अपनी साम्राजियों से मंत्रणा कर के ही राजकाज को सुव्यवस्थित ढंग से चलाया। कल्हण 'राजतरंगिणी' में राजा तुञ्जीन के शासनकाल का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि उनके समय भयानक अकाल पड़ा था। विषम परिस्थितियों में महाराजा ने महारानी के साथ मिलकर आमजनों के लिए कोष के दरवाजे खोल दिये थे। यह श्लोक द्रष्टव्य है- "सप्तनिकोनिजैः कोशैः तञ्चयैर्मन्त्रिणामपि क्रीतान्नः स दिवारात्रं प्राणिनः समजीवयत्॥" स्पष्ट है कि कश्मीर की महिषियों ने हर परिस्थिति में अपने बुद्धि-विवेक से प्रजा-पालन के अपने दायित्व का उचित ढंग से निर्वाह किया था। यही कारण है कि कश्मीरी लोक संस्कृति में न केवल महिषियों और विदुषियों का ही अपितु सामान्य स्त्रियों का स्थान भी बहुत ऊँचा था।

आज यद्यपि कश्मीर में पर्दे की परंपरा विकसित हो गयी है। नृत्य, गीत आदि पर कट्टरवादियों का पहरा लग गया है, प्राचीन काल में ऐसा नहीं था। 'नीलमत पुराण' के अनुसार स्त्रियों को लोक नृत्य और लोक संगीत सीखने तथा उसे सभी के बीच प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कश्मीर की समरसतावादी संस्कृति में स्त्रियों ने अपनी प्रतिभा और गुणों के आधार पर समाज में यह स्थान अर्जित किया था जहाँ वह पुरुषों की आदेशपालिका नहीं अपितु उनकी बराबरी में खड़ी रहने वाली सहचरी-सहगामिनी थीं। गीत, नृत्य, साहित्य और चित्रकला जैसे तमाम क्षेत्रों में

कश्मीरी स्त्रियों ने अपनी उपलब्धियों से कश्मीर का नाम अखिल विश्व में रौशन किया था।

युद्धनीति, कूटनीति और राजनीति की जब कश्मीरी स्त्रियों के परिप्रेक्ष्य में बात होगी तो दिदा रानी से लेकर कोटा देवी तक उसमें शामिल होंगी। आज जो स्त्रियां कश्मीर की राजनीति में सक्रिय रूप से शामिल हैं तथा वे जो अपनी माँगों को लेकर अक्सर सड़कों पर 'पत्थर' के साथ उपस्थित होती हैं उनपर भी बात की जानी चाहिए। अशोक पांडे जैसे इतिहासकार एक तरफ अनेक विद्वानों के हवाले से मानते हैं कि- "कश्मीर में महिलाओं की स्थिति शेष भारत की महिलाओं से बेहतर थी। कश्मीर की रानियों का अलग कोष होता था, अपने सलाहकार तथा कोषपाल होते थे और राज्य के मामलों में उनकी राय ली जाती थी। कुछ महिलाएँ स्वतंत्र शासक से लेकर सेना के महत्वपूर्ण पदों तक भी पहुँचीं।"2 लेकिन वे इस आख्यान को स्थापित नहीं होने देना चाहते और इस बात को यह कह कर टालते हैं कि- "दिदा हो या अन्य रानियां वे संयोग से ही शासक के उच्च पद पर पहुँची थीं, पतियों की मृत्यु के बाद अल्पवयस्क पुत्रों के संरक्षक के रूप में।"3 स्पष्ट है कि वे अपने समय की इन महान नेत्रियों को वह स्थान नहीं देना चाहते जिसकी वे हकदार हैं। इन्हीं दिदा रानी के विषय में आशीष कौल अपनी पुस्तक 'दिदा द वारियर क्वीन ऑफ कश्मीर' में लिखते हैं कि दिदा ने बेहद कम समय में, बहुत छोटी सेना तथा सीमित संसाधन के साथ युद्ध की स्थिति पलट दी थी और खोया हुआ राज्य चंद मिनटों में वापस हासिल कर लिया था। ठीक दिदा की ही तरह इतिहास में कोटा रानी का प्रसंग भी आता है। ज्ञान, शील और साहस की प्रतिमूर्ति रामचन्द्र की पुत्री महारानी कोटा देवी का चित्रण शत्रुघ्न प्रसाद इन शब्दों में करते हैं- "कोटा देवी ने सम्बोधित किया, 'कश्मीर को आतंक से मुक्त करना है। इस बार नई रणनीति से युद्ध होगा। कश्मीर दस्युओं की आखेट भूमि नहीं है। यहाँ शची और रति हैं, सरस्वती हैं तो दुर्गा और चामुंडा भी हैं। आपसब कटिबद्ध हो जाएं।"4 इस ओजमयी वाणी का ही प्रभाव था कि लुटेरा अर्दल युद्ध में बुरी तरह परास्त हुआ और कश्मीर की जनता उसके आतंक से बच सकी। ऐसी कुशल, प्रतिभावान, विचारक योद्धा की भी यश, कीर्ति को धूमिल करने का प्रयास अशोक पांडे इस प्रकार करते हैं कि- "रामचन्द्र की बेटी कोटा ने पिता की हत्या को महत्त्व देने की जगह कश्मीर की महारानी के पद को महत्त्व दिया और 6 अक्टूबर 1320 को रिंचन जब कश्मीर की गद्दी पर बैठा तो कोटा उसकी महारानी के रूप में उसके बगल में बैठी।"5 सच्चाई यह है कि इतिहासकार महोदय यह

भूल गए कि महारानी कोटा का तब राजनीतिक रूप से रिंचन का साथ देना बिल्कुल रणनीतिक था, क्योंकि यह तथ्य है कि कुछ ही दिनों के बाद रिंचन की मृत्यु हो गयी और महारानी कोटा ने उदयन देव के साथ कश्मीर के लोगों के कल्याण हेतु शासन किया।

धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी कश्मीर की स्त्रियाँ आदिकाल से ही ख्यातिप्राप्त रही हैं। यही कारण है कि आज भी कश्मीरी अस्मिता की बात करने वाले खुद को 'ललघद की संतान' बताते हैं। ललघद कश्मीर में न केवल स्त्री अस्मिता की प्रतीक हैं अपितु उन्होंने तत्कालीन धार्मिक पाखंडों, आडम्बरों, कुरीतियों और समाज में व्याप्त जाति-प्रथा पर भी जमकर हमला किया था। इस दृष्टि से ललघद का समाज के विविध क्षेत्रों में अमूल्य योगदान है। हब्बा खातून, रूप भवानी, अरनिमाल आदि सूफी कवयित्रियों ने भी जब परिवार में अपने को उपेक्षित महसूस किया तब उनलोगों ने भी समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। अपने वाखों से इन कवयित्रियों ने स्त्री-जीवन की तमाम कठिनाइयों को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। कश्मीर में स्त्री स्वातंत्र्य की चेतना जागृत करने वाली इन कवयित्रियों ने सबसे पहले अपने परिवार से ही मुक्ति प्राप्त की। ललघद जैसी भक्त योगिनी ने उस रूढ़िवादी समय में वस्त्र त्याग कर संन्यास धारण किया और सड़कों पर घूमने लगीं। सड़क पर ही अपने वाखों से उन्होंने जीवन के तमाम दार्शनिक पहलुओं पर प्रकाश डाला। जीवन का यथार्थ बयाँ करते हुए वे कहती हैं- "मंज मैदानस लरा लजेयम, अंदि अंदि कोरिमस तकिये त गाह, सो रोजि यती त बे गळे पानस....।" अर्थात् ये विशाल भवन जो मानव बड़े शौक से बनाता है, साज-सज्जा करता है वह सब यहीं रह जाते हैं और उसे बनानेवाला मनुष्य सब छोड़ कर प्रयाण कर जाता है। ललघद के वाखों के केंद्र में जहाँ मनुष्यत्व है वहीं हब्बा खातून की पंक्तियों में स्त्री-जीवन की पीड़ा दिखाई पड़ती है। रूप भवानी और अरनिमाल ने भी समाज की वस्तुगत सच्चाइयों को ही अपने काव्य में उकेरा है। चूँकि इन कवयित्रियों का काल कश्मीर में राजनीतिक दृष्टि से परतंत्रता का काल है, यहाँ से हम कश्मीरी समाज में अप्रत्याशित परिवर्तन देखते हैं। प्राचीन काल से जो कश्मीरी समाज स्त्री-पुरुष समानता का पोषक था वहाँ बदलाव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है। स्त्रियों की आजादी क्रमशः छीनी जाने लगी। पहले उन्हें पदों में जाने का हुक्म हुआ फिर उनकी वाणी छीनी गयी और आखिर में उन्हें बुनियादी शिक्षा से भी वंचित कर दिया गया। इस परतंत्रता के काल से ही कश्मीरी स्त्रियों के पतन और अनवरत शोषण की शुरुआत होती है।

कश्मीर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में एक तरफ जहाँ कश्मीरी लोक जीवन और लोक संस्कृति का वर्णन है तो दूसरी तरफ सभी कथाओं में कश्मीर की स्त्रियों का जीवन अंतर्धारा के रूप में विद्यमान दिखाई पड़ता है। लगभग छह सदियों तक परतंत्र रहने के कारण कश्मीर में स्त्रियों का नैसर्गिक विकास थम सा गया। उन पर इतने प्रकार के प्रतिबंध लगा दिए गए कि स्त्रियाँ मुरझाई कलियों की मानिंद हो गयीं। ऐसे समय में 'कश्यप बन्धु' ने कश्मीरी स्त्रियों के जीवन को सुधारने का बीड़ा उठाया। मीरा कान्त लिखती हैं- "जब से बन्धु जी ने लड़कियों की शिक्षा, विधवाओं के पुनर्विवाह, दहेज-निषेध, उत्सवों पर कम से कम खर्च की मुहिम चलाई थी कश्मीर में यहाँ-वहाँ, घर-चौराहों पर उनकी या उनके कामों की ही चर्चा थी।"7 'बन्धु जी' के इस 'रिफॉर्म मूवमेंट' ने कश्मीरी युवतियों में नयी ऊर्जा और चेतना का संचार किया। इतना ही नहीं समाज के रूढ़िवादियों को भी उन्होंने स्त्रियों के मुद्दों पर विचार करने के लिए मजबूर किया।

शिशु का जन्म माता-पिता और परिवार के लिए उत्सव सरीखा होता है लेकिन जब शिशु के रूप में बेटी का आगमन होता है तो ऐसा लगता है कि लोगों की घिग्गी बँध जाती है। इसी प्रकरण को चित्रित करते हुए चंद्रकांता लिखती हैं- "लड़की? हाँ बहन, दूसरी बेटी!"8 इस क्षणिक वार्ता में चंद्रकांता ने कश्मीरी स्त्री जीवन के उस सत्य को रेखांकित किया है जो सबसे स्याह है। वही माताएँ जो कभी खुद भी किसी की बेटियों के रूप में जन्मी होंगी वे ही बेटी के जन्म पर मातम मनाते देखी जा सकती हैं। इसके पीछे भी कई कारण हैं, मसलन वह परिवेश जो स्त्रियों को बोलने, चलने, खेलने, पढ़ने तक कि आज़ादी नहीं देता हो, जहाँ माएँ और दादियाँ भी अपने 'औरत जन्म' को कोसती नज़र आती हों वे भला क्यों चाहेंगी कि उनकी कोखों से बेटियों का जन्म हो और वे भी आजीवन उन्हीं चीजों को झेलें जिन्हें झेलते हुए वे अपनी जिंदगी गुजारने को मजबूर हैं। औरतों की दशा का वर्णन करते हुए चंद्रकांता ने बहुत ही मार्मिक पंक्तियाँ लिखी हैं। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- "औरतों ने तो सुनना और सहना ही सीखा था। पलटकर सही बात बोलना, कुसंस्कारी होना था। घोर अपराध तो था ही। क्योंकि ऐसी ज़बान्दाराज माएँ बच्चों को विरसे में 'गाड हंज पअथर'(झगड़ालूपना) के अलावे दे भी क्या सकती थीं।"9 इन पंक्तियों के मर्म को समझने के लिए बहुत प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। कमोबेश आज भी स्थितियाँ वैसी ही हैं जैसा चंद्रकांता ने चित्रित किया है, ज़रूरत है तो आसपास झाँकने की। छोटी बच्चियों को संस्कार और अनुशासन के नाम पर जिस प्रकार प्रताड़ित किया जाता है, उसकी एक बानगी प्रासंगिक है- "इत्ती धमक से धरती

पर पाँव मत रखा करो मुन्नी, आदत हो जाएगी। आह! ऐसे ठठाकर आकाश-पाताल तोड़ ठहाके लगाती हो, कोई सुनेगा तो क्या सोचेगा? हाँ हमने तहज़ीब नहीं सिखाई लड़की को, यही कहेगा न? और बात-बात पर दंदियाँ दिखाना भले घर की बेटियों को शोभा नहीं देता...!"10 इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वैसी बच्चियाँ जिनमें जीवन की बुनियादी समझ तक विकसित नहीं हुई थी उनपर भी प्रतिबंधों का एक पूरा मैनिफेस्टो लाद दिया जाता है।

कश्मीर में स्त्रियों की स्थिति में उत्तरोत्तर गिरावट ही आयी। कह सकते हैं कि प्राचीन कश्मीर की सारी मान्यताएँ और परम्पराएँ छिन्न-भिन्न हो गईं जिस प्रदेश को पार्वती की भूमि समझा जाता रहा है वहाँ ससुराल में बहुओं को जलाने के मामले सामने आने लगे, भ्रूण हत्या और दुधमुँही बच्चियों को कूड़े पर फेंके जाने की घटनाएँ भी आम हो गयीं। चंद्रकांता इस परिप्रेक्ष्य में लिखती हैं- "उन दिनों बहू-दहन के समाचार आज की तरह आये दिन की बात नहीं थी, वादी में तो बिल्कुल नहीं, यद्यपि ससुरालवालों की सनातन चिकचिक सुनना-सुनाना लड़कियों के लिए अनिवार्य था और इसे शादी की एक मानी हुई शर्त समझा जाता था।"11 इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ऐसी घटनाओं की आवृत्ति वादी में निरन्तर बढ़ती चली गयी। गुलाम मानसिकता स्त्री स्वातंत्र्य का पक्ष कभी ले ही नहीं सकती। सच्चाई तो यह है कि स्त्री स्वातंत्र्य से कुंठित लोग स्त्री के अस्तित्व को ही नकारते हैं। उनके लिए स्त्री दासी से बढ़कर कुछ भी नहीं है। यह प्रसंग द्रष्टव्य है- "मिन्ना की पड़ोसन ज़रूर भीतर-ही-भीतर उबल रही थी। वह शायद कुछ उगल देती। पर उसके पति ने उसे धमका-डराकर चुप करा दिया था, खबरदार! मुँह खोला तो तेरी भी वह गत बन जाएगी, जो उसकी बन गयी..."12 कल्पनातीत है पितृसत्तात्मक समाज की ये बंदिशें जहाँ पुरुष ही स्त्री का भाग्य-निर्माता और निर्धारक है। ऐसे समाज में जहाँ स्त्रियों के चाल और चरित्र पर सवाल उठाना सबसे सस्ता है, वहाँ प्राकृतिक खूबसूरती के साथ पैदा होने वाली बच्चियों की स्त्री बनते-बनते क्या दशा हो जाती है उसका वास्तविक चित्रण चंद्रकांता इन शब्दों में करती हैं- "हल्दी पीली त्वचा, मुरझाई हड्डियल काया, बिखरे बाल, प्रदर, मासिक धर्म के रोगों, हाई-लो ब्लड प्रेशर, कमर दर्द, खाँसी और हर दूसरे-तीसरे साल गर्भ के भार से लदी-फदी औरतें! गन्दगी, गरीबी और रूढ़ परम्पराओं की शिकार, ये टूटी-फूटी स्त्रियाँ, जिन्हें कभी अपने बारे में सोचने का मौका नहीं दिया गया, आखिर ये कब अपनी सदियों की नींद से जागेंगी।"13 तमाम लेखिकाएँ जिन्होंने कश्मीरी स्त्रियों का जीवन करीब से देखा है वे उनके हालात पर क्षुब्धता

प्रकट करती हैं और बार-बार उनका सवाल कश्मीरी महिलाओं से होता है कि वे कब अपने हक के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करेंगी।

वर्तमान कश्मीर की बात हो, उसमें स्त्रियों का विषय हो और आतंकवाद, जेहाद तथा कट्टरपंथ पर चर्चा न हो तो यह विषय अधूरा रह जायेगा। अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'दर्दपुर' को क्षमा कौल ने "धार्मिक आतंक की सतायी विश्व की सभी स्त्रियों के नाम" 14 समर्पित किया है। यह समर्पण जायज भी है क्योंकि इस उपन्यास में उन्होंने बारीकी से यह सिद्ध किया है कि औरत सिर्फ एक शरीर होती है, उसकी कोई जात-मजहब नहीं होती। जो स्त्री शरीर के प्रति अमानवीय हैं वे किसी भी हालत में उसके साथ बर्बरता करेंगे। मजहब की आड़ में वे जहाँ दूसरे धर्म की महिलाओं का शिकार करेंगे वहीं तथाकथित अपने धर्म की स्त्रियों का शोषण करने से भी वे बाज नहीं आएँगे। चंद्रकांता ने भी अपने उपन्यासों में कश्मीर की इन स्थितियों का बहुत वीभत्स चित्रण किया है। जेहाद के लिए कश्मीर आये आतंकियों के विषय में एक बुजुर्ग मुसलमान महिला का यह हृदयस्पर्शी कथन रोंगटे खड़े कर देता है- "हम समझे जेहादी हैं। इन्होंने लड़कियों को बर्बाद कर दिया। एक लड़की को मैंने भगा दिया, तो मुझ बूढ़ी को नंगा कर दिया। खुदा की मार पड़ेगी।" 15 ठीक इसी पंक्ति के बाद बुजुर्ग महिला का एक और महत्वपूर्ण कथन भी प्रासंगिक है। वह कहती है- "सब ढकोसला है। गुंडागर्दी, और कुछ नहीं। मेरी लड़की... पागल हो गई। इन शिकसलदों ने उसे खराब कर डाला।" 16 इन पंक्तियों से यह कथन निश्चितरूप से प्रमाणित होता है कि बर्बर लोगों के लिये 'औरत सिर्फ एक शरीर होती है'। वे चौदह वर्ष की बच्ची को भी तहस-नहस कर सकते हैं और सत्तर वर्ष की बुजुर्ग महिला को भी। ऐसी तमाम त्रासदियों के बीच कश्मीर की स्त्रियाँ अनवरत पीसी जा रही हैं। इस त्रासदी के अंत की थाह लगा पाना दुष्कर है। और इस दुष्कर से कश्मीरी स्त्रियों के निकलने का कोई रास्ता भी दूर-दूर तक नहीं दिखाई पड़ता।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन की वाहिका कश्मीर की स्त्रियाँ आज बेपनाह चुनौतियों का सामना करने को विवश हैं। यह चुनौतियाँ जितनी भीतरी हैं उतनी ही बाहरी भी। परतंत्रता, संकीर्ण मानसिकता और अब आतंकियों के वहशीपन से कश्मीरी स्त्रियाँ 'पाषाण युग' में चली गयी सी दिखती हैं, उनका विकास कहीं न कहीं थम सा गया है। दिद्दा और कोटा जैसी महारानियाँ जिन्होंने न केवल शास्त्र से बल्कि शस्त्र से दुश्मनों के दाँत खट्टे किये थे, आज उनकी विरासत संभालने वाले कोई नहीं दिखता। आज वादी में कोई स्त्री 'ललघद' नहीं बन सकती, कोई अगर ललघद सी बनना चाहे तो

उसे कश्मीर से बाहर निकलना होगा। कश्मीर से जलावतन हो कर ही तो चंद्रकांता, क्षमा कौल, मीरा कान्त, संजना कौल आदि ने कश्मीर की स्त्रियों के पक्ष में आवाज़ उठाई है। अपनी सुंदरता के लिए विश्व में ख्यात कश्मीरी स्त्रियाँ तमात त्रासदियों के बीच आज भी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. कल्हण, राजतरंगिणी, श्लोक सं-२८
2. पांडे, अशोक, कश्मीरनामा(2019), पृ० 32,33, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली
3. पांडे, अशोक, कश्मीरनामा(2019), पृ० 33, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली
4. प्रसाद, शत्रुघ्न, कश्मीर की बेटी(2002), पृ० 289, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
5. पांडे, अशोक, कश्मीर और कश्मीरी पंडित(दूसरा संस्करण 2020), पृ० 51, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
6. चंद्रकांता, ऐलान गली जिन्दा है(2015), पृ० 111, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. कान्त, मीरा, एक कोई था कहीं नहीं-सा(2009), पृ० 38, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
8. चंद्रकांता, कथा सतीसर(2007), पृ० 49, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
9. वही, पृ० 71
10. वही, पृ० 72
11. चंद्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है(2011), पृ० 187, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
12. वही, पृ० 188
13. चंद्रकांता, कथा सतीसर(2007), पृ० 287, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
14. कौल, क्षमा, दर्दपुर(2014), पृ० 5, ज्योतिषर्व प्रकाशन, गाज़ियाबाद
15. चंद्रकांता, कथा सतीसर(2007), पृ० 551, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
16. वही



हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
सम्पर्क - 9304488038
गौरव रंजन (शोधार्थी)
मीडिया एवं जनसंचार विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया
सम्पर्क - 8539010264

भाषायी स्वाधीनता और हिंदी जागरण

सूर्य प्रकाश सेमवाल

“राजनीतिक सत्ता के इशारे पर भारत के प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास में की गई छेड़छाड़ के क्रम में देश के स्वाधीनता नायकों को भी सुनियोजित तरीके से कमतर सिद्ध किया गया। एक ही जीवन में दो मृत्युदंड और काला पानी की सजा झेलने वाले स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर ने भारतमाता की सेवा के साथ हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक अभियान छेड़ा था। 1906 में बैरिस्टर बनने के लिए ब्रिटेन गए क्रांतिकारी युवावीर विनायक दामोदर सावरकर की भेंट 1909 में लंदन में गांधी से हुई। इसी मुलाकात के बाद गाँधी ने हिंद स्वराज लिखी। सावरकर बंधुओं से प्रभावित होने की बात गाँधी जी ने सर्वत्र स्वीकार की है।”

जन-जन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति, परंपरा, स्वाधीनता समर से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत और 21 वीं सदी की वैश्विक दुनिया में भी लोकव्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में स्वाभिमान और सम्मान के साथ प्रभावी उपस्थिति में मौजूद है। हिन्दी भारत की राष्ट्रीय एकता और जनमन की सामूहिक चेतना का समवेत स्वर है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की ओर विहंगम दृष्टि डालने पर स्पष्ट रूप से पता चलता है 15 वीं सदी के आसपास के प्रमुख संतों और भक्त कवियों—तुकाराम, नामदेव, नरसी मेहता और नानकदेव जो कि हिंदी भाषी नहीं थे उन्होंने अपनी स्थानीय बोली भाषा के साथ हिंदी में रचनाकर्म

करने के साथ भजन और उपदेश के माध्यम से लोक जागरण का काम किया। इसी तरह 19 वीं सदी के प्रमुख समाज सुधारकों ने, जिनमें अधिकांश हिंदी इतर राज्यों से थे, उन्होंने सामूहिक जनजागरण के लिए हिंदी भाषा को जरूरी बताया तो अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए 1857 के क्रांतिकारियों से लेकर बाद तक के स्वाधीनता सेनानियों ने भी प्रतिबद्धता और एकजुटता के साथ हिंदी भाषा को हथियार बनाकर देश की आजादी की आवाज बुलंद की।

स्वतंत्रता के उपरान्त जब संविधान बना, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान और अन्य राष्ट्रीय प्रतीक बनाए गए तो राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी भाषा को अपनाने के लिए देशभर के राष्ट्रीय नेताओं और राजनीतिक क्षेत्र की हस्तियों ने आवाज उठाई। हर क्षेत्र में जाने अनजाने हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसके प्रोत्साहन व संबर्द्धन के लिए अद्वितीय कार्य किये गए।

राजनीति अथवा सत्ता हर युग में और प्रत्येक समय में समाज जीवन को प्रभावित किये बिना नहीं रहती, देश, काल, परिस्थिति चाहे जो भी हो राजनीति सदैव हस्तक्षेप की भूमिका में होती है, अर्थात् दैनंदिन जीवन में भी यह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। इतिहास साक्षी है राजनीति ने हर युग में, हर परिवेश में उस समय प्रचलित भाषा को अवश्य ही प्रभावित किया है। मुगल काल में यदि अरबी-फारसी का प्रचलन बढ़ा तो ब्रिटिश सत्ता ने साम, दाम, दंड, भेद की नीति को अपनाते हुए भारत में अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा दिया। इसी तरह हम थोड़ा पहले देखें तो बौद्धों की सत्ता के समय पाली भाषा को बढ़ावा मिला तो जैनों के प्रभावकाल में प्राकृत आगे बढ़ी। नाथों और सिद्धों ने भी अपने वर्चस्व और प्रभाव के दम पर अपनी बोली और भाषा को प्रचलित किया।

भारत में 19 वीं सदी में ब्रिटिश राज के वावजूद भारतीय मनीषियों और समाज चिंतकों ने व्यापक स्तर पर समाज सुधार अभियान शुरू किए। इन आन्दोलनों के सूत्रधार भारतीय समाज सुधारकों ने बहुसंख्य देशवासियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली हिंदी भाषा को ही जनसंवाद की भाषा बनाने पर जोर दिया। भारत के इतिहास लेखन की विसंगति और विडंबना है कि विश्व के इतने बड़े समाज सुधार अभियान को भी पूर्वाग्रह के साथ एकांगी ढंग से प्रस्तुत किया गया।

ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय को पश्चिम के ज्ञान और अंग्रेजी का मुखर पक्षधर बताने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई किन्तु वे भारतीय परंपरा, वेद-पुराण-स्मृति के अध्येता, रचनाकार और टीकाकार थे, इसका उल्लेख उस उदारता के साथ नहीं किया गया। वास्तविकता ये है कि सती प्रथा, बाल विवाह और अन्य सामाजिक बुराइयों को जड़ से मिटाने वाले राजा राममोहन राय ने भारत में अंग्रेजी और बांग्ला के साथ हिंदी पत्रकारिता का भी विकास किया। 1826 में जब राजा राममोहन राय ने हिंदी में बंगदूत निकाला और 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की तो उनकी सोच यही थी कि अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता और सामर्थ्य केवल हिंदी में ही है तो क्षेत्रीय भाषाओं के बजाय इसी को लोकव्यवहार की भाषा बनाया जाए।

हिंदी के व्यापकता और प्रभाव से अंग्रेज भी परिचित थे इसलिए 1800 में लार्ड वेलेजली द्वारा कलकत्ता में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज शुरू हुआ तो वहां जॉन गिलक्राइस्ट के नेतृत्व में अंग्रेज अधिकारियों को हिंदी सिखाने और पाठ्यपुस्तक लिखने के लिए भाषा विशेषज्ञों की व्यवस्था की गई। हिंदी साहित्येतिहास के दो बड़े हस्ताक्षरों - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया है कि इस कॉलेज की स्थापना से दशकों पूर्व हिंदी में खड़ी बोली की रचना राम प्रसाद निरंजनी “योग वाशिष्ठ” के रूप में कर चुके थे - “जिस समय फोर्ट विलियम कॉलेज की ओर से उर्दू और हिंदी गद्य की पुस्तकें लिखने की व्यवस्था हुई उसके पहले हिंदी खड़ी बोली में गद्य की कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं।”

शुक्ल जी की तरह आचार्य द्विवेदी भी हिंदी के प्रचार-प्रसार और पुस्तक लेखन प्रोत्साहन को तो स्वीकारते हैं किन्तु पाश्चात्य विद्वान के उस सावे को पूरी तरह नकारते हैं जो ये मानते हैं कि फोर्ट विलियम कॉलेज के कारण ही हिंदी की खड़ी बोली का प्रचार-प्रसार हुआ- “यह

समझना ठीक नहीं है कि फोर्टविलियम कॉलेज के अधिकारियों की प्रेरणा से ही आधुनिक हिंदी गद्य का निर्माण हुआ।”

लेकिन ये भी सत्य है कि बेशक खड़ी बोली में रचना छह दशक पहले लिखी जाने लगी थीं लेकिन जॉन गिलक्राइस्ट की पहल पर खड़ी बोली गद्य फोर्ट विलियम कॉलेज के चार धुरंधर विद्वानों - मुंशी सदासुखलाल, सैयद इशा अल्ला खां, लल्लूलाल और सदल मिश्र के प्रयास से व्यापक रूप में एक साथ आगे बढ़ा।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बंगाल जो कि स्वाधीनता के स्वर और क्रान्ति का पर्याय था वहाँ हिंदी स्वाभाविक रूप से विद्यमान थी। इसका ही प्रमाण है कि चाहे 1826 में हिंदी भाषा में प्रकाशित समाचार पत्र उदन्त मार्तंड हो अथवा प्रथम दैनिक पत्र समाचार सुधावर्षण, दोनों ही कलकत्ता से प्रकाशित हुए। हिंदी की बहु व्याप्ति की यही सोच ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय के उत्तराधिकारियों-नवीन चन्द्र राय और केशव चन्द्र सेन की थी। केशवचंद्र सेन से प्रभावित होकर स्वामी दयानंद सरस्वती ने संस्कृत में दिए जाने वाले अपने प्रवचनों की भाषा हिंदी कर दी थी। केशवचन्द्र सेन ने हिंदी को राष्ट्रीय एकता का सूत्र और राष्ट्रभाषा बताया।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी की देशभक्ति पूर्ण कविताओं, गीतों और क्रांतिकारी नारों ने समूचे स्वाधीनता सेनानियों को एक स्वर में आवाज बुलंद करने की प्रेरणा देने का काम किया - “अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी। पै धन बिदेश चलि जात, इहै अति ख्वारी।”

एक ही कालखंड में “निज भाषा उन्नति अहै” के साथ भारत की दुर्दशा पर चिंतित भारतेन्दु हरिश्चंद्र और वेदों की ओर लौटो “ का आह्वान करने वाले आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिन्दी भाषा को जन-जन तक पहुँचाने का काम किया। साहित्य में जहाँ भारतेन्दु मण्डल के कृतिकार गद्य की विविध विधाओं को विस्तार दे रहे थे वहीं समाज में प्रचलित अंधविश्वास और ढोंग को खत्म कर स्वामी दयानंद सरस्वती और उनके अनुकर्ता स्वामी श्रद्धानंद देशवासियों को हिंदी भाषा में वेदोक्त ज्ञान देने के लिए कटिबद्ध थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस समय प्रचलित शास्त्र चर्चा, साहित्यिक वाद-विवाद को भाषा की समृद्धि और गद्य विधा के विस्तार का माध्यम बताया - “उन दिनों शास्त्रार्थों की धूम मच गई। उत्तर-प्रत्युत्तर से कटाक्षों और व्यंग्यों से सामयिक पत्र भरे रहते थे और हिन्दी का

भावी गद्य नवीन शक्तियों से सुसज्जित हो रहा था। इन वाद-विवादों ने भाषा को बहुत समृद्ध किया है और प्रौढ़ता प्रदान करने में बड़ी सहायता पहुंचाई।”

एक साथ कविता, नाटक और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से खड़ी बोली मानो रूपाकार को तो बढ़ा ही रही थी, जनता को स्वदेशी का महत्त्व और अंग्रेजों से मुक्ति के लिए भी एकाकार कर रही थी। स्वदेशी के प्रवर्तक बाबू भारतेन्दु जैसे बौद्धिक योद्धाओं का यह सृजन और चिंतन स्वाधीनता के नायकों का प्रेरणा मंत्र बना, जिसका परिणाम था कि यहाँ भी हिन्दी इतर राज्यों से जुड़े हमारे सेनानायकों - महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, सरदार भगत सिंह, लाला लाजपतराय और विपिन चंद्र पाल जैसे महारथियों ने आजादी की लड़ाई के लिए हिन्दी को ही एक धारदार हथियार बनाया।

“स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसको लेकर रहूँगा” का उद्धोष करने वाले क्रांतिकारी गरम दल के नेता बाल गंगाधर तिलक ने देवनागरी लिपि के प्रयोग पर जोर देने और हिंदी भाषा को सभी भारतीय भाषाओं की संपर्क भाषा बनाने का आह्वान किया, तो निस्संदेह इस अभियान को देशभर में समर्थन मिला। आजादी के रणबाँकुरों की जुबान से लेकर देश के अलग-अलग कोनों में हिंदी के प्रति बढ़ती भारतीयों की ललक के चलते जगह-जगह हिंदी प्रचार-प्रसार से जुड़ी संस्थाओं की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुई और राष्ट्रीय स्तर के साहित्यिक - वैचारिक आयोजन भी होने लगे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में तिलक ने लिखा - “यह आंदोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है, यह तो उस आंदोलन का एक अंग है जिसे मैं राष्ट्रीय आंदोलन कहूँगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है।”

अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन लखनऊ में महात्मा गांधी ने कहा कि “राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए हमें भागीरथ प्रयत्न करना होगा। सरकार को हमें अंग्रेजी के बजाय हिंदी भाषा में प्रार्थनापत्र लिखकर भेजना चाहिए। हमें अपनी भाषा में बोलना और लिखना चाहिए, जिनको गरज होगी वो हमारी बात सुनेंगे।”

मार्च 1918 में इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए बापू ने स्वाभिमान के साथ हिन्दी को राष्ट्रभाषा

बनाने की वकालत करते हुए कहा, “जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपस प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें।” ये भी सच है कि चाहे गांधी बार-बार भाषा में हिन्दू-मुस्लिम एकता और उर्दू-फारसी का राग अलाप रहे हों और उसको हिन्दुस्तानी कहकर वजनदार बनाने का दावा कर रहे हों लेकिन कुल मिलाकर इस कोशिश से प्रचार-प्रसार तो हिंदी का हो रहा था - “हिन्दुस्तानी को भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयत्न मैं हमेशा से करता आया हूँ। हिन्दुस्तानी के सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। इसमें कोई भी शक नहीं। जिस भाषा को करोड़ों हिंदू मुसलमान बोल सकते हैं, यही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है और इसमें जब तक नवजीवन न निकाला गया तब तक मुझे दुःख था।”

राजनीतिक सत्ता के इशारे पर भारत के प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास में की गई छेड़छाड़ के क्रम में देश के स्वाधीनता नायकों को भी सुनियोजित तरीके से कमतर सिद्ध किया गया। एक ही जीवन में दो मृत्युदंड और काला पानी की सजा झेलने वाले स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर ने भारतमाता की सेवा के साथ हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक अभियान छेड़ा था। 1906 में बैरिस्टर बनने के लिए ब्रिटेन गए क्रांतिकारी युवा वीर विनायक दामोदर सावरकर की भेंट 1909 में लंदन में गांधी से हुई। इसी मुलाकात के बाद गाँधी ने हिंद स्वराज लिखी। सावरकर बंधुओं से प्रभावित होने की बात गाँधी जी ने सर्वत्र स्वीकार की है।

राजनीतिक विचार बेशक गांधी और सावरकर दोनों के अलग-अलग थे किन्तु हिंदी भाषा के पक्ष में दोनों अहिन्दी सेवियों का पूरा जोर था। ये बात अलग है कि गाँधी हिंदी के हिन्दुस्तानी रूप की वकालत करते थे तो सावरकर हिंदी के संस्कृतनिष्ठ रूप और देवनागरी लिपि के प्रबल पक्षधर थे। मराठी भाषी तिलक की तरह गुजराती भाषी गाँधी जी की सोच भी ये थी कि भारत के हर कोने तक हिंदी की आवाज स्वराज्य और स्वाभिमान का प्रतीक बने - “गांधीजी का हिन्दी प्रेम स्वयं हिन्दी सीख लेने और दूसरों को हिन्दी पढ़ने का परामर्श देने तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इनके हिन्दी प्रेम की सीमा सुदूर दक्षिण भारत के अहिंदी भाषी प्रांतों में हिन्दी प्रचार तक विस्तृत थी।”

बांग्ला भाषी नेताजी सुभाष चंद्र बोस कहते थे - “मैं बांग्ला

और अंग्रेजी तो जानता हूँ लेकिन हिंदी अच्छी तरह से नहीं जानता। उसे सीखना बहुत जरूरी है।“ इसी प्रकार गांधी के साथ दांडी मार्च से स्वतंत्रता समर से जुड़ने वाले शिक्षाविद चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, जो बाद में भारत के एकमात्र गवर्नर जनरल बने, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल समर्थक थे। राजाजी का मानना था कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो देश को एक सूत्र में बाँधे रखने में सक्षम है। 1937 में जिस मद्रास प्रांत में हिन्दी का प्रबल राजनीतिक विरोध हो रहा था, गीता और उपनिषदों की टीका लिखने वाले विद्वान चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने हिन्दी को मद्रास प्रांत की राजभाषा बनाने का पराक्रम सिद्ध किया।

दीनबंधु एंड्रयूज भी ऐसे ही हिन्दी प्रेमी थे। महात्मा गांधी और गुरुदेव टैगोर से प्रभावित एंड्रयूज ने जलियांवाला बाग कांड के लिए ब्रिटिश सरकार को जिम्मेदार माना था। शांति निकेतन में 'हिंदी भवन' की स्थापना उनके आश्रम में ही हुई, जो एक अंग्रेज विद्वान के हिन्दी प्रेम को प्रमाणित करता है। पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने ने सनातन धर्म, अभ्युदय, मर्यादा और हिन्दुस्तान जैसे पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन के साथ ही राजभाषा हिंदी की आवाज बुलंद की। हिंदी के उत्तरोत्तर विकास के लिए अहिन्दी सेवी राष्ट्रीय नेताओं के बीच कड़ी के रूप में पंडित मदनमोहन मालवीय और उनके अनुकर्ता राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे हिंदी के सपूत थे। 10 अक्टूबर 1910 को राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। वे मुखर राजनेता भी थे तो हिंदी के महायोद्धा भी। पुणे में राजर्षि टंडन की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा सम्मेलन का आयोजन हुआ तो गांधीजी का 'हिंदुस्तानी' भाषा का प्रस्ताव औंधे मुँह गिर गया, और सावरकर का संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रस्ताव पारित हो गया।

भारत में प्रजा के राज्य के लिए जनभाषा हिंदी को आवश्यक बताने वाले, हिंदी के प्रचार-प्रसार से जुड़ी संस्थाओं के संचालक और गुजरात के साथ दक्षिण भारत में हिंदी की पताका को लेकर जाने वाले गाँधी के सहयोगी काका कालेलकर की भूमिका भी अद्वितीय रही। भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक गांधीवादी नेता और हिन्दुस्तानी भाषा के पैरोकार विनोबा भावे ने मातृभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों के व्यवहार पर जोर देते हुए एक प्रकार से हिंदी का विस्तार करने का ही काम किया।

देश में जारी स्वाधीनता के अमृत उत्सव के बीच संसदीय राजभाषा समिति की 36 वीं बैठक की अध्यक्षता करते हुए केंद्रीय गृह

मंत्री अमित शाह ने ठीक ही कहा कि – “हमें एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें राजभाषा हिंदी का विकास सहज रूप से स्थानीय भाषाओं की सखी के रूप में हो। यह थोपने से नहीं होगा, अगर थोपा होता तो हिंदी अस्वीकार हो गई होती। हिंदी अगर खत्म नहीं हुई है तो इसका यही कारण है की हमने इसे कभी थोपने की कोशिश नहीं की। गुजराती, हिंदी और कन्नड़ के बीच कॉपटिशन नहीं हो सकता क्योंकि ये सभी सखियाँ या बहनें हैं। आजादी के 75 साल होने पर आजादी के आंदोलन में राजभाषा हिंदी की भूमिका का यह थीम होना चाहिए।“

वास्तव में गैरहिन्दी क्षेत्र के हिन्दी सेवियों के योगदान को आजादी के हीरक जयंती वर्ष में समग्र रूप में पुनः नई पीढ़ी के सम्मुख प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। जिन समाज सुधारकों और स्वातंत्र्यसमर के महानायकों ने हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार, संरक्षण और प्रोत्साहन किया, वे अभिनन्दन के पात्र हैं और उनके बहुमूल्य योगदान को ईमानदारी के साथ नई पीढ़ी तक पहुँचाना ही होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं., 227
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं., 458
3. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास -आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 206
4. नागरी प्रचारणी पत्रिका
5. हिन्दी नवजीवन
6. स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, सम्पादक डॉ. मीना गौतम
7. राजभाषा के संदर्भ में हिन्दी आंदोलन का इतिहास, उदयनारायण दुबे, पृष्ठ 150



शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
शोध निर्देशक प्रो. संजयकुमार, हिन्दी विभाग, रामलाल आनंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली मो. 9350875252

हिन्दी फिल्मों में मीरा

नवलकिशोर शर्मा

पुणे के शालीमार पिक्चर्स ने 1947 में “मीराबाई” पर एक फिल्म वहीउद्दीन ज़ियाउद्दीन अहमद के निर्देशन में बनाई जिसमें उस समय की एक प्रमुख अभिनेत्री निम्मी ने मीरा की भूमिका निभाई। इस फिल्म में निरुपा रॉय, मसूद परवेज़ व रामायण तिवारी भी खास किरदारों में थे। इस फिल्म में मीरा के दर्जन भर भजन थे जिन्हें एस० के० पाल के संगीत निर्देशन में सितारा देवी ने गाया है। इन गीतों में “ओ पपीहा रे पीहू की बोली न बोल”, “मेरे तो गिरधर गोपाल”, “मैं तो गिरधर के घर जाऊँ”, “माई म्हाने सपने में परन गयो नंदलाल”, “जो तुम तोड़ो पिया”, “भोर भई कौन गली गयो श्याम”, “ओ कन्हैया मैं तो थारे रंग राची”, “माई री मैं तो लियो गोविंदा मोल”, “चितनंदन आगे नाचूंगी”, “कोई कहियों रे प्रभु आवन की”, “म्हाने चाकर राखोजी” आदि खास हैं।

भारत में अध्यात्म के क्षेत्र में अनेक विदुषी महिलाएं हुई हैं। निर्गुण भक्ति धारा की राजस्थान की सहजोबाई, दयाबाई तो कश्मीर की शैव भक्ति परंपरा की ललद्यद, महाराष्ट्र की मुक्ताबाई आदि जहां संत परंपरा से आती हैं वहीं ज्ञानमार्ग में बुद्ध से दीक्षा ग्रहण करने वाली यशोधरा व आप्रपाली का जिक्र है। वैदिक काल में ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य से संवाद करने वाली गार्गी का उल्लेख मिलता है। ऋषिकाओं में रोमशा, श्रद्धा, कामायनी, यमी, वैवस्वती, पौलोमी, शची, विश्ववारा, अपाला, घोषा, सूर्या, शाश्वती, ममता, उशिज एवं लोपमुद्रा सरीखी विदुषियाँ भी हैं लेकिन 16वीं शताब्दी की भक्त कवियित्री और कृष्ण उपासिका मीरा बाई इन सबमें एक अलग स्थान रखती हैं। वे ज्ञानमार्गी नहीं हैं बल्कि प्रेममार्गी हैं। उन पर किसी भी अन्य कवि की

अपेक्षा अधिक पुस्तकें रची गई हैं और आज भी लिखी जा रही है। ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी जनश्रुतियों ने उनके जीवन को मिथक जैसा बना दिया है। उनका जीवन और उनकी रचनाएँ फ़िल्मकारों के लिए शुरु से ही आकर्षण का केंद्र रही हैं। उनका जीवन किसी भी हिन्दी फिल्म की कहानी जैसा ही रहा है। राजकुल में जन्म लेने के बावजूद जीवन में ढेर सारे कष्ट और यातनाएँ झेलकर उन्हें दर दर भटकना पड़ा। विवाह के तत्काल बाद एक युद्ध में उनके पति की मृत्यु हो जाने के उपरांत उनके पति के बड़े भाई ने उन्हें बहुत अपमानित व प्रताड़ित किया। उन्हें तरह-तरह के दुख दिये। मीरा को बाल्यावस्था से ही कृष्ण से प्रेम था, जीवन भर वे कृष्ण भक्ति में आकंठ डूबी रही। मीरा ने पति, पिता, शासक, धर्म, अदालत, समाज, परिवार सभी की घृणा स्वीकार की लेकिन किया वही जो उन्हें उचित लगा। मीरा ने कृष्ण प्रेम में अनेक भजन रचे। वे गायिका भी थी और नर्तकी भी। मीरा ने खुद कोई ग्रंथ नहीं लिखा लेकिन उनकी रचनाओं को जनश्रुति के माध्यम से एकत्रित कर संग्रहित किया गया। मीरा रचित सभी भजन बेहद लोकप्रिय हैं। सभी भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ है। सुगम संगीत, लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत आदि सभी विधाओं में देश के अनेक बड़े गायक-गायिकाओं ने उनके भजन गाए हैं। ऐसे में फिल्म संगीत भला कैसे पीछे रहता। फिल्मों में रचे उनके भजन भी बहुत लोकप्रिय हैं। लोक में पहले से ही प्रचलित मीरा के भजन व पद फिल्म संगीत का हिस्सा बनकर अधिक प्रसिद्ध ही हुए। वे मंदिरों-देवालयों और धार्मिक कार्यक्रमों में भी बजाए और सुने जाते हैं।

मीरा के जीवन पर हिन्दी में कुछ फिल्मों भी बनी हैं। मीराबाई के जीवन पर सबसे पहले मूक फिल्मों के दौर में न्यू थिएटर्स ने 1933 में “राजरानी मीरा” फिल्म बनाई। इस फिल्म में पहाड़ी सान्याल, मेलिना देवी, दुर्गादास बनर्जी और अमर मालिक ने मुख्य भूमिकाएँ निभाई थीं। इस फिल्म में आर सी बोराल ने संगीत दिया था। 1937 में मीराबाई के जीवन पर फ़िल्मकार बाबूराव पेंटर ने “साध्वी मीरा” नाम से एक फिल्म

का निर्माण किया। लेकिन इन दोनों ही फिल्मों के प्रिंट अब उपलब्ध नहीं हैं। इनके बाद 1945 में मीरा पर एक फिल्म तमिल में बनी थी जिसका हिन्दी रीमेक 1947 में प्रदर्शित हुआ। यह दोनों ही संस्करण बेहद लोकप्रिय हुए। हिन्दी में मीरा पर बनी यह एक श्रेष्ठ फिल्म कही जाती है। शुरुआती तमिल सिनेमा के दिग्गज निर्देशक एलिस आर डंकन द्वारा बनाई गई इस बायोपिक फिल्म के दोनों वर्जन में कर्नाटक शास्त्रीय संगीत की प्रख्यात गायिका एम एस सुब्बुलक्ष्मी ने मीरा का किरदार निभाया था। फिल्म में चित्तू वी नागैया, एम जी रामचंद्रन आदि ने महत्वपूर्ण किरदार निभाए थे। इस फिल्म के निर्माता एम एस सुब्बुलक्ष्मी के पति टी. सदाशिवम थे। इस फिल्म में मीरा के बचपन की भूमिका सुब्बुलक्ष्मी की पुत्री राधा विश्वनाथन ने निभाई थी। फिल्म का शुरुआती परिचय सरोजिनी नायडू ने प्रस्तुत किया था। सुब्बुलक्ष्मी ने अपने फिल्मी सफर में केवल पाँच फिल्मों में अभिनय किया जिनमें “मीरा” उनकी एकमात्र हिन्दी फिल्म है। डंकन ने इस फिल्म की शूटिंग के लिए चैन्नई के अलावा द्वारिका, वृन्दावन, जयपुर व उदयपुर को चुना ताकि फिल्म में वास्तविकता दर्शाई जा सके। इस फिल्म के हिन्दी वर्जन का प्रीमियर पंडित जवाहरलाल नेहरू, सी राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडू व माउंटबेटन आदि की उपस्थिति में दिल्ली में आयोजित हुआ। सभी ने फिल्म की बहुत सराहना की। संगीतकार एस वी वेंकटरामन और नरेश भट्टाचार्य के निर्देशन में फिल्म में मीराबाई की बीस रचनाओं को एम एस सुब्बुलक्ष्मी ने गाया है। उनके गाये सभी भजन बेहद लोकप्रिय हुए। इस फिल्म में शामिल गीतों में “बृन्दावन कुंज भवन नाचत गिरधारी”, “दरश बिन दुखन लागे नैन”, “गिरधर गोपाला बाला श्यामल शरीर कोसु बहार”, “मैं हरी चरणन की दासी”, “हमने सुनी हरी अधम उधारण, अधम उधारण सब जग तारण”, “मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई”, “पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे”, “अशरण शरण श्याम हरे”, “हे हरे दयाला मेरे प्रिय नंदलाला”, “सुनो मेरी मनोव्यथा जीवन नाथ तुम हो” “चाकर राखो जी नाथ म्हाने चाकर राखोजी”, “घनश्याम आया री मेरे घर श्याम आया री”, “हरी आवन की आवाज आज सुनी मैं”, “कुंजन बन चढ़ी हे नाधो कहाँ जाऊँ हरी गुण गाऊँ”, “थाद आवे वृन्दावन की मंगल लीला”, “बसो मेरे नैनन में नंदलाल”, “मोरे अंगना में मुरली बजाओ”, “नंदबाला मोरा प्यारा ए जी आओ गिरधारी” आदि हैं।

मीरा के जीवन पर आधारित दूसरी महत्वपूर्ण फिल्म है 1979 में गुलजार के निर्देशन में बनी “मीरा” जो बॉक्स ऑफिस पर तो अधिक सफल नहीं हुई लेकिन समीक्षकों द्वारा बहुत सराही गई। इस फिल्म में मीरा की भूमिका प्रसिद्ध अभिनेत्री हेमा मालिनी ने निभाई है। फिल्म के अन्य कलाकारों में विनोद खन्ना, शम्मी कपूर, श्रीराम लागू, ओम शिवपुरी, ए के हेगल, अमजद खान आदि थे। भूषण बनमाली की लिखी कहानी की स्क्रिप्ट गहन अध्ययन और मंथन के बाद खुद गुलजार ने

तैयार कर इसे एक ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण से फिल्माया है जबकि मीरा की ज्यादातर कहानियाँ पौराणिक व मिथकों से ही रची गई हैं। मीरा के जीवनीकार उनके जीवन से जुड़ी घटनाओं में कल्पना व इतिहास का मिश्रण कर उसे मिथक के रूप में पेश करते रहे हैं। गुलजार ने अपने निर्देशकीय कौशल से इस कहानी को इतिहास की एक घटना की तरह प्रस्तुत किया है। उन्होंने नारी की गरिमा और उसके आध्यात्मिक पक्ष को उसके चरित्र के साथ गूँथकर दिखाया जो बतौर एक फ़िल्मकार बड़ी उपलब्धि कही जाएगी। गुलजार की यह फिल्म कृष्ण भक्ति पर नहीं है बल्कि एक स्त्री के स्वतंत्र फैसलों पर है। फिल्म में पूरा जोर उसके शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक और आध्यात्मिक निर्णयों और इज्जत, अपमान, मृत्यु व सत्ता का भय किए बिना अपने इष्ट को पाने की स्त्री की संकल्प शक्ति पर फोकस किया गया है। इस फिल्म में मीरा बाई की भक्ति रचनाओं का कथा की निरंतरता के साथ अद्भुत प्रयोग किया गया है। इस फिल्म का संगीत भी एक बड़ी धरोहर है। इस फिल्म का संगीत सुप्रसिद्ध सितार वादक पंडित रवि शंकर ने रचा है और सभी पदावलियाँ वाणी जयराम ने गाई है। इस फिल्म के लिए गाये “मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई” को फिल्मफेयर का सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायिका का पुरस्कार भी मिला है। फिल्म के अन्य गीतों में “ए री मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दर्द न जाने कोई”, “बाला मैं बेरागन हूंगी”, “बादल देख डरी”, “जागो बंसी वाले”, “जो तुम तोड़ो पिया”, “करना फकीरी फिर क्या दिलगिरी”, “करुणा सुनो श्याम मोरे”, “मैं सांवरे के रंग राची”, “प्यारे दर्शन दिजो आज”, “श्याम म्हाने चाकर राखोजी” व “राणाजी मैं तो गोविंद के गुण गासूँ” आदि शामिल है जो सभी वाणी जयराम ने गाये हैं।

मीरा के जीवन पर फिल्मों का निर्माण हाँलांकि मूक युग से ही शुरू हो गया था। सबसे पहले 1921 में एक साथ दो फिल्में बनी इनमें एक थी कांजीभाई राठौड़ की “मीराबाई” और दूसरी थी रमणीक देसाई की “मीराबाई”। इनके बाद 1933 में देवकी बॉस ने न्यू थिएटर्स के लिए “राजरानी मीरा” का निर्देशन किया। इस फिल्म को हिन्दी के साथ ही बंगाली में भी बनाया गया था। बंगाली में “मीराबाई” शीर्षक से इसका निर्देशन हीरेन बॉस व बसंता चटर्जी ने किया था। “राजरानी मीरा” का संगीत आर सी बोराल ने दिया था। इस फिल्म में दुर्गा खोटे ने मीरा का चरित्र निभाया था। फिल्म के अन्य कलाकारों में पृथ्वीराज कपूर, के. एल. सहगल, पहाड़ी सान्याल, मोलिना देवी व इंदुबाला आदि थे। इस फिल्म में मीराबाई रचित बीस भजन शामिल किए गए थे जिनमें “ऐसो जनम नहीं बार बार पिया”, “आओ ए बंधु दयानिधि”, “बंसी बोले जागो जागो अब मत सोना भाई”, “बसो मोरे नैनन में नंदलाल”, “चाकर राखोजी गिरधारी लाला”, “सुनी मैं हरी आवन की आवाज”, “मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई”, “पिया मिलम की आस मिटी नहीं”,

“प्रभुजी इस बंदीघर से निकालो”, “नैना ललचावत जियरा उदासी”, “पिया मिलन व्रत हेतु कामिनी कर सोलह श्रंगार”, “मेरे जनम मरण के साथी”, “खोलो द्वार महाराज मन मंदिर के द्वार की सांखल” “चितनंदन बिलमाइ बदरा ने घेरी माई” आदि प्रमुख हैं।

पुणे के शालीमार पिकचर्स ने 1947 में “मीराबाई” पर एक फिल्म वहीउद्दीन ज़ियाउद्दीन अहमद के निर्देशन में बनाई जिसमें उस समय की एक प्रमुख अभिनेत्री निम्मी ने मीरा की भूमिका निभाई। इस फिल्म में निरुपा रॉय, मसूद परवेज़ व रामायण तिवारी भी खास किरदारों में थे। इस फिल्म में मीरा के दर्जन भर भजन थे जिन्हें एस. के. पाल के संगीत निर्देशन में सितारा देवी ने गाया है। इन गीतों में “ओ पपीहारे पीहू की बोली न बोल”, “मेरे तो गिरधर गोपाल”, “मैं तो गिरधर के घर जाऊँ”, “माई म्हाने सपने में परन गयो नंदलाल”, “जो तुम तोड़ो पिया”, “भोर भई कौन गली गयो श्याम”, “ओ कन्हैया मैं तो थारे रंग राची”, “माई री मैं तो लियो गोविंदा मोल”, “चितनंदन आगे नाचूंगी”, “कोई कहियों रे प्रभु आवन की”, “म्हाने चाकर राखोजी” आदि खास हैं। 1956 में “राजराणी मीरा” नाम से एक और फिल्म का निर्माण हुआ। जी पी पवार के निर्देशन में बनी इस फिल्म में मीरा की भूमिका सुलोचना ने निभाई थी। फिल्म के अन्य कलाकारों में प्रेम अदीब, महिपाल, रूपमाला, ललिता पवार, डी के सप्रू आदि शामिल थे। इस फिल्म में मीरा के भजनों के साथ ही कुछ गीत बी डी मिश्रा ने लिखे हैं जिन्हें एस एन त्रिपाठी ने संगीतबद्ध किया है। फिल्म में शामिल गीतों में “मेरो तो गिरधर गोपाल” (लता मंगेशकर), “आओ रे हे गिरधारी” (लता मंगेशकर), “करूंगी करूंगी मैं तो हरी से प्रीत”, (लता मंगेशकर), “पायोजी मैंने रामरतन धन पायो” (गीता दत्त), “गोविंद गोविंद कृष्ण मुरारी” (मन्ना डे), “हरी चरणन में मन लाग्यो” (लता मंगेशकर), “नदिया तो बैरन भयी” (लता मंगेशकर) आदि खास हैं। मीरा से जुड़ी कहानी पर 1949 में बनी फिल्म “गिरधर गोपाल की मीरा” का निर्देशन प्रफुल्ल रॉय ने किया है। इस फिल्म में कमला झरिया, मुख्तार, अरुण दास, रंजीत कुमारी, सुलताना आदि कलाकारों ने विभिन्न भूमिकाएँ निभाईं। फिल्म में मीराबाई की रचनाओं के साथ ही पंडित भूषण के लिखे गीत भी थे जिन्हें संगीतकार ब्रजलाल वर्मा ने धुनों से सजाया है। यहाँ शामिल गीतों में “आओ बिहारी श्याम मुरारी बाट तकत तोरी”, “होली आई सखी रास रचाए हिल मिल जाए”, “आँधी आई प्रेम की मीरा उडी आकाश”, “बोलो हरी ओम मीठा मस्त तराना है”, “काया काची मतड़ी बन बन के घुल जाए”, “कोई मोहन को जाके मेरा दुख सुनाए”, “मैं प्रेम के हाथ बिकाऊ” आदि उल्लेखनीय हैं।

निर्माता-निर्देशक, लेखक व गीतकार किदार शर्मा ने बाल चित्र समिति के लिए 1960 में मीरा के जीवन पर “मीरा का चित्र- ए लाइफ पोर्ट्रेट ऑफ मीरा” शीर्षक से इकतालीस मिनट की एक लघु वृत्तचित्र

फिल्म बनाई थी जिसमें मीरा बाई के भजनों को संगीतकार अनिल बिश्वास ने संगीतबद्ध किया था। इस फिल्म में “मैं तो गिरधर के घर जाऊँ” को मीना कपूर ने और “म्हाने चाकर राखोजी” को मीना कपूर व स्वपन सेन ने गाया है। 1976 में बनी “मीरा श्याम” में भी निर्माता के सी शर्मा व कमल भाटिया ने मीरा बाई के जीवन और उनके कृष्ण प्रेम को दर्शाया है। इस फिल्म में अभिनेत्री कानन कौशल ने मीरा का चरित्र निभाया था। सतीश कुमार के निर्देशन में बनी इस फिल्म के अन्य कलाकारों में अभि भट्टाचार्य, अलंकार जोशी, मनमोहन कृष्ण, के एन सिंह, टुनटुन, लीला मिश्रा, पैड़ी जसराज, केष्टो मुखर्जी, बी एम व्यास आदि शामिल हैं। इस फिल्म में मीरा बाई के भजनों के साथ ही पंडित नरेंद्र शर्मा की लिखी रचनाओं को संगीतकार गोविंद नरेश ने धुनों में बाँधा है। इनमें “मन रे मन रे परस हरि के चरण” (कृष्णा काले), “तुम्हारे कारण सब जग छोड़ा” (कृष्णा काले), “इतनी बिनती सुनो सुनो मोरी, पिया संग कोई कही ओरे जाए” (आशा भोसले), “अँखियाँ श्याम मिलन की प्यासी” (आशा भोसले), “मोहे लागे वृन्दावन नीको” (कृष्णा काले), “पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे” (कृष्णा काले), “सांवरे मत जा राधिका अरज करे कर जोरे” (लता मंगेशकर), “मुरली के स्वर बन” (नीता मेहता) आदि शामिल हैं। 1993 में निर्देशक विजयदीप ने “मीरा के गिरधर” फिल्म बनाई थी जो मीरा बाई के जीवन पर आधारित थी। इस फिल्म में मीरा की भूमिका अभिनेत्री उपासना खोसला ने निभाई थी। फिल्म के अन्य कलाकारों में वीरेन मथान, हिमानी शिवपुरी, परीक्षित साहनी, रेणुका ईरानी आदि शामिल थे। निर्देशक विजयदीप ने इस फिल्म में अतिभावुकता और बेवजह के नाटकीय दृश्यों से बचते हुए कृष्ण के प्रति मीरा के सच्चे समर्पण को दिखाया। फिल्म में कनकराज का मधुर संगीत था। फिल्म की पटकथा अचला नागर ने लिखी थी। फिल्म में मीरा रचित कोई भजन शामिल नहीं था। 1992 में निर्माता गुलशन कुमार ने के. रविशंकर के निर्देशन में फिल्म “मीरा का मोहन” बनाई थी जिसका मीराबाई के जीवन से सीधे तौर पर तो कोई लेना-देना नहीं था लेकिन प्रतीकात्मक रूप में मीरा के जीवन को दर्शकों से जोड़ने का एक प्रयास था। दीपक सर्राफ, अश्विनी भावे, अविनाश वधावन, प्राण, आलोक नाथ आदि को लेकर बनी इस प्रेम कहानी का संगीत अरुण पौडवाल ने रचा था।

मीराबाई के जीवन के अलावा बनी अन्य कई फिल्मों में उनके भजन व उनके रचित पदों का उपयोग हुआ है। 1940 में बनी फिल्म “आजाद” में मीरा की रचना “माई री मैं तो गिरधर के घर जाऊँ” को संगीतकार सरस्वती देवी ने हंसा वाडेकर से गवाया था। 1942 में बनी फिल्म “गरीब” में मीराबाई के लिखे पद “अरी मैं तो दर्द दीवानी” को अशोक घोष ने वीणा की आवाज में कम्पोज़ किया था। 1946 में प्रदर्शित “धरती” में संगीतकार बुलों सी रानी का संगीतबद्ध “रूठ

गए मोसे मनमोहन अब सावन को क्या करूँ” की रचना यूं तो पंडित इंद्र चन्द्र ने की है लेकिन यह गीत मीराबाई के पद से प्रभावित है। यहाँ इसे मोहनतारा तलपड़े ने गाया है। 1948 में बनी फिल्म “कुछ नया” में मीराबाई की रचना “घड़ी एक नहीं जाए रे तुम दर्शन बिन मोहे” को नीनू मजूमदार ने मीना कपूर की आवाज में कम्पोज किया है। नीना मजूमदार का ही संगीतबद्ध और मीना कपूर का गाया मीरा भजन “मैं बिरहन बैठी जागूँ जगत सब सोवे री आली” फिल्म “गोपीनाथ” (1948) में था। 1950 में निर्माता चंदुलाल शाह ने दिलीप कुमार, राजेंद्र कुमार व नर्गिस को लेकर फिल्म “जोगन” बनाई जिसका निर्देशन केदार शर्मा ने किया। फिल्म की कहानी मीराबाई से तो सीधे संबन्धित नहीं थी लेकिन इस फिल्म में मीराबाई के जीवन को प्रतीक रूप में ग्रहण किया था। फिल्म की नायिका का नाम मीरा देवी जो युवा होते हुये भी वैरागी है, के सांसारिक भौतिक सुखों और विषय वासना के त्याग तथा तपस्या की कहानी को प्रस्तुत किया था। फिल्म में मीरा देवी भी हाथ में इकतारा लिए भजन गाती हुई नजर आती है। फिल्म के नायक विजय (दिलीप कुमार) का मीरा देवी के प्रति आकर्षण व प्रेम और मीरा देवी को वापिस सांसारिक जीवन में लाने के असफल प्रयास को इस कहानी में दर्शाया गया है। यह 1950 की चौथी सर्वाधिक कमाई करने वाली फिल्म थी। फिल्म में कुल सोलह गीत थे जिनमें से छह रचनाएँ मीराबाई की थी और शेष गीत पंडित इंद्र, किदार शर्मा व हिम्मत राय शर्मा ने लिखे थे जिन्हें संगीत से बुलों सी रानी ने संवारा था। मीरा बाई के भजनों में शामिल “घूँघट के पट खोल री तुझे पिया मिलेंगे”, “मत जा पाँव पडूँ मैं तोरी”, “ए री मैं तो प्रेम दीवानी”, “प्यारे दर्शन दीजो आए”, “उठे तो चले अवधूत मरी मैं कोई न बिराजे” व “मैं तो गिरधर के घर जाऊँ” सभी को गीता दत्त ने गाया है। संगीतकार अनिल बिश्वास ने फिल्म “बड़ी बहू” (1951) में मीराबाई की रचना “सइयाँ बिन नींद न आवे” को राजकुमारी से गवाया है। 1952 में बनी “यात्रिक” में संगीतकार पंकज मलिक ने विनोता चक्रवर्ती की आवाज में “मीरा कहे बिन प्रेम में नहीं मिले नंदलाल” कम्पोज किया जो कि मीरा का ही भजन है। 1952 में ही बनी “रत्नदीप” में भी मीरा रचित एक गीत “मैंने रामरतन धन पायो” था जिसे सुप्रसिद्ध गायिका जूथिका रॉय ने गाया है। उसी साल प्रदर्शित “चौबहार” में संगीतकार रोशन ने लता मंगेशकर की आवाज में “अरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाने कोई” कम्पोज किया जो कि मीरा की रचना से प्रभावित है और इसमें गीतकार शैलेंद्र ने कुछ मुखड़े रचे हैं। संगीतकार सी. रामचन्द्र ने फिल्म “झाँझर” (1953) में मीरा बाई रचित “तुम बिन मोरी कौन खबर ले” को लता मंगेशकर की आवाज में पेश किया। 1954 में प्रदर्शित फिल्म “गृहप्रवेश” में मुकुल रॉय ने मीरा बाई के गीत “बरसे बदरिया सावन की” को गीता दत्त व कृष्णा बनर्जी से गवाया है। लता मंगेशकर ने फिल्मों व फिल्मों के बाहर भी मीरा की

कई रचनाओं को अपनी आवाज दी है। 1955 में प्रदर्शित बाल फिल्म “गरम कोट” में पंडित अमरनाथ ने “प्रीत किए दुख होए” व संगीतकार बसंत देसाई ने फिल्म “झनक झनक पायल बाजे” में “जो तुम तोड़ो पिया” लता मंगेशकर से ही गवाए हैं। 1956 में बनी फिल्म “श्याम की जोगन” में मीरा की पदावली से प्रभावित गीत “मैं तो प्रेम दीवानी हो गई रे” को गीता दत्त ने गाया है और इसके बोल एस पी कल्ला ने रचे हैं। 1956 में ही बनी फिल्म “तूफान और दीया” में संगीतकार बसंत देसाई ने मीराबाई के दो प्रसिद्ध भजन “म्हाने चाकर राखो जी” व “मुरलिया बाजे री जमुना के तीर” लता मंगेशकर की आवाज में कम्पोज किए हैं। कुछ गीतकारों ने मीरा के भजनों के मुखड़ों का प्रयोग करते हुए अपने शब्दों में गीतों की रचना की है। 1957 में बनी लेकिन अप्रदर्शित रही फिल्म “चांदग्रहण” में मीरा बाई की रचना “पिया को मिलन कैसे होई री मैं जान्यो नाहीं” से प्रेरित गीत कैफी आजमी ने लिखा था जिसे संगीतकार जयदेव ने लता मंगेशकर की आवाज में रिकॉर्ड किया है। 1970 में प्रदर्शित फिल्म “इश्क पर जोर नहीं” में गीतकार आनंद बक्षी ने “मैं तो तेरे रंग राची” की पहली पंक्ति का उपयोग करते हुए गीत लिखा जिसे संगीतकार एस डी बर्मन ने लता मंगेशकर से गवाया है। 1970 की ही फिल्म “जॉनी मेरा नाम” में गीतकार इंदीवर ने “चुप चुप मीरा रोए” को आधार बनाकर गीत लिखा जिसे कल्याण जी आनंद जी के संगीत निर्देशन में लता मंगेशकर ने गाया है। गीतकार नीरज ने फिल्म “रिवाज” (1972) में “मैं तेरी प्रेम दीवानी मीरा” लिखा जिसे शंकर जयकिशन ने सुमन कल्याणपुर की आवाज में संगीतबद्ध किया है। संगीतकार जयदेव ने 1977 में प्रदर्शित फिल्म “आंदोलन” में मीरा की रचना “पिया को मिलन कैसे होयी री मैं जानूँ नाहीं” को आशा भोसले की आवाज में संगीतबद्ध किया। 1982 में बनी अमिताभ बच्चन अभिनीत सफल फिल्म “नमक हलाल” में गीतकार अंजान ने “पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे” पंक्ति का इस्तेमाल कर एक गीत लिखा जिसे बप्पी लहरी ने किशोर कुमार से गवाया। सत्यजित रॉय की फिल्म “जय बाबा फेलूनाथ” (1979) में मीराबाई की रचना “मोहे लागी लगन गुरु चरणन की” की को रेबा मुहुरी ने गाया है। यश चोपड़ा की “सिलसिला” में संगीतकार शिव हरी ने भी मीराबाई की रचना “जो तुम तोड़ो पिया” को लता मंगेशकर व अमिताभ बच्चन से गवाया है।

अब नए दौर में फिल्मों में भजन का चलन कम हो गया है, इस कारण मीराबाई की रचनाएँ भी फिल्म संगीत में कम सुनाई पड़ती हैं।



एफ-7, गाँधी नगर जयपुर-302015 राजस्थान
मो. 9828277002

लिटरेचर और रिसर्च मैथडोलॉजी

डॉ. अंजन कुमार

हम यहाँ बात सिर्फ साहित्य पर करते हैं। साहित्य के तथ्य भी चिर-परिचित और स्थिर होते हैं किन्तु उनके संदर्भगत परिवर्तन से उनके मूल्यांकन के तरीके, प्रतिमान और महत्व बदल जाता है। साहित्यिक दृष्टि से साहित्यिक दृश्य बदल जाते हैं और पुनः बदले हुए दृश्य को देखकर दृष्टि में भी संशोधन एवं परिवर्तन आ जाता है। अतः आप क्या देखते हैं, आपकी दृष्टि कहाँ तक जाती है, आपकी दृष्टि कितनी उदार है, कितनी लोचदार है, कितनी व्यापक है, कितनी सीमित, उसी अनुपात में, उसी आलोक में आप सत्य को पकड़कर देखते हैं और लोगों को दिखाते हैं जैसे आदिकाल में किसी को लड़ाई-भिड़ाई और वीरता दिखाई तो उसका नाम 'वीरगाथा काल' कर दिया, किसी को सिर्फ चारण दिखाए तो 'चारणकाल' कर दिया, किसी को सिद्ध-सामंत दिखाए तो उसे 'सिद्धसामंत काल' घोषित कर दिया और किसी को सबकुछ दिया तो उसे 'स्वतोव्याघात' का काल (Era of Contradiction) बताया।

Literature and Research Methodology अर्थात् साहित्य और अनुसंधान प्रविधि अनुसंधान के मैकेनिज्म (Mechanism) का नाम है, अनुसंधान के सांचे और ढांचे का नाम है अन्वेषण की व्यवस्थित प्रक्रिया का नाम है, अपने गोल, अपने Objective, अपने गंतव्य (Destination) को पाने, उसे उपलब्ध करने की व्यवस्था और अनुशासन का नाम है जो रिसर्च को दिशाहीन और अव्यवस्थित होने के खतरों से बचाता है। यानी Method अपने आपमें लक्ष्य नहीं है, यह एक साधन है, साध्य नहीं। साध्य है- वह Target, Goal, Objective, Destination जिसे हमें उपलब्ध करना है, Achieve (एचीव) करना है। इसीलिए Clarity of Goal (लक्ष्य की स्पष्टता) का होना जरूरी है।

किन्तु Clarity of Goal का संबंध विषय से है अथवा वस्तु से है? क्योंकि विषय और वस्तु दो अलग चीजें हैं। यह सवाल सिर्फ विषय और वस्तु का नहीं है बल्कि यह सवाल रिसर्च की मौलिकता और नवीनता का है। मौलिकता और नवीनता क्या है? सभी लोग अपने-अपने शोध प्रबंध के आरम्भ में यह विज्ञप्ति देते हैं, यह Declaration (उद्घोषणा) करते हैं कि यह मेरा मौलिक प्रयास है। किन्तु क्या मूल विषय, फलाना विषय पर कार्य करने मात्र से ही रिसर्च मौलिक हो जाता है। जवाब है- नहीं।

विषय नहीं, वस्तु मौलिक होता है। मौलिकता और नवीनता वस्तु में होती है। जिसे पढ़कर पाठक की धारणा में परिवर्तन हो। धारणागत परिवर्तन ही शोध को नया बनाता है। किसी साहित्यिक काल जैसे आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के विषय में, किसी लेखक जैसे प्रेमचंद्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि के विषय में, किसी कवि जैसे तुलसीदास, सूरदास, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, पंत, महादेवी आदि के विषय में, किसी विमर्श जैसे- स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि के विषय में हमारी एक नयी राय बनें, हमारी समझ दुरुस्त हो, एक बहस शुरू हो, एक वैचारिक उत्तेजना शुरू हो, किसी चीज को हम एक नयी रोशनी में नए आलोक में, नए चश्मे से जाने-परखें और देखें। जिससे न केवल साहित्यिक स्थिरता के स्थान पर साहित्यिक क्रियाशीलता, साहित्यिक गतिशीलता के दर्शन होते हैं बल्कि साहित्यिक केन्द्र और परिधि के भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन, परंपरा, संस्कृति और मनोविज्ञान में भी परिवर्तन आ जाता है। पुराने विषयों, पुरानी धारणाओं का भी जिससे नवीनीकरण हो जाता है इसके फलस्वरूप वे एक नए अवतार में, एक नयी पहचान में, एक नए रंग में, एक नए ढंग में, एक नए क्लेवर में और एक नये फ्लेवर में नजर आते हैं, उनके मान और प्रतिमान दोनों बदल जाते हैं। उनके पुनर्मूल्यांकन की माँग उठने लगती है। यही किसी भी रिसर्च की सार्थकता और सफलता है। हर रिसर्च की माँग कुछ ऐसी ही होनी चाहिए, हर रिसर्च का लक्ष्य कुछ ऐसा ही होना चाहिए और प्रविधि या Metabiology इसी माँग की पूर्ति का अभिकरण है, एक जरिया है जिससे हमारा नजरिया बदले।

किसी देश का इतिहास और साहित्य सिर्फ तथ्यों का संग्रह, तथ्यों का संकलन नहीं होता है। इतिहास और साहित्य का महत्व उनके तथ्यों में नहीं होता है बल्कि उनके संदर्भ और 'एप्रोच' में होता है। उनके संदर्भ में 'एप्रोच' बदल दीजिए इतिहास और साहित्य भी बदल जाएगा। आस्था के चश्मे से देखेंगे तो इतिहास कुछ और नजर आएगा। राष्ट्रवाद के चश्मे से देखेंगे तो इतिहास कुछ और नजर आएगा, निम्नवर्गीय प्रसंग या सबआल्टर्न (Subaltern School) स्कूल के चश्मे से देखेंगे तो इतिहास कुछ और नजर आएगा, नायकों और खलनायकों की अदला-बदली और प्रतिस्थापन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। अचानक से आर्य, हिन्दुत्व, गाँधी, पटेल, जिन्ना नेहरू, इन्दिरा गांधी, पं. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गोलवरकर आदि पर एक नये सिरे से बहस गरमाने लगती है, अचानक से शिवाजी और अफजल खाँ आपको सुनाई पड़ने लगते हैं। एक दूसरे को हीरो और विलन बनाने के इतिहास का चलचित्र आपको इतिहास का रिमेक (Remake) बनाकर दिखाया जाता है। कुल मिलाकर सिनेमा के रिमेक की तरह ही इतिहास और साहित्य का रिमेक भी बनाया जाता है, तथ्यों के संदर्भों को बदलकर, एप्रोच को बदलकर, यह कितना सकारात्मक होता है अथवा नकारात्मक, यह अलग बात है। अस्तु!

हम यहाँ बात सिर्फ साहित्य पर करते हैं। साहित्य के तथ्य भी चिर-परिचित और स्थिर होते हैं किन्तु उनके संदर्भगत परिवर्तन से उनके मूल्यांकन के तरीके, प्रतिमान और महत्व बदल जाता है। साहित्यिक दृष्टि से साहित्यिक दृश्य बदल जाते हैं और पुनः बदले हुए दृश्य को देखकर दृष्टि में भी संशोधन एवं परिवर्तन आ जाता है। अतः आप क्या देखते हैं, आपकी दृष्टि कहाँ तक जाती है, आपकी दृष्टि कितनी उदार है, कितनी लोचदार है, कितनी व्यापक है, कितनी सीमित, उसी अनुपात में, उसी आलोक में आप सत्य को पकड़कर देखते हैं और लोगों को दिखाते हैं जैसे आदिकाल में किसी को लड़ाई-भिड़ाई और वीरता दिखी तो उसका नाम 'वीरगाथा काल' कर दिया, किसी को सिर्फ चारण दिखे तो 'चारणकाल' कर दिया, किसी को सिद्ध-सामंत दिखे तो उसे 'सिद्धसामंत काल' घोषित कर दिया और किसी को सबकुछ दिया तो उसे 'स्वतोव्याघात' का काल (Era of Contradiction) बताया।

Method को निर्धारित करने में इतिहास दृष्टि, साहित्य दृष्टि एवं संदर्भ की कितनी भूमिका होती है इस बात का आकलन हम इस बात से कर सकते हैं कि जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में प्रतिष्ठित 'परिस्थिति' का चश्मा भक्ति आंदोलन को इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में देखती है तो वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में प्रतिष्ठित 'परम्परा' का चश्मा भक्ति आंदोलन को भारतीय चिन्ताधारा के स्वाभाविक विकास की परिणति के रूप में देखते हैं। इस बात की पुष्टि वे

इस बात से जोर देकर करते हैं कि मैं जोर देकर कहना चाहता कि अगर भारत में इस्लाम का आगमन न होता तो भी भक्ति आंदोलन इसी रास्ते आता और भक्ति-आंदोलन का स्वरूप 16 आने में से 12 आना वैसा ही होता। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि द्विवेदी जी स्वयं भी 4 आने का Space परिस्थितियों को प्रकारान्तर से देते हुए दिखाई पड़ते हैं।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले आचार्य रामचन्द्रशुक्ल 1929 में 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका में साहित्य को शिक्षित जनता की संचित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब मानने के कारण ही कबीर के मूल्यांकन के क्रम में वे कबीर को साम्प्रदायिक शिक्षा देने वाले तथा निरक्षर जनता में प्रभाव रखने वाले कवि के रूप में चिन्हित कर उन्हें आलोचना के केन्द्र से बाहर रखते हैं। तो यहाँ स्पष्ट है कि शुक्लजी का 'साहित्यलोक' 'शिक्षित लोग' तक सीमित है। 2020 में जहाँ करीब 82 करोड़ लोग आज भी गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं वहाँ करीब 500 वर्ष पूर्व के भारत में साक्षरता दर कितनी रही होगी, इसका हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं। शायद एक या दो पैसे का वह भी शायद! यानी 1 या 2 पैसे के लोक को 'समस्त लोक' शत-प्रतिशत लोक मानना और इसी तर्ज पर एक या दो पैसे के साहित्य को 'समस्त साहित्य' मानकर बाकी के 98: लोगों को लोक और साहित्य की परिधि से बाहर रखने की कबायत पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने घोर आपत्ति दर्ज करायी, इसी का परिणाम था कि उन्होंने लोक और साहित्य का पुनर्गठन करते हुए कबीर को लोक का प्रतिष्ठित कवि घोषित कर उन्हें साहित्य के केन्द्र में स्थापित किया। शुक्लजी को भी उनके तर्कों से बाध्य होकर अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तक में से शिक्षित जनता शब्द के स्थान पर जनता शब्द का प्रयोग करना पड़ा।

मलिक मोहम्मद जायसी पर 'जायसी' नामक पुस्तक लिखकर विजयदेवनारायण शाही ने जायसी के ऊपर से सूफीवाद के लबादे को हटाकर, धूल-मिट्टी झाड़कर एक विशुद्ध कवि और उनके 'त्रासदी विजन' को स्थापित कर जायसी संबंधी कई पूर्व धारणाओं का संशोधन एवं पुनर्मूल्यांकन किया। शाही के 'विजन' और 'एप्रोच' का ही कमाल था कि उन्होंने पूर्व के लेखन का बारीकी से अध्ययन कर, उन्होंने उसका Acknowledge (एकनॉलेज) कर कई भ्रान्तियों का निराकरण किया। इससे एक बात स्पष्ट है कि शोधकार्य में पहले के अध्ययनों, निष्कर्षों, मान्यताओं आदि का संज्ञान लेना आवश्यक है। उनका Acknowledgement (एकनॉलेजमेंट) जरूरी है। जो कि आजकल या तो बहुत कम या समाप्त हो गया है। साहित्य के Research Methodology में इसे अवश्य शामिल करना चाहिए।

धारणाओं के पुनर्गठन एवं पुनर्मूल्यांकन के लिए सभी प्रकार के पहले के अध्ययनों, कार्यों, आरोपों, प्रत्यारोपों, मान्यताओं, निष्कर्षों से परिचित होकर और उनसे टकराहट, पुरानी प्रतिमा तोड़कर एक नयी

प्रतिमा हम खड़ी कर सकते हैं। जैसे छायावाद के आरंभिक दौर में जिस छायावाद को पलायन का काव्य घोषित किया गया, अस्पष्टता का काव्य घोषित किया गया, उन्हीं मान्यताओं एवं आलोचनाओं से टकराकर नये-नये संदर्भों और नये-नये एप्रोचों के आधार पर छायावाद को जागरण का काव्य, शक्ति का काव्य के रूप में पहचान पाकर छायावाद का साहित्य नया होकर एक नये अवतार में सामने आया तो इसके पीछे प्रविधिगत एवं प्रणालीगत व्यवस्था का अनुशीलन ही है। जिसने छायावादी प्रतीकों को खोलकर प्रवृत्तिगत एवं प्रकृतिगत विशेषताओं को चिन्हित एवं रेखंकित किया। इससे छायावादी कविता का मान और प्रतिमान दोनों बदला। इससे रचनाजगत और आलोचना जगत दोनों में ही वैचारिक बहस और आत्ममंथन का दौर शुरू हो गया।

नयी कविता तक आते-आते बहस का केन्द्र 'नयी कविता के प्रतिमान' से शिफ्ट होकर कविता के नये प्रतिमान पर चला गया। यानी कविता लिखने के Method में परिवर्तन होने के साथ ही साथ कविता के समझने, उसके मूल्यांकन के Method में भी बदलाव की भूमिका ने Research के Method को भी स्वतः परिवर्तन के लिए बाध्य किया है। इसका अर्थ सीधा यही है कि हम अन्वेषण एवं अनुसंधान के लिए अपने-अपने औजारों की जाँच कर लें कि वह कितना कारगर है और कितना भोथर है, कितना प्रासंगिक है और कितना Out of Date है, कितना पूर्वाग्रह से ग्रस्त है और कितना उदार एवं उन्मुक्त है, कितना Inclusive है और कितना Democratic है।

यानी रिसर्च की यात्रा से पूर्व हम इन तमाम बातों का ध्यान रखकर खोज के सफर पर निकलें तो मंजिल हमें खुद-ब-खुद मिल ही जाएगी। Research लम्बी यात्रा (Journey) है जिसमें पूरी तैयारी के साथ Well Equipped होकर, पूरे फोकस के साथ सफर की थकान भूलकर, रास्ते की बाधाओं-चुनौतियों को अपने हौसलों से परास्तकर सतत् आगे बढ़ने का नाम है। जिसमें तीन चीजें हैं-

- What to Do क्या करना है जो हमारा Goal है।
- How to Do कैसे करना है जो हमारा Method है।
- I Can do मैं कर सकता/सकती हूँ जो हमारा विश्वास है।

यानी विश्वास लक्ष्य के प्रति, विश्वास Method के प्रति और अंत में विश्वास स्वयं के प्रति भी आवश्यक है। संसार का असंभव कार्य भी आत्मविश्वास के साथ संभव है और संसार का एक भी कार्य आत्मविश्वास के बिना संभव नहीं है।

इसी आत्मविश्वास के साथ हमें शोध कार्य की यात्रा में प्रस्थान करना चाहिए। शोध-कार्य की एक रूप-रेखा, एक खाका हमारे सामने होना चाहिए, जिस प्रकार कोई भवन हम बनाते हैं तो एक नक्शा हमारे

सामने होता है उसी प्रकार शोध की संरचना एवं परिकल्पना रखकर हमें अनुक्रमणिका के अन्तर्गत अध्यायों का वर्गीकरण, उपाध्यायों का विभाजन ठीक उसी तरह करना चाहिए, जिस तरह किसी वृक्ष की शाखाएँ, उपशाखाएँ आपस में मिलकर करती हैं। जो आपस में आवयविक तरीके से जुड़ी रहती हैं। अलग-अलग होकर भी वृक्ष से जुड़ी हुई रहती हैं और जिसकी जड़ें गहरे जमीन के अंदर जमी रहती हैं, जो बरसात में पानी से, आंधी-तूफानों से टकराकर भी उपयुक्त ऋतु में फल देती है। ठीक वैसे ही हमारे अध्याय-उपाध्याय-उपशीर्षक आदि अलग-अलग होकर भी शोध-विषय से जुड़ी हुई रहनी चाहिए। उस विषय पर समझ की जड़ें गहरी होनी चाहिए और जिसे खाद, पानी हमारे विचार, हमारे सामग्री-संकलन, हमारे गंभीर अध्ययन, हमारे आपसी संवाद से सतत् मिलती रहनी चाहिए। ताकि उपयुक्त ऋतु यानी निर्धारित समय पर शोध का फल हमें मिल सके। और इस फल का आस्वाद एकेमिक जगत एवं समाज दोनों ही ले सके। इन दोनों का अधिकार आपसे ज्यादा है। जिस तरह तैयार फल बाजार एवं मंडियों के माध्यम से लोगों तक आस्वाद के लिए पहुँचता है, उसी तरह आपका भी Research Output का फल साहित्यास्वादन के लिए लोगों तक पहुँचे। क्योंकि जो फल वृक्ष पर ही रह गया वह सड़ जाता है, उसी तरह जो ज्ञान रूपी फल आप तक ही रह गया वह भी सड़ जाएगा, उसकी नियति ब्रह्मराक्षस वाली हो जाएगी। क्योंकि ज्ञान एक सामाजिक उत्पाद है जिसे पाना है और आगे बढ़ाना है।

अनुसंधान के फल के प्रति दूसरों का आभार अवश्य करना चाहिए चाहे वे आपके विभागाध्यक्ष हों, चाहे शोध निदेशक हों, चाहे सलाहकार हों या आपके माता-पिता, मित्र-संबंधी-शुभचिन्तक इत्यादि। इन सबके सहयोग से ही आप एक-एक कदम मंजिल की ओर आगे बढ़ते हैं। 'इत्यादि' की ताकत तो आप सब बखूबी जानते हैं।

अन्त में आभार की लिस्ट में आभार और आधार संदर्भ ग्रंथ सूची या Bibliography का भी बड़ा योगदान है जिसने आपके ज्ञान के क्षितिज का विस्तार किया, जिस ज्ञान के समुद्र में आपने डुबकी लगाई है उन सबका समुचित उल्लेख रिसर्च की प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता के लिए भी आवश्यक है। साथ ही साथ पाद-टिप्पणियों (Foot-Notes) का भी यथोचित प्रयोग रिसर्च की गुणवत्ता एवं प्रमाण-मीमांसा का प्रतीक होता है। उद्धरण और उदाहरण आपके कथन का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। ताकि आप रिसर्च दिखें, कथावाचक नहीं, जिसमें किसी बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है।



असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जाकिर हुसैन कॉलेज दिल्ली मो. 7428223779



जयशंकर प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिक संवेदनशीलता और राष्ट्रीयता के प्रश्न

डॉ अमित सिंह

“अपने नाटकों में प्रसाद जी ने आजादी के आंदोलन के समय की टीस और संघर्ष को उकेरने की सृजनशील बलवती चेष्टा की है। जब भौतिक और मानसिक दोनों ही स्तरों पर बाहरी आक्रमणकारियों से किसी राष्ट्र का भूगोल घिरा हो तो आंतरिक मनमुटाव के लिए कोई अवकाश शेष नहीं बचता। प्रसाद ने अपने नाटकों में आंतरिक दुर्बलताओं को भी इतिहास और कल्पना के मणिकांचन योग से प्रकट किया है। यहाँ चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी नाटक से उदाहरण रखते हुए इस तथ्य की पुष्टि करना उचित होगा। ‘चंद्रगुप्त’ नाटक में भारतीय भूगोल पर बाहरी आक्रमणकारियों के हमले के एवज में भारतीय भूमि की निडरता का उल्लेख किया गया है। यवनआक्रांताओं की चर्चा करते हुए नाटककार ने मालव, मगध के क्षेत्रीय अंतर को पाटते हुए, आर्यावर्त के एकीकरण की भी बात प्रस्तुत नाटक में की है।”

जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे। वे जितने बड़े कवि के रूप में उभरते हैं, उतने ही बड़े स्तर पर उन्होंने नाट्य सृजन किया। अपनी रचनात्मक बुनावट के रूप में वे सौंदर्य चेतना एवं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को मुख्य रूप से साथ लेकर चलने वाले रचनाकार रहे। साहित्य में इतिहास और कल्पना के सम्मिश्रण का यदि कहीं बेहतर प्रयोग देखने को मिलता है, तो उसमें जयशंकर प्रसाद का नाट्य साहित्य भी अप्रणी रूप से हमारे सम्मुख उभरता है।

प्रसाद जी ने इतिहास का यथावत प्रयोग नहीं किया अपितु इतिहास का गहन अध्ययन करते हुए उसे अपने समय समाज के लिए उपयोगी बनाते हुए उन्होंने ऐतिहासिक प्रयोग अपनी नाट्य रचनाओं में किया है। उनकी नजर में इतिहास का प्रयोग इसलिए आवश्यक होता

है क्योंकि वह सदैव हमारे वर्तमान को भी प्रभावित करने की क्षमता रखता है। अपने इसी प्रकार के विचार को रखते हुए उन्होंने कहा भी है कि - “इतिहास का अनुशीलन किसी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।हमारी गिरी दिशा को उठाने के लिए हमारी परम्परा के अनुकूल जो हमारी जातीय सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें पूर्ण संदेह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।”

हम प्रसाद जी की नाट्य रचनाओं में ऐतिहासिक जीवंतता को पाते हैं। अपने नाटकों में प्रसाद जी ने अपने समय की परिस्थितियों को अप्रत्यक्ष रूप से सृजित करते हुए राष्ट्र के समक्ष खड़े इन प्रश्नों को बराबर उठाया है। वह चाहे आंतरिक सम्प्रभुता के प्रश्न के हों या बाह्य सम्प्रभुता से संबद्ध। वो चाहे चंद्रगुप्त हो, स्कंदगुप्त हो, ध्रुवस्वामिनी हो या कोई और नाटक हो। ऐतिहासिक वर्णन की बजाय ऐतिहासिक रचनात्मक सृजन इनके नाटकों में बराबर दृष्टव्य है। अपने समय में आजादी के लिए जिस एकसूत्रता एवं राष्ट्रीय भाव की अपेक्षा थी, प्रसाद जी ने अपने नाटकों में ऐतिहासिक रचनात्मकता के रूप में उसका निर्वाह किया है। प्रसाद के नाटक चाहे वह चन्द्रगुप्त हो जिसमें मौर्यकालीन इतिहास को उभारा गया है या स्कंदगुप्त हो, जिसमें गुप्त कालीन इतिहास का अवलोकन दृष्टव्य है। यदि स्कंदगुप्त पर ही बात करें तो हम पाते हैं कि जिस प्रकार नाटक का नायक अपने अधिकारों के प्रति उदासीन और कर्तव्यों के प्रति विमुख दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार प्रसाद के रचनाकाल में राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सामाजिक, राजनैतिक उथल-पुथल और गुलामी का दमनचक्र जनसामान्य पर हावी था। जिसमें एकीकरण और

जागरूकता की मांग तत्कालीन समय की मांग थी, जिसकी ओर इशारा करते हुए एक दिशा देने की कोशिश प्रसाद जी ने अपनी नाट्य रचनाओं के माध्यम से की है, विशेषकर 'चंद्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' के माध्यम से। स्कंदगुप्त का रचना काल 1931 है। यदि तत्कालीन समय पर नजर डालें तो राष्ट्रीय घटनाक्रम के रूप में 1920 से 1930 तक का राष्ट्रीय परिदृश्य राजनीतिक दृष्टि से उदासीनता से भरा हुआ समय था, जिसमें चोरा-चोरी कांड की घटना के उपरांत गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को वापस कर लिया था। नाट्य आलोचकों की नजर में स्कंदगुप्त की रचना इन सब घटनाओं के ही इर्द गिर्द बुनी गई है जिसमें ऐतिहासिक कलेवर का इस्तेमाल करते हुए अपने समय-समाज का जागतिक वर्णन प्रसाद जी ने किया है- "असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद महात्मा गांधी ने सन् 1926 तक अपना समय स्वतंत्रता की लड़ाई के बजाय समाज के रचनात्मक कार्यों (चर्खा प्रचार, मादक द्रव्यों के सेवन का विरोध, विद्यालय खोलना आदि) में लगायानागपुर लखनऊ, इलाहाबाद, जबलपुर, दिल्ली, शाहजहांपुर आदि प्रमुख शहरों में सांप्रदायिक हिंसा के इस वातावरण में सन 1927 को ब्रिटिश सरकार ने वैधानिक सुधारों के संबंध में विचार करने के लिए 'साइमन कमीशन' नियुक्त करने की घोषणा की। इस कमीशन के सदस्य केवल अंग्रेज थे। अतः देश की सभी राजनीतिक संस्थाओं- कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा ने सात फरवरी 1928 को कमीशन के भारत आगमन पर विरोध किया, देश में फिर से हड़ताल-प्रदर्शनों के रूप में साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विरोध और सक्रियता देखने को मिली। अतः राजनीतिक अवसाद, निराशा, उदासीनता, विघटन, सांप्रदायिक विद्वेष और अंततः राष्ट्रीय आंदोलन की सक्रियता के काल में स्कंदगुप्त की रचना हुई।²

स्कंदगुप्त में एक ओर बाहरी आक्रमणों की बात उभरती है, तो दूसरी ओर आंतरिक षडयंत्र से उपजती विघटन जन्य चुनौतियों को नाटकीय पात्रों- भटार्क अनन्तदेवी और प्रपंचबुद्धि के आर्य साम्राज्य के विरोध में संलग्न होने के रूप में देखा जा सकता है। साथ ही सांप्रदायिकता का मुद्दा बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष के रूप में दिखाई देता है।

स्कंदगुप्त स्वयं को राजा न मानते हुए एक सैनिक के रूप में स्वयं रखता है, लेकिन साथ ही वह अधिकार सुख को मादक और सारहीन बतलाते हुए पर्णदत्त के सम्मुख अधिकार प्रयोग को 'किसलिए' के दाये में खड़ा कर देता है तब पर्णदत्त उसे जवाब में उसके अधिकार और

उत्तरदायित्व का बोध कराते हैं:

स्कंदगुप्त: चिंता क्या ! आर्य अभी तो आप हैं, तब भी मैं ही सब विचारों का भार वहन करूँ, अधिकार का उपयोग करूँ, वह भी किसलिए?

पर्णदत्त: किसलिए? त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिए, सतीत्व के सम्मान के लिए, देवता ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास के लिए, आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए आपको अपने अधिकारों का उपयोग करना ही होगा। इसीलिए मैंने कहा था कि आप अपने अधिकारों के प्रति उदासीन हैं, जिसकी मुझे बड़ी चिंता है। गुप्त साम्राज्य के भावी शासक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं है।³

वस्तुतः प्रसाद जी ने यहाँ गुप्त साम्राज्य के भावी शासक की एक अकर्मण्यता को स्पष्ट करते हुए प्रकारांतर से राष्ट्रीय आन्दोलन के समय की नेतृत्वपरक स्थितियों की ओर भी इशारा किया है। प्रसादजी इतिहासकार नहीं बल्कि साहित्यकार थे, स्वभावतः उन्होंने इतिहास का रचनात्मक प्रयोग किया और ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के सहारे साहित्य में संयोजित करते हुए ऐतिहासिक संवेदनशीलता का परिचय दिया। ऐतिहासिक सृजनशीलता की सम्मति को प्रकट करते हुए अपने अंतिम नाटक ध्रुवस्वामिनी की भूमिका में सूचना के रूप में अंत में प्रसाद जी लिखते हैं- "मेरा यह विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त ने समाज की दीर्घकाल व्यापिनी परंपरा में प्रायः प्रत्येक विधा का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं, इसलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक नहीं था। क्या होना चाहिए और कैसा होगा यह तो व्यवस्थापक विचार करें, किंतु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका था, जिस घटना के घटित होने की संभावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है।"⁴

यहाँ अंतिम वाक्य पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि प्रसाद जी इतिहास को आधार बनाते हुए, जो घटित हो चुका के साथ ही घटित होने की संभावनाओं को भी साथ जोड़कर चलते हैं। ध्यान देने की बात यह है जयशंकर प्रसाद के लिए इतिहास की तथ्यात्मक जानकारीयां और लोक में मान्य चरित्रों के सम्मिलित भाव संसार को उन्होंने नाटकीय कथानक में पिरोया है। अपनी इस सम्मिश्रित नाटकीय कथित चेतना के माध्यम से एक सजग जागरूक दायित्व का निर्वहन

करते हुए प्रसाद जी ने अपने समय समाज की जागतिक परिस्थितिजन्य चुनौतियों पर फोकस किया है और ऐतिहासिक संवेदनशीलता के पुट से जनमानस में सामयिक अपेक्षा भाव को जागृत करने की आवश्यक और सफल सृजनशीलता को प्रसारित किया है। प्रसाद जी के चिंतन और नाट्य सृजन दोनों को देखने पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय स्वाभिमान और मानवता की लौ को उन्होंने अपने नाट्य सृजन का मूल बनाया, जिसे उनके नाटकों में बराबर देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास का अध्ययन और चिंतन-मनन करते हुए उसे नाट्य सृजन का आधार बनाकर प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता का भी एक नमूना पेश करते हुए अपनी समय में गुलामी की जंजीरों और बाध्यताओं से जकड़े हिंदुस्तान में प्राण संचार का कार्य अपनी कलात्मकता से किया। इतिहास हमें एक व्यापक अनुभव ही नहीं प्रदान करता। बल्कि कलाओं के माध्यम से वह कलात्मक आयाम के रूप में अपने वर्तमान की सुध लेता हुआ भविष्योन्मुखी दृष्टि भी प्रदान करता है। प्रसाद जी ने अपने नाट्य सृजन के माध्यम से इतिहास को आधार बनाकर इसी प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि प्रदान की है, जो आज हमारे वर्तमान में प्रासंगिक बनी हुई है और आने वाले समय या आज से आगे आने वाले समय के रूप में भविष्य के लिए भी सार्थक प्रतीत होगी क्योंकि भारतीय दृष्टि मानवतावाद और अध्यात्म से संबद्ध रही है। स्वयं नाटककार जयशंकर प्रसाद ने इस संदर्भ में कहा है- “भारत से पश्चिम का यह मौलिक मतभेद है। यही कारण है कि पश्चिमी साम्राज्य की घोषणा करते हुए भी अधिकतर भौतिक या Materealstic बना हुआ है और भारत -मूर्ति पूजा और पंच महायज्ञों क्रिया कांड में भी अध्यात्म भाव से अनुप्राणित है।हमारे सब बौद्धिक व्यापारों का सत्य की प्राप्ति के लिए सतत उपयोग होता रहता है। वह सत्य प्राकृतिक विभूतियों में जो परिवर्तनशीलता होने के कारण अमृत नाम से पुकारी जाती है, ओतप्रोत है।”⁵

अपने नाटकों में प्रसाद जी ने आजादी के आंदोलन के समय की टीस और संघर्ष को उकेरने की सृजनशील बलवती चेष्टा की है। जब भौतिक और मानसिक दोनों ही स्तरों पर बाहरी आक्रमणकारियों से किसी राष्ट्र का भूगोल घिरा हो तो आंतरिक मनमुटाव के लिए कोई अवकाश शेष नहीं बचता। प्रसाद ने अपने नाटकों में आंतरिक दुर्बलताओं को भी इतिहास और कल्पना के मणिकांचन योग से प्रकट किया है। यहाँ उदाहरण के तौर पर चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी

नाटक से उदाहरण रखते हुए इस तथ्य की पुष्टि करना उचित होगा। ‘चंद्रगुप्त’ नाटक में भारतीय भूगोल पर बाहरी आक्रमणकारियों के हमले के एवज में भारतीय भूमि की निडरता का उल्लेख किया गया है। यवनआक्रांताओं की चर्चा करते हुए नाटककार ने मालव, मगध के क्षेत्रीय अंतर को पाटते हुए, आर्यावर्त के एकीकरण की भी बात प्रस्तुत नाटक में की है, जो इतिहास के माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत की ओर भी इशारा करती है और फूट डालो और शासन करो की नीति से शोषण को बदस्तूर जारी रखना चाहती थी। प्रसाद ने ‘चंद्रगुप्त’ नाटक में यवनो द्वारा मातृभूमि पर फैलाए जा रहे आतंक की चर्चा के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों की ओर इशारा किया है, जो प्रसाद जी की ऐतिहासिक संवेदनशीलता को ही हमारे सम्मुख लेकर आता है। ‘चंद्रगुप्त’ नाटक में स्वयं प्रसाद जी ने चंद्रगुप्त के मुख से कहलवाया है- “वे हम ही लोगों के युद्ध हैं, जिनमें रणभूमि के पास ही कृषक स्वतंत्रता से हल चलाता है। यवन आतंक फैलाना जानते हैं और उसे अपनी रणनीति का प्रधान अंग मानते हैं। निरीह साधारण प्रजा को लूटना, गांवों को जलाना, उनके भीषण परंतु साधारण कर्म है।”⁶ यहाँ यह सहज रूप में ध्यातव्य है कि नाटक में जिस प्रकार से मौर्यकालीन यवन आक्रांताओं की चर्चा नाटककार ने की है और उसी के माध्यम से प्रसाद अपने समय की अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा किए जा रहे शोषण को भी सामने लेकर आए हैं। डॉ बच्चन सिंह का इस सन्दर्भ में कहना है कि “इस नाटक में युद्ध के दो मोर्चे हैं-विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध मोर्चा और विदेशी संस्कृति के विरुद्ध भारतीय संस्कृति का मोर्चा। पर मोर्चों पर विजय भारतवर्ष की होती है। यवन आक्रांताओं के विरुद्ध चंद्रगुप्त ही नहीं, छोटे छोटे गणराज्य भी है, बुद्धिजीवी हैं, छात्र है, स्त्रियाँ है जनशक्ति है। पूरे नाटक पर महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन की गहरी छाप है। प्रसाद ने इतिहास के पृष्ठों में छिपे हुए उन सभी बिंदुओं को खोज निकाला है जो राष्ट्रीयता, जातीयता, देश की अखंडता को बल देते हैं। इस घड़ी में देश का शौर्य फूट पड़ता है। चाणक्य और दांडायन की सांस्कृतिक गरिमा यवन संस्कृति से भारी पड़ती है। इसमें युद्ध के प्रति उत्तेजना नहीं है पर आवश्यकता पड़ने पर मर मिटने की साध है। इनकी संस्कृति में भौतिकता के प्रति कोई लगाव नहीं है, किंतु आध्यात्मिकता, अपरिग्रह इनकी रग-रग में भरे हुए हैं। लेकिन इतिहास के इतने बड़े कालखंड को समेटने के कारण इनमें अनेक अंतर्विरोध और असंगतियों का समावेश हो गया जिससे इसकी

नाटकीयता क्षतिग्रस्त हो जाती है।”⁷

सजग रचनाकार अपने समय की परिस्थितियों के अनुकूल सामाजिक अपेक्षाओं को सृजनशीलता के दायरे में लेकर आगे बढ़ता है। नाटककार जयशंकर प्रसाद भी अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही अपनी नाट्य रचनाओं में एक ऐसी चेतना एवं सजगता को सृजित करते हैं जो अनुचित यथास्थिति को भेदते हुए लोक कल्याणकारी अपेक्षित व्यवहार को सामने ले आने की पुरजोर अपील करती दिखलाई देती है, फिर चाहे ‘स्कंदगुप्त’ में राजा की उदासीनता को दूर करने का प्रसंग हो या फिर ध्रुवस्वामिनी में अयोग्य शासक पर किया गया व्यंग हो। इतिहास को आधार बनाकर जिस प्रकार से ऐतिहासिक संवेदनशीलता का आयाम प्रसाद जी ने अपने नाटकों में तैयार किया है उसमें ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने वर्तमान और भविष्य को साधने का सफल प्रयत्न किया है। अपनी इतिहास धारणा को जहाँ उन्होंने विशाख नाटक की भूमिका में स्पष्ट किया है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने अपने ऐतिहासिक प्रयोग को लेकर भूत से भविष्य की कड़ी को जोड़ने के क्रम में उसका बयान ध्रुवस्वामिनी नाटक की भूमिका में भी इस प्रकार दिया है- “यह ठीक है कि हमारे आचार और धर्मशास्त्र की व्यावहारिकता की परम्परा विच्छिन्न सी रही है। आगे जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखें या सुने जाते हैं, उन्हें अचिंतित और नवीन समझकर हम उन्हें बहुत शीघ्र अमानवीय कह देते हैं, किंतु मेरा यह विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त ने समाज की दीर्घकालव्यापनी परंपरा में प्रायः प्रत्येक विधान का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं, इसलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक ही था। क्या होना चाहिए और कैसा होगा यह तो धर्मशास्त्री व्यवस्थापक विचार करें, किंतु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका या जिस घटना के घटित होने की संभावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है।”⁸ यहाँ प्रसाद जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इतिहास के आधार पर भविष्य में घटित हो सकने वाली संभावित घटनाओं को वे अनुमानित कर रहे थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के समय वीर सैनिकों और भारतीय मानस में उत्साह का संचार करती यह गीत पंक्तियाँ अपने आप में ऐतिहासिक संवेदनशीलता को भी हस्ताक्षरित करती हैं। विरासत के गौरव से गौरवान्वित करने के साथ- साथ प्रसाद जी ने इस रूप में ऐतिहासिक

संवेदनशीलता को अपने नाटकों में आगे बढ़ाया है

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद ने अपने नाट्य साहित्य में भारतीय इतिहास के माध्यम से अपने समय की विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों को दिशा प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है और राष्ट्रीय प्रश्नों को अपने नाट्य साहित्य में सजगता से उठाते हुए उनका हल प्रस्तुत किया है। अपने ऐतिहासिक कथानक पर आधारित नाटकों में प्रसाद जी ने राष्ट्रीय आंदोलन के यज्ञ में सफल आहुति तो दी ही है, साथ ही भारतीय धरोहर के माध्यम से अपने समय से आगे बढ़कर भविष्योन्मुखी दृष्टि प्रदान की है जिसे हम अपने वर्तमान में बहुत प्रसांगिक पाते हैं। प्रसाद जी ने इतिहास को जीवंत रूप में अपने नाट्य साहित्य में अनुप्राणित करते हुए ही ऐतिहासिक संवेदनशीलता से सामाजिक के मन को गदगद किया है और उसे जीवन के प्रति एक दिशा और दृष्टि प्रदान की है। एक ऐसी दृष्टि जिसमें समन्वय, सार्वभौमिकता एवं सत्य- अहिंसा का गौरव भाव बार- बार झलकता दिखलाई देता है। समस्त आर्यावर्त की संकल्पना हमारे वर्तमान में भी अतीव प्रासंगिक है जिसे प्रसाद जी ने अपने इतिहास और कल्पना के सम्मिलित भाव से ऐतिहासिक संवेदनशीलता के दायरे में नाट्योचित करते हुए सहृदय के मन को छूते हुए बराबर गौरवान्वित और आनंदित किया है।

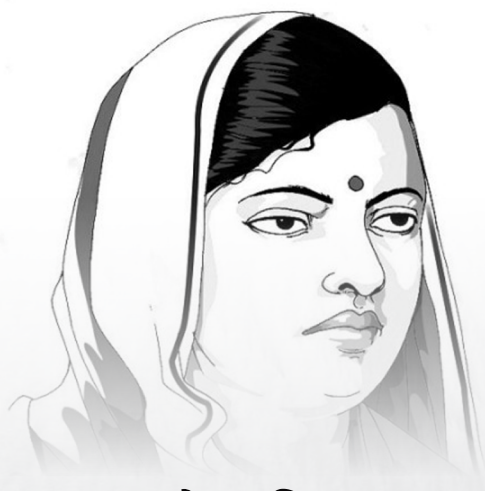
संदर्भ

1. विशाख नाटक की भूमिका
2. प्रसाद के नाटक- युग साक्ष्य, पृष्ठ 85
3. स्कंदगुप्त नाटक, प्रथम अंक
4. भूमिका, ध्रुवस्वामिनी नाटक
5. काव्य और कला, प्रसाद रचना संचयन, पृष्ठ 420
6. चंद्रगुप्त नाटक, द्वितीय अंक
7. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 370
8. भूमिका, ध्रुवस्वामिनी नाटक



असोसिएट प्रोफेसर श्यामलाल कॉलेज सांध्य

amitsinghkhharb1980@gmail.com मो. 8826467205



युगांतर लोकप्रिय सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएं

अनीता उपाध्याय

प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विफलता से भी भारतीय जनता के हृदय से उसके नायकों का संघर्ष और बलिदान धूमिल नहीं हुआ था। अतः इस संग्राम के सेनानी विशेषकर वीरांगना महारानी लक्ष्मी बाई जन हृदय की धरोहर बन चुकी थी। बीसवीं शताब्दी की राष्ट्रीयता ने इन्हें ही अपना आदर्श चुन लिया था। भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में भी इस संग्राम और इसके नायक-नायिकाओं को अपना प्रेरणास्रोत मान लिया था। झांसी की रानी कविता के वैशिष्ट्य में सबसे उल्लेखनीय इसकी लय और इसका ओज गुण है। कविता में केवल राष्ट्रीयता और देश प्रेम के स्वर ही नहीं पूरा का पूरा इतिहास बोलता प्रतीत होता है। व्यापारी बन कर आए अंग्रेजों के बढ़ते प्रताप से लेकर रानी लक्ष्मी बाई के बलिदान तक का पूरा इतिहास इसमें कविता के माध्यम से दर्शाया गया है।

पिछले कुछ वर्षों से युगानुकूलता साहित्य की लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण कारक प्रतीत होती है, विशेषकर वीर रस की कविता। वीर रस की कविता के पात्र, बिंब और देशकाल भले ही अतीत से लिए जा सकते हों परंतु उसका वर्तमान से संगम एवं गहरा संबंध होता है।

अक्सर इस रस की कविता के ओज की आवश्यकता पूर्णतया तत्कालिक होती है। कारण चाहे जो भी हो राज्यश्री होने के कारण राजा की स्तुति से लेकर देश की पराधीनता के विरुद्ध खड़े होने का आवाहन पराधीन वर्तमान के स्वाधीन भविष्य के संघर्ष का आवाहन होता है।

वात्सल्य और श्रृंगार बिना ऐसी किसी ऐतिहासिक आवश्यकता

के भी साहित्य सृजन का कारण बने रह सकते हैं। संभवतः इसलिए वीरता और ओज की कविताएँ काल विशेष में लिखी गई हैं। यह और बात है कि उनकी लोकप्रियता सर्वकालीन बनी रहती है।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य सृजन की प्रतिभा जितनी जन्मजात है, उसकी प्रेरणा उतनी ही समय अनुकूल मानी जाती है। गांधीजी के इस देश के राजनैतिक परिदृश्य में अपनी उपस्थिति बनाने से पहले कांग्रेस का एक अध्याय समाप्त हो चुका था। जब नागपुर के झंडा आंदोलन में जेल जाकर वह भारत की पहली “महिला सत्याग्रही सुभद्रा कुमारी चौहान” इनका नाम स्पष्ट रूप से विद्यमान रहने लगा।

22 सितंबर 1937 ईस्वी को सुभद्रा कुमारी चौहान एम.एल.ए. ने “प्राइम मिनिस्टर द्वारा कांस्टीट्यूट असेंबली, विधान निर्माण समिति का प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने पर अपने भाषण में इसकी स्पष्ट चर्चा की थी। वह कहती हैं --सारा मुल्क और उसकी समस्त जनता राजनैतिक परिदृश्य के जरिए अपना आत्मनिर्भर अधिकार माँग रही है।

भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के विस्तृत ब्योरे में जाए बिना श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के राजनैतिक जीवन का चित्रण थोड़ा असहज कार्य है। सन 1919 ईस्वी में नागपुर के झंडा आंदोलन से, राष्ट्रीय संग्राम से जुड़ी स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय देश सेवा और साधना की प्रतिमूर्ति सुभद्रा कुमारी चौहान अपने जीवन में लेखन और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में एक आदर्श समान उजागर हैं। कलम की प्रतिभा अर्थात् लेखनी और सुदृढ़ नारी की एक प्रमुख मिसाल हैं। आधुनिक युग में जो महत्वपूर्ण नाम सामने आता है उनमें से सुभद्रा कुमारी चौहान एक प्रमुख नाम है। राष्ट्र सेवी, आदर्श नारी, ममतामई मां, अनेकों रूप में सुभद्रा जी को ज्ञात किया जाए यह मेरे छोटा सा प्रयास है। सुभद्रा कुमारी चौहान जी ने

जहाँ पुरुष समाज के बंधनों को अस्वीकार किए पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई में सक्रिय रही हैं, एक अद्भुत उदाहरण है हमारे समाज के लिए, हमारे युवा वर्ग के लिए, प्रत्येक पीढ़ियों के लिए।

सुभद्रा कुमारी चौहान की सबसे प्रसिद्ध रचना जिसमें वह रानी झांसी की वीरगाथा को बता रही हैं, हमारे युग के लिए और आने वाले भविष्य के लिए भी एक अमिट छाप है। सुभद्रा कुमारी चौहान जी की प्रसिद्ध काव्य रचना “झांसी की रानी” के संबंध में “भदंत आनंद कौशल्यायन” ने कहा था कि- मेरी यह अभिलाषा थी कि हाथों में कड़े पहनकर और लकड़ी से उन कड़ों को बजाते हुए, “खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी” गाते हुए मैं गाँव-गाँव वैसे ही ही घूमूँ जैसे, भूमि भूमि वहाँ के लोकगीत नायक अपने गीतों को गाते हुए घूमते हैं। सुभद्रा जी ने यही कविता लिखी होती और कुछ ना लिखा होता, तो भी वह अमर हो जाती।

प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विफलता से भी भारतीय जनता के हृदय से उसके नायकों का संघर्ष और बलिदान धूमिल नहीं हुआ था। अतः इस संग्राम के सेनानी विशेषकर वीरांगना महारानी लक्ष्मी बाई जन्म हृदय की धरोहर बन चुकी थी। बीसवीं शताब्दी की राष्ट्रीयता ने इन्हें ही अपना आदर्श चुन लिया था। भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में भी इस संग्राम और इसके नायक- नायिकाओं को अपना प्रेरणास्रोत मान लिया था। झांसी की रानी कविता के वैशिष्ट्य में सबसे उल्लेखनीय इसकी लय और इसका ओज गुण है। कविता में केवल राष्ट्रीयता और देश प्रेम के स्वर ही नहीं पूरा का पूरा इतिहास बोलता प्रतीत होता है। व्यापारी बन कर आए अंग्रेजों के बढ़ते प्रताप से लेकर रानी लक्ष्मी बाई के बलिदान तक का पूरा इतिहास इसमें कविता के माध्यम से दर्शाया गया है-



“अनुनय विनय नहीं सुनता है विकट फिरंगी की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था, जब वह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नवाबों को भी उसने पैरों ठुकराया”

गुलाम भारत में अंग्रेज एक-एक करके सारी रियासतें, जमीन, जायदाद हड़पने लगे। अपनी अन्याय, और धोखे से दोहरी नीति द्वारा देश को अपने कब्जे में कर रखे थे-

“छिनी राजधानी दिल्ली की, लिया लखनऊ बातों-बात,

कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,

उदैपुर, तंजौर, सितारा, कर्नाटक की कौन बिसात,

जबकि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रपात,

बंगाले, मद्रास, आदि की भी तो वही कहानी थी,

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।”

इसमें रानी लक्ष्मीबाई की संक्षिप्त जीवन यात्रा तो वर्णित है ही, स्वतंत्रता के महायज्ञ में काम आए वीर- नाना धूंधूपंत, तात्या टोपे, अजीमुल्ला, अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुंवर

सिंह, आदि का भी उल्लेख है। भीषण आर्थिक शोषण और परदेसियों के साथ नीलाम होती प्रतिष्ठा ने इस महायज्ञ की ज्वाला सुलगाई -

“कुटिया में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान,
महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
वह स्वतंत्रता की चिंगारी अंतर्मन में आई थी।”

सुभद्रा कुमारी चौहान इस कविता को सामंतों के पूर्ण संघर्ष के

रूप में नहीं, बल्कि इस कविता को पूरे देश की अंतरात्मा से उपजा आंदोलन माँगती है। यह कविता जन-जन के माध्यम से एक लहर की गूँज की शुरुआत मानी जाती है। 4/5 पृष्ठों की इस कविता में विस्तृत इतिहास की प्रेरणा, ओजपूर्ण भावना, देशभक्ति की लहर और कुर्बानी का प्रतीक ज्ञापन है। रानी लक्ष्मी बाई को समर्पित यह कविता पूरे देश की अंतरात्मा से उपजा आंदोलन है।

“झांसी की रानी” लक्ष्मीबाई की वीरता का सामान्य नारियों तक इस प्रकार का श्रेय सुभद्रा जी को ही जाता है। यह लड़ना बदलने के लिए और यह “मर्दानी” शब्द परिवर्तन के लिए और अन्याय के विरुद्ध, कटिबद्ध और सक्षम स्त्री के लिए है, जो इतने भर से कायर या कमजोर नहीं कि वह स्त्री है। यह आरोप लग सकता है कि, है तो यह अंततः मर्दवादी भाषा का प्रयोग ही। अतः उन्हें नया शब्द करना चाहिए था। युद्ध भूमि तरीका स्त्रियों के लिए क्षेत्र बिल्कुल भी नहीं इससे संबद्ध स्त्रीलिंग शब्द का अभाव उन्होंने कविता के अनुसार “मर्दानी” शब्द से पूरा किया है। इसलिए सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा प्रयुक्त यह “मर्दानी” शब्द मर्द का स्त्रीलिंग मात्र नहीं है बल्कि स्त्री की वीरता और जुझारूपन का नतीजा है। हमने अपने समय में महापुरुष के लिए कौन-कौन सी स्त्री शब्द लिया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में स्थाई भाव, विश्वास, सरलता, मधुरता, वीरता, ओजपूर्णता, तेजस्विता इत्यादि तो है ही, इसके अलावा वह आशावादी विचारों को ही व्यक्त करती हैं। निराशा कभी नहीं बताती हुई कहती—“निराशा कभी आती भी है तो छट जाती है। उत्साह, उमंग, उल्लास, आशा, उनकी जीवन प्याली को खाली नहीं होने देती है—

“कहते हैं होती जाती खाली जीवन की प्याली,
पर मैं उसमें पाती हूँ प्रतिपल मदिरा मतवाली,
सुख भरे सुनहरी बादल रहते हैं मुझको घेरे,
विश्वास, प्रेम, साहस है जीवन के साथी मेरे।”

सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रेम से संबंधित कविता है, -“प्रेम श्रृंखला”

प्रेम श्रृंखला

क्या कहते हो आ ना सकोगे, / तुम मेरी कुटिया की ओर ?

किंतु सहज ही तोड़ सकोगे, / कैसे प्रबल प्रेम की डोर ?

मेरे इस पवित्र बंधन में, / मुँह नहीं है, राग नहीं है।

मेरे इस स्नेही भाव में, / है कलुषित अनुराग नहीं।

मेरी इन साध्वी साधु में, / तड़प नहीं है आह नहीं है।

मेरे स्निग्ध मधुर भावों में, / शीतलता है दाह नहीं है।

मेरी अभिलाषाओं में है, / कोमलता, उन्माद नहीं।

मेरी आलोकित आशा में, / आभा है, अवसाद नहीं।

इस उल्लास भरे जीवन में, / तिल-भर हाहाकार नहीं है।

अटूट यह प्रेम-श्रृंखला, / दुर्बल पीड़ित प्यार नहीं।

संदर्भ सूची

1. आचार्य नंदकिशोर, "लेखक की साहित्यकी" वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली—प्रथम संस्करण -2008, पृष्ठ संख्या -137
2. मेहता नरेश, "काव्यात्मकता का आदि-काल, "राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संख्या -1991, पृष्ठ संख्या -19
3. स. जैन निर्मला, निर्माता 'आधुनिक हिंदी समीक्षा, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, संस्करण -1985, पृष्ठ संख्या- 33
4. सुभद्रा कुमारी चौहान, "मुकुल" सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, पंचम संस्करण -1944, पृष्ठ संख्या -23
5. चौहान, सुभद्रा कुमारी, "मुकुल" सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, पंचम संख्या -1944, पृष्ठ संख्या -21
6. डॉक्टर शिवनारायण, "विद्रोहीणी" कवयित्री : सुभद्रा कुमारी चौहान, विशाल पब्लिकेशन, पटना, प्रथम संस्करण -2005, पृष्ठ संख्या -112
7. सुभद्रा कुमारी चौहान, "मुकुल" सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, पंचम संस्करण -1944, पृष्ठ संख्या -21
8. सुभद्रा कुमारी चौहान, "मुकुल" सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, पंचम संस्करण -1944, पृष्ठ संख्या -33
9. सुभद्रा कुमारी चौहान, "मुकुल" सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, प्रथम संस्करण -1944, त पृष्ठ संख्या -23



शिक्षाविद एवं स्वतंत्र लेखिका नोएडा

फ्लैट नं.407, टॉवर जी8, सैक्टर 2, निराला ग्रीन सायर

ग्रेटर नोएडा उ. प्र. मो. +91 81307 67317

जन वेदना को जन चेतना में ढालने वाले संगीतकार: भूपेन हजारिका

अमृता रानी

1985 में कल्पना लाजमी ने 'एक पल' फिल्म निर्देशित की, इसका संगीत भूपेन दा ने तैयार किया लता जी के दो गाने 'चुपके-चुपके हम पलकों में कितनी सदियों से रहते हैं' और 'जाने क्या है जी डरता है' बड़े खूबसूरत बने और काफी चर्चित हुए। कल्पना लाजमी अपनी पुस्तक में लिखती हैं कि भूपेन उन्हें लोगों से अपनी बिजनेस मैनेजर तो कभी सेक्रेटरी बनाकर मिलवाते थे। धीरे-धीरे कल्पना लाजमी और भूपेन के बीच रिश्ता बनता चला गया और असमिया समाज में भूपेन की कला का सम्मान करना शुरू किया तो उनके रिश्ते पर भी एक प्रकार से स्वीकृति की एक मोहर लग गई। समाज ने माना कि, भूपेन की रचनात्मकता के पीछे कल्पना जी का भी हाथ है। भूपेन दा की सबसे ज्यादा चर्चित फिल्म 1994 में बनी 'रूदाली' ही थी।

एक विलक्षण बालक जो मात्र 10 वर्ष की अल्पायु में गीत और कविताएँ लिखता है, उन्हें गाता है और अपनी इस प्रतिभा के बल पर सबका चहेता बन जाता है, बड़ा होकर वह बालक गीत, संगीत और फिल्म की दुनिया में धूम मचाकर भूपेन हजारिका के रूप में विश्व विख्यात होता है और अपनी विलक्षण मेधा से भारत रत्न की उपाधि से अलंकृत होता है।

8 सितम्बर, 1926 को असम के तिनसुकिया जिले के सादिया नामक स्थान पर श्रीमती शान्तिप्रिया और नीलकान्त के घर पर बहुमुखी प्रतिभा के धनी बालक भूपेन का जन्म हुआ। भूपेन हजारिका जी अपने 10 भाई बहनों में सबसे बड़े थे। माँ की लोरी और कामकाज करते समय

भजन आदि गुनगुनाने के लगाव ने बालक भूपेन को भी संगीत के प्रति संस्कारित किया।

सुमधुर कण्ठ और गीत रचना करने की रुचि के चलते आस-पास के क्षेत्र में लोकप्रियता प्राप्त भूपेन जी की आवाज़ फिल्म निर्माता ज्योति प्रसाद अग्रवाल के कानों तक पहुँची तो उन्होंने बालक भूपेन को अपने असमिया चलचित्र 'इन्द्रमालती' के लिए साइन कर लिया। इस असमिया चलचित्र 'इन्द्रमालती' में भूपेन हजारिका ने 'एक शहरी लड़के' की भूमिका को जीवंत किया।

भूपेन हजारिका की शिक्षा-

मात्र 13 वर्ष की अल्पायु में तेजपुर के विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात् 1942 में गुवाहाटी के कॉटन महाविद्यालय से इंटरमीडिएट करने के पश्चात् 1946 में बनारस विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर ली। बाल्यकाल का संगीत का शौक समय के साथ परिपक्व होता गया और भूपेन जी ने पढ़ाई के साथ-साथ हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा भी ग्रहण कर ली।

स्नातकोत्तर होने के साथ ही इन्होंने गुवाहाटी में ऑल इण्डिया रेडियो में गाना प्रारम्भ कर दिया। इस कड़ी में उन्होंने बंगाली गीतों को हिंदी में अनुदित करके गाना प्रारम्भ कर दिया। इन्हें हिंदी, अंग्रेजी, असमिया, बंगला आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था जो इनके संगीत के क्षेत्र में आगे बढ़ने में अत्यंत सहायक बना। इस सबके साथ ये मंचों पर भी प्रस्तुतियाँ देने लगे। स्नातकोत्तर होने के पश्चात् इन्होंने आकाशवाणी में नौकरी शुरू कर दी और वहाँ से स्कॉलरशिप पाकर मास कम्युनिकेशन विषय में उच्चशिक्षा के लिए अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय

चले गए। यह निर्णय इनके जीवन का अहम निर्णायक मोड़ था। वहाँ फिल्मों के बारे में अध्ययन करते हुए इनकी मुलाकात फिल्म निर्माता रॉबर्ट स्टेस और रॉबर्ट जेसिफ फ्लैहर्टी से हुई और इन्हें फिल्मों के बारे में बहुत कुछ सीखने को मिला। इसी बीच इन्हें शिकागो विश्वविद्यालय से भी फैलोशिप मिलनी प्रारम्भ हुई जिसके अंतर्गत इन्होंने लोक संगीत का भी अध्ययन जारी रखा।

लोक संगीत के अध्ययन के दौरान ही इन्हें 'पाल राबसन' के गीत 'ओ मेन मिसिसिपी' ने इतना प्रभावित किया कि इस गीत से प्रेरित होकर भूपेन हजारिका जी ने भी लोक धुनों पर 'ओ गंगा तुमी बुइछे किनो' नामक गीत की रचना की। यही गीत भूपेन दा की अमर रचना और पहचान बना।

भूपेन हजारिका का व्यक्तित्व-

भूपेन हजारिका का व्यक्तित्व और कृतित्व आपस में इतना गुंथा हुआ है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक बन गए हैं। एक सम्पूर्ण कलाकार के गुण और रूप दोनों ही उनके अंदर समाहित नजर आते हैं। उनका भव्य व्यक्तित्व, परिधान चयन, चेहरे पर मुस्कान और मदमस्त सी आँखें उन्हें अलग ही पहचान देती है।

स्वयं को एक 'यायावर' मानने वाले भूपेन दा असम के बिहू, वन्य लोक संगीत और बागानों में मजदूरों द्वारा गाए जाने वाली लोक धुनों को अपने सुमधुर कण्ठ और सृजन से लोकप्रिय बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहे। बहुआयामी प्रतिभा के धनी भूपेन हजारिका को केवल एक संगीतकार, महत्वपूर्ण फिल्मकार मान कर ही नहीं आँका जा सकता। वे एक अच्छे संगीतकार, गीतकार, फिल्म निर्माता, निर्देशक, प्राध्यापक, लेखक होने के साथ अच्छे इंसान और श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने दर्जनों फिल्मों में संगीत दिया, गीत लिखे, उन्हें स्वयं गाया भी। उनके गीतों में यौवन का आनन्द, जीने की प्रेरणा, आशावादी दृष्टिकोण, हर्ष, भक्तिभाव तथा पीड़ितों के प्रति शोक-संवेदनाएँ आदि विविध पक्ष हैं।

भूपेन हजारिका का फिल्मी सफर-

डॉ० हजारिका लोकगीत, लोकसंगीत, आधुनिक गीत और फिल्मी गीत आदि सभी क्षेत्रों में पारंगत प्रतीत होते हैं। 1956 में उन्होंने असमिया फिल्म 'ऐसा बतार सुर', का निर्देशन किया, 1960 में 'शकुंतला', 1964 में 'प्रतिध्वनि', 1985 में 'चमेली मेम साहब',

1986 में 'स्वीकारोक्ति' और 1988 में 'सिराज' सहित अनेक गीत लिखे और अपने सुमधुर कंठ से अनेक गीतों का पार्वगायन किया।

शकुंतला, प्रतिध्वनि, लोटी-घोटी के लिए उन्हें पुरस्कृत भी किया गया। 'गंगा आमार माँ' (गंगा मेरी माँ) गीत की रचना 1971 में बांग्लादेश की आजादी के समय की थी।

1967-72 तक असम विधान सभा में निर्दलीय विधायक चुने जाने पर उन्होंने बंदूक अर्थात् गन की जगह गान यानि गीत के माध्यम से जन जागरण का आवहान किया। हिन्दी फिल्मों से उनका गहरा रिश्ता था। उन्हें 1986 में 'एक पल' नामक हिन्दी फिल्म से ही संगीतकार के रूप में पहचान मिली। जैसा की पूर्व में बताया गया कि वे न एक सिर्फ फिल्मकार, गीतकार, संगीतकार ही थे अपितु साहित्य में भी उनकी गहरी रुचि रही, उन्होंने असमी साहित्य पत्रिका 'प्रतिनिधि' का संपादन भी किया। असमिया भाषा के प्रति उनके हृदय में विशेष स्थान था। असमिया भाषा में हैय्या न हैय्या न गाते हुए उनके गीत के बोलों में पहाड़ी चढ़ते, पालकी उठाने वाले कहारों, फूलती सांसों की सुरमयी धोंकनी का टीस भरा स्वर सुनाई देता है। उत्तर पूर्व राज्यों की हरियाली और वहाँ की मिट्टी की खुशबू उनके हृदय से होती हुई उनके कंठ से बहती नजर आती है।

भूपेन दा की संगीत यात्रा

संगीत के माधुर्य को समृद्ध रखने वाले भूपेन दा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को पूर्णतः वैज्ञानिक और प्रकृति की आवाज़ मानते हैं। इसके बावजूद भूपेन दा स्वयं को फ़्यूजन से भी जुड़ा पाते हैं। भूपेन दा का मानना था कि फ़्यूजन दो अलग-अलग धाराओं का संबंध है। उनके अनुसार संगीतकार अपने सुरों से शब्दों को एक चित्रकार की तरह आकार देते हैं।

उनके द्वारा संगीतबद्ध रचनाओं में प्रकृति के संगीत का बखूबी प्रयोग किया गया है। रेगिस्तान में चलती तेज हवा की, बारिश की बूंदों की रिमझिम, ऊटों के गले में बंधी घण्टी की आवाज़ उनके द्वारा दिए गए संगीत में वाद्यों की तरह प्रयुक्त हुई है।

भूपेन दा के अनुसार सच्चा संगीत वह है जो हृदय को छू जाता है। किसी भी फिल्म की सफलता में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा संगीतबद्ध रूदाली, फिल्म को एशियन पसिफिक फिल्म फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ संगीतकार का सम्मान मिलना इसका उदाहरण है।

भूपेन हजारिका को लोकप्रिय बनाने में जिस प्रांतीय संगीत एवं गीतों ने अहम योगदान दिया वह थीं 'जिबोन मुखी गान' नामक लोक शैली। रोजमर्रा की घटनाओं को संगीत में ढालना इस विधा की खासियत है। सुमंत चट्टोपाध्याय इस विधा के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं और भूपेन इसे आगे ले जाने वाले।

हिंदी फिल्मों में उनका सफर 1974 में आई फिल्म 'आरोप' से शुरू होता है। इसी फिल्म के सेट पर उनकी मुलाकात पहली बार कल्पना लाजमी से हुई। इस फिल्म के गीत मध्यम दर्जे की लोकप्रियता पा सके और एक गीत 'नैनो में दर्पण है, दर्पण में है कोई, देखूँ जिसे सुबहो शाम' काफी लोकप्रिय रहा।

इस गाने में किशोर दा के साथ लता मंगेशकर जी थी। जब भूपेन दा पहली बार लता जी से मिले तो कहा आपका नाम बहुत बड़ा है। इस पर लता जी बड़ी विनम्रता से बोली इतना भी नहीं जितना आप मानते हैं। लता जी का किसी संगीतकार की पहली ही फिल्म में गा देना यह भी बताता है कि बुद्धिजीवी भूपेन जी के संगीत का दायरा कितना बड़ा था, और कितना बड़ा उनका व्यक्तित्व है। वैसे लता जी को खुद अपना गाया हुआ असमिया भाषा का सबसे पसंदीदा गीत भी भूपेन का ही बनाया गीत 'जोना कोरे रति, आँखों मीरे माटी' हैं। लता जी के गाए हुए दो गीत 'चुपके चुपके हम पलकों में कितनी सदियों में रहते हैं' और 'जाने क्या है जी डरता है' बड़े खूबसूरत गीत हैं।

गुलजार ने भूपेन दा के गीतों का अनुवाद किया है, उसमें हैय्या न हैय्या न भी है। 'जिन्दगी कहार की चढ़ते पहाड़ की उठाते हैं डोला' इस गीत को सुनकर गुलजार साहब बेहद प्रभावित हुए।

1972 में जब नेफा का नाम अरुणाचल प्रदेश रखा गया तब सरकार ने 1976 में एक फिल्म बनाई 'मेरा धर्म मेरा देश' जिसका भार भूपेन हजारिका जी को सौंपा गया। संगीत के साथ इस फिल्म का निर्देशन भी भूपेन दा ने किया।

हजारिका जी के वे चुनिंदा गीत जिन्होंने उन्हें एक महान गीतकार बनाया। उनकी सूची निम्न प्रकार से है-

गीत	फिल्म/Album
ओ गंगा तुम बहती हो क्यों	भजन
दिल हुम हुम करे	रूदाली
आमी एक जोजोबार	Album-Alltime Great
हे डोला हे डोला	Album

समय ओ धीरे चलो	रूदाली
दुनिया पराई लोग यहां बेगाने	दरमियाँ
शाम ढली वन में	मिल गई मंजिल मुझे
फूले दाना दाना	एक पल
एक कली दो पत्तियाँ	मैं और मेरा साया
ये कैसी सदा है	मैं और मेरा साया

भूपेन दा का निधन-

1985 में कल्पना लाजमी ने 'एक पल' फिल्म निर्देशित की, इसका संगीत भूपेन दा ने तैयार किया। लता जी के दो गाने 'चुपके-चुपके हम पलकों में कितनी सदियों से रहते हैं' और 'जाने क्या है जी डरता है' बड़े खूबसूरत बने और काफी चर्चित हुए। कल्पना लाजमी अपनी पुस्तक में लिखती हैं कि भूपेन उन्हें लोगों से कभी अपनी बिजनेस मैनेजर कभी सेक्रेटरी बनाकर मिलवाते थे। धीरे-धीरे कल्पना लाजमी और भूपेन के बीच रिश्ता बनता चला गया और असमिया समाज में भूपेन की कला का सम्मान करना शुरू किया तो उनके रिश्ते पर भी एक प्रकार से स्वीकृति की एक मोहर लग गई। समाज ने माना कि, भूपेन की रचनात्मकता के पीछे कल्पना जी का भी हाथ है। भूपेन दा की सबसे ज्यादा चर्चित फिल्म 1994 में बनी 'रूदाली' ही थी। इसमें लगभग सभी गीत प्रसिद्ध हुए 'दिल हूम-हूम करे' और उसकी असमिया गीत 'बूकू हूम-हूम करे' का हिंदी रूपांतरण ही था जिसमें बोल गुलजार साहब ने लिखे थे।

भूपेन दा को सांस लेने में परेशानी के कारण अस्पताल में भर्ती होना पड़ा, कोकिलाबेन धीरूभाई अंबानी अस्पताल में 4 महीने उन्होंने में ICU में बिताए जहाँ उनकी हालत नाजुक बनी रही, जहाँ वे अत्यंत कमजोर हो गए थे। वह जीवन रक्षक उपकरणों पर जीवित थे। अंततः निमोनिया के कारण उनके अंगों ने काम करना बंद कर दिया और एक प्रतिभाशाली कलाकार फिल्मी दुनिया का बहुमुखी सितारा, प्रतिभा का धनी संगीतकार, फिल्मकार, गीतकार अंततः इस संसार से विदा हो गया।

सम्मान

हजारिका जी देश के मशहूर संगीतकार, कवि, गायक, अभिनेता, पत्रकार, लेखक और फिल्म निर्माता थे। उन्हें देश के कई प्रसिद्ध सम्मानों से पुरस्कृत किया गया।

- 1975 में सर्वोत्कृष्ट क्षेत्रीय फिल्मों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार

- 1992 में सिनेमा जगत के सर्वोच्च पुरस्कार दादा साहब फाल्के सम्मान से सम्मानित किया।
- 2009 में असम रत्न और संगीत नाटक अकादमी अवार्ड।
- 2011 में पद्मभूषण पुरस्कार से अलंकृत हुए।
- 2019 में इन्हें देश का सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न प्रदान किया गया।
- भारतीय गणतंत्र का यह सर्वोच्च सम्मान 8 अगस्त, 2019 को राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी के हाथों इनके पुत्र श्री तेज हजारिका ने ग्रहण किया।

भारत रत्न डॉ॰ भूपेन हजारिका के जीवन के खट्टे मीठे पल-

संगीत नाटक अकादमी के पूर्व अध्यक्ष और दादा साहब फाल्के पुरस्कार से विभूषित महान संगीतज्ञ के जीवन में ऐसे-ऐसे संघर्ष के पल भी आए जब उन्हें अपनी श्रेष्ठ उपलब्धियों से अर्जित स्वर्ण पदक भी मात्र चंद रुपयों में बेचने पड़े।

एक साक्षात्कार जो जनवरी 2003 के हिन्दुस्तान समाचार पत्र में छपा है जिसमें डॉ॰ हजारिका ने अपने इन संघर्ष के पलों को याद करते हुए बताया है कि यह सोने के पदक मेरे लिए ज्यादा महत्व नहीं रखते थे और मैं इन्हें बेचकर कुल 42 रुपए पाता था। मुझे याद नहीं कि मैंने कितने पदक जीते लेकिन मैं मानता हूँ कि उनमें से कई पदक खो गए या फिर बिक गए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. नवकांत शर्मा, संगीत-साहित्य के महाप्राण हजारिका का महाप्रयाण विशेष आलेख, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
2. शर्मा, शैलनजीत (सं) डॉ. भूपेन हजारिका के गीत और कविता की विश्लेषणात्मक आलोचना, गुवाहाटी, चन्द्रप्रकाशन, 2012
3. जनसत्ता, दिल्ली, 14 अप्रैल 1993, सुरेश सलिल
4. डॉ. नवकांत शर्मा, संगीत-साहित्य के महाप्राण हजारिका का महाप्रयाण विशेष आलेख, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
5. जनसत्ता, दिल्ली, 21 अप्रैल 1993, रविकांत नीरज/हरभजन
6. जनसत्ता, दिल्ली, 23 अप्रैल 1993, संजय सिन्हा
7. जनसत्ता, दिल्ली, 8 मार्च, प्रभाकर मणि तिवारी
8. उर्मिला भगत, पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग कॉटन विश्वविद्यालय, असम
9. जनसत्ता, 23 अप्रैल 1993, संजय सिन्हा
10. दिनकर, कुमार, उषा पब्लिकेशन, गद्य कोश

सार संक्षेप

सुप्रसिद्ध संगीतकार पंकज राग के शब्दों में कहे तो-भूपेन दा का साहित्यिक रूप उनके संगीत में इतनी खूबसूरती से आया कि ये केवल पूर्वांचल की लोक संस्कृति से प्रेरित गीत ही नहीं बल्कि आधुनिक संवेदना से साक्षात्कार करने वाले गीतों को भी बड़े सुरुचिपूर्ण तरीके से हिन्दी में अनुवाद करते थे। सरल शब्दों में कहा जाए तो वे असम के चाय बागानों की खुशबू, अरूणाचल में सबसे पहले उगने वाले सूरज की किरणों का तेज और वहाँ की वादियों की हरियाली को हिन्दी संगीत ही नहीं पूरे भारत में फैलाने वाले शख्स थे।

संगीत के प्रति भूपेन दा की अद्भुत लगन-नायाब समर्पण ने उन्हें संगीत का सरताज बना दिया। माँ की लोरी के माध्यम से संगीत का सूत्र पकड़ते बालक भूपेन अपनी विलक्षण प्रतिभा, लेखन शैली, प्रकृति प्रेम, भाषा अनुराग की सीढ़ी पर चढ़ कर न सिर्फ पूर्वोत्तर की संस्कृति को विश्वपटल पर लाये अपितु अपनी लोक संस्कृति, लोक संगीत, लोक गायन शैली की सुरभि से पूरे संगीत जगत को महका दिया।

असम के लोक संगीत के माध्यम से हिन्दी फिल्मों में जादुई असर पैदा करने वाले ब्रह्मपुत्र के कवि भूपेन हजारिका ने 'दिल हुम हुम करे' और 'गंगा बहती हो' में अपने सुमधुर कंठ से लाखों लोगों को अपना प्रशंसक बना लिया।

भूपेन हजारिका जी बहुआयामी प्रतिभा के कलाकार थे। भूपेन दा को श्रेष्ठ संगीतकार, महत्वपूर्ण फिल्मकार कह कर ही उनके व्यक्तित्व को आँका नहीं जा सकता। वे न केवल एक अच्छे संगीतकार, गीतकार, फिल्म निर्देशक थे बल्कि निर्माता, प्राध्यापक, लेखक और अन्य कई प्रतिभाओं के धनी थे। उन्होंने दर्जनों फिल्मों में संगीत दिया, गीत लिखे और उन्हें गाया भी। भूपेन दा के गीतों की रचनाओं में यौवन का आनंद, शोक-संवेदनाएँ, दुख-हर्ष, भक्ति, जीने की प्रेरणा, आशावादी दृष्टिकोण और अन्य पक्ष भी शामिल हुए हैं।



पीएच.डी. शोधार्थी
संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. 9968421236

मेरे आर्मी जीवन की डायरी

अल्का पंत

वर्ष 1985 से वर्ष 1995

आर्मी लाइफ और चुनौती शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं। जब अनु पहली बार मुझे अकेले छोड़कर एक्सरसाइज के लिए गए तो मैं बहुत डर गई थी। अब तक के अपने जीवन में, मैं कभी अकेली नहीं रही थी। मैं एक बड़े परिवार से संबंध रखती थी। घर में हर समय एक धमा-चौकड़ी सी मची रहती थी। चूँकि आर्मी हमेशा कैट में एक साथ रहती है, यहाँ पर इनकी अपनी एक व्यवस्था होती है। आस-पास सभी आर्मी ऑफिसर के परिवार थे। उन परिवारों में सीनियर ऑफिसर के परिवार भी होते थे। मुझे जब भी कोई आवश्यकता होती, मैं उनके पास चली जाती थी।

कभी एक्सरसाइज, कभी फील्ड पोस्टिंग, या फिर कभी किसी कोर्स के लिए इनका दूर जाना... इस सिलसिले की आदत धीरे-धीरे पड़ने लगी। पति से मिलन और विछोह चलता रहता। यह भी समझ में आने लगा था कि घर की जिम्मेदारी ज्यादातर मुझे अकेले ही देखनी है। आर्मी ऑफिसर के लिए घर बाद में आता है। उनकी प्रथम प्राथमिकता देश है।

आज डायरी में दर्ज अपने उन पलों को फिर से जीना चाहती हूँ। आर्मी कैटोनमेंट में बिताए उन 29 सालों को जिनकी लिखावट मेरे पूरे व्यक्तित्व पर है, फिर से महसूस करना चाहती हूँ। शहर की गहमा-गहमी से दूर चारों ओर हरियाली से घिरे शांत वातावरण में समाई हवा की ताज़गी और महक को एक बार फिर से जीने का मन है।

लिखने बैठो तो बहुत कुछ है, या ऐसे कहूँ कि अनंत है फिर भी कोशिश करती हूँ, उन्हें चंद पन्नों में समटने की। यह तभी संभव हो सकता है जब मैं आर्मी में बिताए अपने जीवन को तीन दशकों में बाँध सकूँ।

वह जनवरी माह की ठिठुरती सर्दी का दिन था जब मेरे ससुराल वाले पहली बार मुझे देखने आये थे। जब वे वापस जाने लगे तो मेरी सासजी ने मेरे पास आकर पूछा: "तुम्हें इंग्लिश बोलनी आती है? मेरा बेटा आर्मी ऑफिसर है। वहाँ ज्यादातर अंग्रेजी में बात होती है।"

मुझे बात थोड़ी अजीब सी लगी थी, क्योंकि देहरादून में मेरे चारों तरफ सभी लोग हिन्दी में ही बात करते थे। मुझे उस वक्त लगता था कि सारा हिन्दुस्तान हिन्दी में बात करता है।

खैर, विवाह के प्रथम दशक 1985 से 1995 तक ने मुझे बहुत कुछ सिखाया, बहुत कुछ दिखाया। दिनांक 22 फरवरी 1985 को मैं आर्मी ऑफिसर कैप्टन अनसूया प्रसाद पन्त से विवाह सूत्र में बँधी। हालाँकि मुझे पहले से ही पता था कि आर्मी लाइफ दिलचस्प होने के साथ चुनौतियों से भरी होती है, मगर जब एक सैनिक की पत्नी बनी तो आर्मी के बारे में और भी बहुत कुछ जानने को मिला। पति की पोस्टिंग उस समय जम्मू में थी। मैं, नई-नवेली दुल्हन अनसू के साथ जम्मू के लिए खाना हुआ। देहरादून से सहारनपुर, फिर सहारनपुर से सीधे जम्मू के लिए रेलगाड़ी से यात्रा करने के पश्चात, हम सुबह आठ बजे जम्मू के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। आर्मी की जिंदगी क्या होती है, इसका चेहरा स्टेशन पर उतरते ही दिखने लगा। आर्मी की वर्दी पहने कैप्टन गुप्ता जो कि मेरे पति से सीनियर थे और दूसरे लेफ्टिनेंट पाटिल हमें रिसेव करने स्टेशन पर आये हुए थे। जिस गर्मजोशी से उन्होंने हमारा स्वागत किया, उसकी छवि आज भी मेरी आँखों के आगे जब-तब उभर आती है। स्टेशन के बाहर फियट कार जिस पर 'जस्ट मैरिड' का टैग चिपका हुआ था, हमारा इन्तजार कर रही थी। मेरी उम्र उस समय 20 वर्ष की और मेरे पति की 26 वर्ष। एम.एससी. (मैथ्स) करते-करते ही मेरी शादी हो

गई थी। अचानक से दोनों जवानों ने मेरे पति को आदेश दिया कि 'तुम आगे की सीट पर बैठो, हम मैम के साथ पीछे की सीट में बैठेंगे।' मुझे उन दो भद्र पुरुषों के बीच में बैठने पर गहरा संकोच हो रहा था। यह भी नहीं पता था कि अभी रैगिंग भी होनी है। आज जब उन पत्नों को याद करती हूँ तो बरबस हँसी छूट जाती है। बैचलरस् ने भी खूब तंग किया। हम अभी गेस्ट हाउस में थोड़ा व्यवस्थित होकर सोये ही थे कि अचानक बाहर से दरवाजे पर पत्थर मारने की आवाज से हम दोनों हड़बड़ा कर उठ गए। दरवाजा खोला तो देखा आठ-दस कुँवारे आर्मी ऑफिसर्स का समूह खड़ा है। दरवाजा खोलते ही वे अंदर आकर हमें टीज करने लगे, मीठी छेड़खानी करने लगे। मैं हँस भी रही थी और घबरा भी रही थी। खैर हमें छेड़छाड़ कर, थोड़ा परेशान कर, 'हैव ए हैप्पी मैरिड लाइफ' की शुभकामनाएँ देकर वे चले गए। यह आर्मी की जिंदगी का एक दस्तूर है। एक पत्नी के रूप में आए नये सदस्य को आर्मी की जिंदगी के लिए तैयार करने के लिए। 'इन्हें' यूनिट में सभी लोग अनु बोलते थे, उनकी देखादेखी मैं भी अपने पति को 'अनु' पुकारने लगी।

आर्मी लाइफ का नया सफर शुरू हो चुका था। कई शब्द जैसे कैंट, मिसेज पंत, मैस, कैंटीन, सहायक, बाशा एकोमेडेशन, कैप्टन और मेजर एकोमेडेशन, एमईएस, आदि मेरे नये जीवन में जुड़ते चले गये। यह सारे शब्द मेरे प्रतिदिन जिंदगी के हिस्से बनते जा रहे थे। बड़ा खाना पार्टी, डाइनिंग इन, डाइनिंग आउट, फैमिली वेलफियर, लेडीज मीट, आर्मी पार्टी जैसे कार्यक्रम जीवन में रस भर रहे थे। सभी धार्मिक पर्व और त्योहार यूनिट में बड़े उत्साह-उमंग के साथ मनाये जाते थे। नदीनुमा कैनाल के किनारे जम्मू कैंट इलाका शांत, सुंदर, हरियाली से हरा-भरा था।

कैनाल का पानी हर मौसम में बहुत ठंडा रहता था। लोग कोल्डड्रिंक की बोटलें ठंडा करने के लिए कैनाल में डुबो देते थे। हमारी डाइनिंग पार्टी जम्मू के बागे-ए-बहु गार्डन में हुई थी, जोकि मैसूर के वृंदावन गार्डन की तरह ही बन रहा था। आज भी उस पार्टी की याद करके मन खुश हो जाता है। पहली बार जीवन में अलग-अलग राज्यों के लोगों से मिली। धीरे-धीरे सभी ऑफिसर्स और परिवार से परिचय होने लगा। आर्मी लाइफ में पत्नियाँ भी अहम भूमिका निभाती हैं। जो भी गतिविधियाँ यूनिट में चलती हैं, वे अपने पतियों के साथ शामिल होती हैं। बिजी लाइफ ! कभी गेम्स, कभी फॅमिली वेलफेयर, कभी रेजीमेंटल प्रोग्राम। जैसा कि मेरी सास जी ने कहा था कि आर्मी में अंग्रेजी का

बोलबाला रहता है, वैसा ही मैं पा रही थी। परन्तु स्टाफ का कोई भी व्यक्ति भारत के चाहे किसी भी प्रांत से हो, हिन्दी बोलने में सक्षम था। और, मेरी अच्छी हिन्दी को हर किसी ने सराहा।

आर्मी लाइफ और चुनौती शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं। जब अनु पहली बार मुझे अकेले छोड़कर एक्सरसाइज के लिए गए तो मैं बहुत डर गई थी। अब तक के अपने जीवन में, मैं कभी अकेली नहीं रही थी। मैं एक बड़े परिवार से संबंध रखती थी। घर में हर समय एक धमा-चौकड़ी सी मची रहती थी। चूँकि आर्मी हमेशा कैंट में एक साथ रहती है, यहाँ पर इनकी अपनी एक व्यवस्था होती है। आस-पास सभी आर्मी ऑफिसर के परिवार थे। उन परिवारों में सीनियर ऑफिसर के परिवार भी होते थे। मुझे जब भी कोई आवश्यकता होती, मैं उनके पास चली जाती थी।

कभी एक्सरसाइज, कभी फील्ड पोस्टिंग, या फिर कभी किसी कोर्स के लिए इनका दूर जाना... इस सिलसिले की आदत धीरे-धीरे पड़ने लगी। पति से मिलन और विछोह चलता रहता। यह भी समझ में आने लगा था कि घर की जिम्मेदारी ज्यादातर मुझे अकेले ही देखनी है। आर्मी ऑफिसर के लिए घर बाद में आता है। उनकी प्रथम प्राथमिकता देश है।

इसी बीच मैं दो प्यारे बच्चों की माँ बन गई। 1986 में बेटा राहुल और 1989 में बेटा रिधिमा का जन्म हुआ। रिधिमा के जन्म के समय कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। मैं जीवन में कभी भी अनु की जालंधर की पोस्टिंग भूल नहीं सकती। हम जालन्धर में थे। फरवरी 1989 में अनु को यूनिट की तरफ से एडवांस पार्टी में इंडियन पीस कीपिंग फोर्स (IPKF) के लिए श्रीलंका जाना पड़ा। मन बहुत घबरा रहा था। मैं अकेली, उम्र 25 साल, ढाई साल का बेटा और मैं प्रेगनेंट, छह माह का गर्भ पेट में। जब अनसू श्रीलंका के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो घर का वातावरण बहुत ही गंभीर बन गया। आस-पड़ोस की आर्मी ऑफिसर्स की पत्नियाँ मेरा मनोबल बढ़ाने के लिए मेरे पास आईं, बोलीं, 'मिसेज पन्त, आप फ़िक्र न करें। हम हैं न यहाँ। मुझे उनसे भावनात्मक सहारा अवश्य मिला, मगर दिल दहल रहा था। उस समय श्रीलंका जाने का मतलब था मौत के मुँह में जाना। देश के प्रति अपने कर्तव्य के आगे कोई सैनिक अपनी व्यक्तिगत समस्या को नहीं रख सकता। मेरे गर्भवती होने की वजह से पति भी मुझसे दूर नहीं जाना चाहते थे, किन्तु देश पहले, परिवार बाद में। डॉक्टर ने मुझे यात्रा करने से मना कर दिया था। अतः मैं देहरादून भी नहीं जा सकती थी। उस समय

फोन की सुविधा बहुत सीमित हुआ करती थी, अतः मायके-ससुराल दोनों जगह पत्र द्वारा सूचना भेजनी पड़ी। 1984 में अमृतसर में हुए ऑपरेशन ब्लू स्टार से पूरे पंजाब में उन दिनों एक दहशत बनी हुई थी।

अभी अनु को श्रीलंका गए एक-दो दिन ही हुए थे, मैं शाम को टहलने के लिए निकली थी, शॉल से अपने को अच्छे से पूरा ढका हुआ था। मैं घर से थोड़ी दूर ही पहुँची थी कि अचानक किसी ने पीछे से मेरे गले पर झपट्टा मारा। मैं लड़खड़ा कर गिर गई। देखा, एक आदमी कंबल लपेटे साइकिल में सवार तेजी से पैडल मारते हुए भाग रहा था। मेरा शॉल, कुर्ते का गला उसके वार से फट गया था। मैं घबरा कर 'हेल्प... हेल्प...' चिल्लाने लगी। सड़क के बगल में मेजर एकोमेडेशन थी। मैंने सहायता के लिए नीचे वाले फ्लैट की घंटी बजाई। ऑफिसर की पत्नी ने घर की बंद जाली के दरवाजे से मुझे निहारा, और कहा... 'मैं नहीं जानती कि आप कौन है?' उस समय ऑपरेशन ब्लू स्टार एक्शन के कारण माहौल में डर और अविश्वास सब जगह पसरा हुआ था। मैं जोर से चिल्लाई... 'आपको दिख नहीं रहा है कि मैं प्रेगनेंट हूँ। किसी ने मेरे पर झपट्टा मारा है।' मैं रुआँसी हो गई। उस भद्र महिला ने अपने घर का द्वार मेरे लिए खोला। मैंने अपना बिगड़ा हुलिया ठीक किया तो शॉल में अटकी मेरी सोने की टूटी चैन नीचे गिरी। पता चला वह चैन स्नैचर था। मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि हम कैट में भी सुरक्षित नहीं हैं। सोने की आधी जंजीर वह चोर ले जा चुका था।

हम अनु से सीधे सम्पर्क नहीं कर सकते थे। जो कुछ सम्पर्क होता यूनिट के माध्यम से। श्रीलंका से कोई न कोई जवान यूनिट में आता रहता था, इसलिए अनु और बटालियन की कुशलता की खबर मिलती रहती थी। जब भी कोई सूचना देने आता, आर्मी जीप की आवाज जैसे ही मेरे कानों में पड़ती, मैं अपने बेडरूम की खिड़की से बाहर झाँक कर पहले उन जवानों के चेहरे के भाव पढ़ती कि क्या खबर होगी। अच्छी कि खराब ! बड़े दहशत भरे दिन थे। मैं अखबारों में पढ़ रही थी, खबरों में सुन रही थी कि श्रीलंका के लिट्टे गुरिल्ले कम नहीं हैं। भारतीय शांति सेना जाफना को लिट्टे के कब्जे से मुक्त कराने के लिए 'ऑपरेशन पवन' के तहत उनसे काफी संघर्ष कर रही हैं। खैर, पन्द्रह दिनों के बाद जब मेरी माँ देहरादून से मेरे पास जालंधर पहुँची तो मैं कस कर माँ से लिपट गई।

आर्मी की यह बड़ी कृपा रही कि मेरे प्रसव के समय अनु को दो महीने की एनुअल लीव मिल गई। हम सभी खुशी से उछल गए। मुझे इस बात का बेहद सुकून था कि मेरे प्रसव के समय अनु मेरे पास हैं। मेरी

खुशी का कोई पारावार नहीं था। प्रसव के तुरंत बाद 15 दिन की बेटी को लेकर हम जालंधर से देहरादून शिफ्ट हो गए। दो महीने की छुट्टी काट कर अनु फिर हम सबको दहशत में डालकर श्रीलंका के लिए निकल गए। मैं ससुराल में रहने लगी। घर में सभी थे। फिर भी दो छोटे बच्चों की जिम्मेदारी और पति दूर, बहुत दूर, आसान नहीं था। आर्मी का वातावरण छोड़कर ससुराल में, सास-ससुर के साथ रहना एक दूसरे तरह की चुनौती थी। संकोच बना रहता था कि हमारी वजह से कोई परेशान तो नहीं हो रहा। आर्मी और सिविल लाइफ में अंतर नजर आने लगा था।

बहरहाल 1990 में यूनिट श्रीलंका से असम पोस्टेड हो गई। मन को दिलासा मिली कि कठिन दौर निकल गया। ईश्वर की कृपा से मेरे पति सकुशल श्रीलंका से भारत आ गए। मगर असम भी एक फील्ड स्टेशन था। ऑफिसर के लिए मैरिड एकोमेडेशन उपलब्ध नहीं थी। बस एक हॉल जैसा कमरा, अटैच बाथरूम के साथ, इनको मिलना था। चूँकि हमारे दोनों बच्चे बहुत छोटे थे तो अनु ने सोचा परिवार को साथ रखा जाये। अन्य ऑफिसर जिनके बच्चे छोटे थे, वे सब भी अपनी फैमिली को साथ ले जा रहे थे। फौजियों की भरसक कोशिश रहती कि जितने दिन हो सके परिवार के साथ बिता लिए जाए।

27 जून 1990 को हम दिल्ली से तिनसुखिया ट्रेन के प्रथम श्रेणी के कूपे में बैठ कर नई पोस्टिंग की जगह - असम के लिए निकल पड़े। ट्रेन अपनी रफ्तार से चली जा रही थी। अलग-अलग राज्यों से गुजरती हुई ट्रेन ने तीसरे दिन सुबह असम राज्य में प्रवेश किया। हम सभी ब्रेकफास्ट के लिए नीचे की सीट पर बैठे और बाहर के दृश्यों को निहारने लगे। असम राज्य सुंदर और कुछ अलग-सा लग रहा था। वहाँ के लोग खेत में काम करते हुए सिर पर बाँस से बुनी हुई टोपी पहनते हैं। ट्रेन की खिड़की से दिखते हल्की ढलान वाले हरियाली से नहाए खेत और उनमें बाँस की गोल, बड़ी सी टोपी पहने काम कर रहे कामगार, एक सुंदर दृश्य-चित्र का आभास करा रहे थे। सचमुच कितना बड़ा है हमारा देश ! कितना सुंदर ! कितना भव्य !

अभी हमें अपनी जगह पर पहुँचने के लिये चार घंटे का समय शेष था। असम का कोंकड़ाझाड़ स्थान दिखाई दे रहा था। कोंकड़ाझाड़ जिले में प्रवेश करते ही अचानक ट्रेन की स्पीड बहुत धीमी हो गई। थोड़ी ही देर में जोर से पटाखों जैसी धमाकों की आवाज आई। इससे पहले हम कुछ समझ पाते कि हमारा डिब्बा धाड़-धाड़ उछलने लगा। सामने मौत खड़ी दिखाई देने लगी। बच्चे रोने लगे। बेटा राहुल बोला, "घर चलो..."

वापस चलो... !"

अनु ने घबरा कर मुझ से कहा, 'बच्चों को सँभालो!'

अनु श्रीलंका में कमांडों की ड्यूटी से वापस आये हुए थे, इसलिये वे तुरंत समझ गये थे कि ये पटाखे नहीं बम के धमाके हैं। हम बहुत ही डर गये। हमारा डिब्बा रेलवे ट्रैक पर पूरा पलट चुका था। खिड़की नीचे और दरवाजा ऊपर, और हम औंधे मुँह। हमें एक पल के लिए लगा, हम गए। मगर जब ट्रेन रुक गई तो हमने स्वयं को सही-सलामत पाया, बस कुछ चोट-खरोंच लगी हुई थी। हमें खुशी हुई और आश्चर्य भी कि हम चारों के चारों बच गये। मगर अब डिब्बे से बाहर निकलने का संकट था। खिड़की के पलड़े कीचड़ में धँसने से गंदा पानी खिड़की से अंदर आने लगा था। कूपे के बाहर गैलरी में अफरा-तफरी मची हुई थी। लोग अपना सामान छोड़कर भाग रहे थे, अपने प्राणों को बचाने के लिए। लोगों को असम उग्रवादियों के बारे में मालूम था। अनसू के चेहरे पर घबराहट और आँखों में आँसुओं की धार थी। दो छोटे बच्चों के साथ हमें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें? मेजर अनु बाहर गैलरी में भागते हुए लोगों से विनती करने लगे कि हमारी मदद करें। गोदी में दो बच्चों को देख कुछ लोग मदद को आगे आए। उन्होंने हमारी मदद की और हम ऊपर उठे दरवाजे से बाहर निकले। बाहर निकलते ही अनु ने मुझ से कहा, 'भागो...!'

हम अपने बच्चों को पकड़ कर नंगे पैर कीचड़ की दल-दल को पार कर रेलवे ट्रैक के किनारे बने रास्ते में भागने लगे। सभी यात्री भाग रहे थे। वहाँ से दो किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा सा स्टेशन था। जब स्टेशन दिखने लगा तो हमारी साँस में साँस आई। हमें महसूस हुआ कि अब खतरा नहीं है। असम में उस समय 'असम बोडो लैण्ड' का आंदोलन चल रहा था। उग्रवादी सरकारी संपत्ति को अपना निशाना बना रहे थे। पहले भी वहाँ इस तरह की दुर्घटनाएँ घट चुकी थीं, तीन सौ लोग अपनी जान गँवा चुके थे। तब से यह नियम बन गया था कि जैसे ही ट्रेन कोंकड़ाझाड़ जिले में प्रवेश करेगी, उसकी गति बहुत धीमी कर दी जायेगी। ट्रेन की धीमी गति के कारण ही हमें खास चोट नहीं आई थी। स्टेशन पर लोकल लोगों ने हमारी बहुत मदद करी, बड़ी तत्परता से। तीन घण्टे के पश्चात सरकार ने फिर से हमारे लिये ट्रेन का प्रबंध कर दिया। हम रात के ग्यारह बजे अपनी यूनिट की लोकेशन में पहुँच गए। जितना समय हम असम में रहे, हमारे डर के मारे रोंगटे खड़े होते रहे। मगर भारत की पूर्वोत्तर सीमा पर बसे असम राज्य में मानव जीवन

को जानने-समझने का मौका भी मिला, वहाँ के लोग, भाषा, संस्कृति, उत्सव, रीति-रिवाज, और कलाओं को। भारत का हर राज्य अपने आप में अनूठा है। विचित्र है भारत !

वर्ष 1995 से वर्ष 2005

जिंदगी का सफर आगे बढ़ता जा रहा था। असम के बाद अनु की पोस्टिंग दिल्ली हो गई, लिहाजा हम सब दिल्ली आ गए। राहुल और रिधिमा की पढ़ाई शुरू हो चुकी थी। बच्चों का स्कूल, एडमिशन, किताबों आदि का नया सिलसिला शुरू हो गया था। बच्चे बड़े हो रहे थे, साथ ही उनकी आवश्यकतायें भी बढ़ रही थीं। अब बार-बार ट्रांसफर होने से परेशानी होने लगी थी। इसी बीच मैंने भी अपनी छूटी पढ़ाई फिर से शुरू कर दी थी। अन्नामल्लु विश्वविद्यालय से मैंने बी.एड. किया। पहली नौकरी मैंने उत्तर प्रदेश राज्य के एक पूर्वी शहर फैजाबाद में की, अनु तब वहाँ तैनात थे।

मैं एक बार फिर से स्कूल के परिसर में खड़ी थी। इस बार बच्चों की पंक्तियों में नहीं वरन् उनके पीछे बतौर एक क्लास-टीचर के रूप में। 'अल्का मैम' का संबोधन आह्लादित कर रहा था। अपनी नौकरी के लिए मैं अपने माता-पिता और गुरुजनों को धन्यवाद देती। मेरे बी.एड. करने में मेरे पति ने बच्चों का दायित्व अपने पर लेकर मुझे महत्वपूर्ण सहयोग दिया अतः इस संबंध में उनके प्रति भी मेरे हृदय में कृतज्ञता का भाव रहता है। मेरे जीवन में फिर से अध्यापक और विद्यार्थी का रिश्ता शुरू हो गया था। लेकिन इस रिश्ते में तब ब्रेक लग जाता, जब मेरे पति की पोस्टिंग नई जगह हो जाती। नई जगह बच्चों के एडमिशन के लिए दौड़-भाग करना, घर को व्यवस्थित करने की जिम्मेदारी से जूझना, नौकरी के लिए आवेदन करना, एक बार फिर से नये स्कूल में अपनी काबिलियत को साबित करने के लिए संघर्ष करना, यह एक सिलसिला बन गया था।

फौजी जिंदगी की उथल-पुथल में हमेशा आगे देखना और आगे बढ़ना होता है। वर्ष 1999 से 2004 तक हम दक्षिण प्रांत, तमिलनाडु के शहर कोयम्बटूर की पोस्टिंग में रहे। सुदूर दक्षिण में बसे इस शहर का अनुभव बहुत अलग था। यहाँ हिंदी भाषा का प्रयोग न के बराबर था और हमें तमिल भाषा बिल्कुल नहीं आती थी, अतः अंग्रेजी ही एकमात्र जरिया बनी लोगों से संवाद करने का। कान हिंदी सुनने के लिए तरस जाते थे। अपने देश में होते हुए भी लगता कि परदेश में हैं। जब भी कोई हिंदी फिल्म वहाँ लगती थी हम लपक कर उसे देखने चले जाते थे।

कोयम्बटूर में मुझे सेंट फ्रांसिस स्कूल में हिंदी पढ़ाने का अवसर

मिला। मैं उत्तर भारत से थी और हिन्दी मेरी मातृभाषा। हिन्दी भाषा में मेरा अच्छा अधिकार होने की वजह से मुझे यहाँ हिन्दी अध्यापिका की नौकरी मिल गई। स्कूल में हिन्दी एक वैकल्पिक विषय था। जो विद्यार्थी हिन्दी विषय लेते थे, उन्हें अतिरिक्त 400 रुपये फीस देनी पड़ती थी। मुझे वहाँ पढ़ाते हुए यह महसूस होने लगा कि हिन्दी अध्यापिका से स्कूल की इनकम हो रही है। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ बच्चों को हिन्दी पढ़ाने के तरीकों को देखकर। वर्णमाला भी बच्चे अलग तरीके से सीख रहे थे। वहाँ बच्चे 'क' को पहला 'क' और 'ख' को दूसरा 'क' कह रहे थे। वहाँ मुझे हिन्दी अंग्रेजी में पढ़ानी पढ़ रही थी। उदाहरण के तौर पर... 'चिल्ड्रन राइट डॉउन स्मॉल 'अ'।' अच्छा लगता था कि ज्यादातर बच्चे ऑफ़शानल सब्जेक्ट के रूप में तमिल विषय न लेकर हिन्दी को चुनते थे। हिन्दी भाषा का महत्व वहाँ के लोगों को महसूस होने लगा था। जिस प्रकार उत्तर भारत में लोगों को अंग्रेजी सीखने की ललक है, उसी प्रकार की ललक दक्षिण भारत में लोगों को हिन्दी सीखने को लेकर दिखी।

मैंने हिन्दी स्पीकिंग कोचिंग में भी पढ़ाना शुरू कर दिया। हर रविवार को दो घण्टे की कक्षा लेनी पड़ती थी। मेरे विद्यार्थी बड़े-बड़े अधिकारी थे - इंजीनियर, डॉक्टर, बिजनेस-मेन आदि। मैं उनसे पूछती कि उम्र के इस पड़ाव में उन्हें हिन्दी सीखने की क्यों जरूरत पड़ गई। उनका उत्तर था कि तमिलनाडु से बाहर रोजगार के लिए जाना पड़ता है, अतः हिन्दी जाने बिना उन्हें परेशानी होती है। भारतवर्ष एक बहुभाषी देश है। अपने देश में राज्यों की अलग-अलग भाषाएँ होने के कारण लोगों के भाषाओं को लेकर किये जाने वाले संघर्ष को मैं देख रही थी। खैर, हमने भी तमिल भाषा के कई शब्द सीखे, और हमारे बच्चे तो तमिल में बतियाने भी लगे थे। पूरे पाँच वर्ष हम तमिलनाडु में रहे। अपनी आर्मी लाइफ के साथ। विराट हिन्द महासागर के तट पर स्थित इस प्रांत में जनजीवन देखा। यहाँ के लोगों की प्रकृति और संस्कृति को महसूस किया, नये अनुभव बटोरे।

वर्ष 2005 से 2015

कोयम्बटूर पोस्टिंग काटने के बाद अनु ने स्टडी लीव के लिए आवेदन किया, और हम सभी दिल्ली पहुँच गये। दिल्ली पहुँच कर सबसे पहले गोलगप्पे, समोसे और चाट पर टूट पड़े, क्योंकि पाँच साल कोयम्बटूर रहने के कारण हम इन चीजों को खाने के लिए तरस गए थे। यह भी महसूस किया कि अपना स्थान, जहाँ हम पले-बढ़े हमारे

लिए कितना महत्व रखता है। हिन्दी हर जगह सुनाई दे रही थी। लोगों से बात करना कितना सहज और सरल लग रहा था। जगह-जगह हिन्दी की लिखावट देख कर अपनेपन की भावना से भर रहे थे। हमें आर्मी की तरफ से नोयडा के सेक्टर पच्चीस में आवास मिला। यहाँ भी मैंने घर के पास एक स्कूल में नौकरी शुरू कर दी। उस स्कूल में मुझे अपने विषय - फीजिक्स और मैथ्स पढ़ाने को मिले। यहाँ के स्कूल में मुझे एक अंतर साफ देखने को मिला। कोयम्बटूर के बच्चों की तुलना में यहाँ के बच्चे अधिक शरारती, चंचल, बेबाक और मुँहफट थे। अभी भी, नई सदी के आने के बावजूद कई बच्चों के जवान माता-पिता शिक्षित नहीं थे। पेरेंट्स-टीचर मीटिंग में ज्यादातर माताएँ दस्तखत तक नहीं कर पाती थीं। हालाँकि उनके घर हर प्रकार से भौतिक सुविधा-सम्पन्न थे, फिर भी पीढ़ियों से चला आ रहा शिक्षा का अभाव उनके परिवारों में स्पष्ट दिखाई देता था। उन बच्चों को शिष्टाचार सिखाना सबसे बड़ी चुनौती होती थी। तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के परिवेश में मूलभूत अंतर साफ महसूस होने लगा था। कोयम्बटूर के स्कूल के हर बच्चे का अभिभावक शिक्षित था। नोयडा, उत्तरप्रदेश के स्कूल के कई अभिभावक अंगूठा छाप थे।

लेकिन अभी दिल्ली में हम पूरी तरह से व्यवस्थित भी नहीं हो पाए थे कि वर्ष 2004 के अगस्त माह की 27 तारीख को देहरादून में ससुर जी के आकस्मिक निधन ने पूरे परिवार को हिला दिया। मेरे ससुर जी बहुत अनुशासित, जिम्मेदार और कर्मठ व्यक्ति थे। कुटुम्ब के कितने दायित्वों को वे निभा रहे थे, यह बात हमें उनके जाने के बाद पता चली। अभी उम्र भी ऐसी नहीं हुई थी कि परिवार उनके प्रस्थान को ईश्वर की इच्छा मान कर सहजता से ले लेता। यह गहरा आघात था हम सब के लिए। अनु एकाएक बहुत खामोश हो गए। तीन बेटियों के परिवार में मेरे पति अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र ही नहीं हैं, उनकी सबसे बड़ी संतान भी हैं। पिता का यूँ यकायक चला जाना ये स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। समय के साथ-साथ परिवार ने अपने को सँभाला। अनु की संवेदना अब देहरादून घर के प्रति कई गुना बढ़ गई थी।

स्टडी लीव के उपरान्त, 2007 में अनु की फील्ड पोस्टिंग आ गई। हम नोयडा से करियप्पा, धौला कुआँ, दिल्ली कैंट में शिफ्ट हो गए। यह एक एसएफ एकोमेडेशन थी। यहाँ पर घर उन सैनिकों के परिवारों को मिलता जिनकी फील्ड पोस्टिंग होती। यहाँ पर ज्यादातर महिलाएँ अकेले बच्चों के साथ रह रही थीं। मैं भी उनके बीच आ गई थी। दिल्ली

कैंट में उगे तरह-तरह के पेड़, पौधे, फूल और झाड़ियों ने दिल को मोह लिया। शहर के बीच में होते हुए भी यह शहर से हट कर था, भीड़-भाड़ से दूर। बड़ी शान्ति थी।

बेटा राहुल इंजीनियरिंग के तीसरे वर्ष में पढ़ाई कर रहा था और बेटा रिधिमा इंजीनियरिंग के प्रथम वर्ष में थी। करियर में रहने वाली सभी महिलाओं के पति सीमा पर तैनात थे। कभी-कभी बहुत ही हृदयविदारक दृश्य देखने को मिलते, जब कोई जवान ऑफिसर देश के लिए शहीद हो जाता। एक शहीद की पत्नी ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात अपने पहले बच्चे को जन्म दिया। जब मैं उनसे मिलने उनके निवास पर गई तो ड्राइंगरूम में एक बहुत बड़े फ्रेम में ऑफिसर की फोटो देखकर मन द्रवित हो उठा। मैं उस एक माह के शिशु को देखकर सोचने पर मजबूर हो गई कि यह बच्चा इस दुनिया में अपने पिता को कभी देख नहीं कर पायेगा। ऐसे ही कई हादसों की मैं चश्मदीद गवाह बनी।

हमारे ब्लॉक के ग्राउंड फ्लोर में कर्नल दानु का परिवार रहता था। वे कुछ दिन पहले छुट्टियों में घर आये हुए थे। रोज सुबह-शाम मैं उन्हें वॉक करते देखती थी। जब वे छुट्टी व्यतीत कर वापस अपनी यूनिट में गये, तो पता चला कि पेट्रोलिंग के दौरान उनका पैर माइन में पड़ने से बुरी तरह घायल हो गया। उनके पाँव को घुटने के नीचे से काटना पड़ा। जब वे अपने कटे पाँव के साथ घर वापस आये तो उनकी और परिवार की जिंदगी पूरी तरह से बदल चुकी थी। एक पैर से अपंग होने का संघर्ष दिखाई दे रहा था। देश की आजादी और सीमाओं की सुरक्षा की कीमत नजर आ रही थी। कितनी कठिन परिस्थितियों में हमारे जवान अपनी ड्यूटी निभाते हुए वीर गति को प्राप्त हो जाते हैं, अपंग हो जाते हैं। उनको देख कर एकाएक यह अहसास गहरा गया। कितने ही जवान अपने घर-बार को छोड़ कर सीमाओं की सुरक्षा के लिए जिंदगी दाँव पर लगा रहे हैं।

बच्चों की पढ़ाई के कारण मुझे दिल्ली में रहना पड़ा। अनु अलग-अलग स्थानों पर पोस्टिंग पर जाते रहे। हम भी छुट्टियों में उनके पास कुछ दिनों के लिये चले जाते। हर बार एक नए स्थान से रू-ब-रू हो जाते।

2010 में बेटे राहुल ने इंजीनियरिंग के बाद इन्डियन नेवी ज्वाइन कर ली। मेरे पति भारतीय थलसेना में और बेटा जलसेना में। हम सब गौरवान्वित महसूस करने लगे। यह हमारे घर की तीसरी पीढ़ी थी, जिसने सेना को जॉइन किया था। मेरे ससुर जी भी आर्मी ऑफिसर थे। 2011 में रिधिमा भी अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के बाद जॉब करने

लगी थी। रिधिमा ने भी एयर-फोर्स की एसएसबी परीक्षाएँ पहली बार में ही उत्तीर्ण कर ली थी, लेकिन बाद में दिल्ली में नौकरी मिलने से उसने एयर-फोर्स जॉइन नहीं किया, एक मल्टीनेशनल कम्पनी में नौकरी करने लगी।

धीरे-धीरे जीवन आगे सरकता गया, अनु कैप्टन से मेजर, और फिर कर्नल बन चुके थे। कई मुकामों से हम गुजरे। जीवन में खट्टे-मीठे अनुभव हुए। वर्ष 2013 में अनु फील्ड पोस्टिंग उधमपुर से दिल्ली अपनी सर्विस की अंतिम पोस्टिंग में आ गये और हम सेपरेटर करियर से प्रताप चौक आ गये, एक बड़े और खुले घर में। एक साल बहुत अच्छे से बीत गया, मगर रिटायरमेंट की सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। आखिरकार वह पल आ ही गया... सितम्बर 2014, जब अनु भारतीय थलसेना से रिटायर हो रहे थे। बहुत ही संवेदनशील पल थे। मैं मिश्रित भावों से गुजर रही थी। जब अनु ने अपनी नौकरी के आखिरी दिन ऑफिस से घर आकर अपनी यूनिफार्म सँभाली तो उस यूनिफार्म में मुझे पूरे भारत का नक्शा दिखाई देने लगा, कश्मीर से कन्याकुमारी तक का। आर्मी कंटोनमेंट छोड़ते हुए मैं बहुत भावुक हो रही थी। पिछले 29 साल से यह कंटोनमेंट मेरा घर, मेरा वजूद था। शहर के कोलाहल से दूर, यहाँ की हरियाली, साफ-सुथरा इलाका मन को हर्षित करता, उमंग भरता। जब कोई सम्बन्धी हमारे घर आता, कैंट एरिया की तारीफ़ किये बिना नहीं रहता। और, अगल-बगल रह रहे अपनी फौज के लोग, चाहे वे भारत के किसी भी प्रांत के हों, सभी अपने घनिष्ठ लगते हैं। सभी से एक गहरा रिश्ता बन जाता है।

12 अक्टूबर 2014 को आर्मी लाइफ को अलविदा कह और कंटोनमेंट को छोड़ हम नोयडा शिफ्ट हो गये। रिटायर होने के बाद अनु देहरादून, अपनी माताजी से मिलने गये। उन्होंने अपने पुत्र को प्यार से गले लगाया, फिर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, 'आर्मी की नौकरी कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिए तुझे हार्दिक बधाई। हर मोर्चे पर कुशलता से अपना फर्ज निभा कर सही-सलामत घर वापस पहुँचने के लिए ईश्वर का बारम्बार धन्यवाद।'



1106c Krishna Apra Sapphire, Vabhav Khand,
Indirapuram, Gaziabad (UP) Pin - 201010
Phone no.: 09818023492, 6395766498

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का नया दौर: वर्चुअल मीडिया एवं वर्चुअल रियालिटी

डॉ. आरती पाठक

“वर्चुअल रियालिटी एक ऐसी आभासी दुनिया का निर्माण कर देता है, जो कंप्यूटर सॉफ्टवेयर द्वारा निर्मित है, लेकिन आप इसका हिस्सा बन सकते हैं। इसका अनुभव लेने के लिए दृष्टि और ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। जिन खेल को आप मोबाइल अथवा कंप्यूटर पर खेला करते थे, वर्चुअल रियालिटी के माध्यम से आप उनका हिस्सा बन सकते हैं, आप कमरे में बैठे-बैठे अंतरिक्ष की यात्रा पर जा सकते हैं। किसी कार को ड्राइव कर सकते हैं। खेल (गेमिंग) की दुनिया में तो इसने तहलका सा मचा रखा है। इस कृत्रिम संसार को वास्तविक बनाने के लिए गेम डेवलपर्स ने कृत्रिम रूप से दृश्य, श्रव्य, स्पर्श और गंध को शामिल किया है। इन उपकरणों के माध्यम से हम इनका अनुभव ले पाते हैं।”

आज जमाना हाईटेक का है, कंप्यूटर का है, भूमंडलीकरण का है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में नई-नई प्रेरणाएँ, परिकल्पनाएँ और विचारधाराएँ, देश, समाज तथा मनुष्य को आंदोलित कर रही हैं। विश्व-पटल पर फूटे उच्च प्रौद्योगिकी के स्रोत ने जहाँ ‘ग्लोबल विलेज’ (विश्वग्राम) की परिकल्पना को साकार किया है, वहीं मीडिया की संपूर्ण स्थिति भिन्न-भिन्न रूपों में, कई-कई स्तरों पर आज चुनौतियों से टकरा रही है। विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सर्वग्राही अतिक्रमण पर बहस चल पड़ी है।

‘इलेक्ट्रॉनिक मीडिया’ के शब्द प्रयोग से ही हमारे मानस-पटल पर इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार अर्थात् रेडियो तथा टेलीविजन का नाम सबसे पहले आता है। हाल के दशकों में अगर किसी संचार माध्यम ने

भारतीय जनमानस को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है, तो वह यही माध्यम है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया: प्रकार एवं स्वरूप:

भारतीय गणतंत्र ने अपने 71 वर्षों के सफर के दौरान सूचना और संचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है। विशेष तौर पर, 1990 के दशक में शुरू हुए उदारीकरण के दौर में प्रवेश के बाद, तब से लेकर आज तक पिछले दो दशकों में भारत ने भूमंडलीकरण के फार्मूले को अपनाकर विश्व बिरादरी में अपना एक महत्वपूर्ण मुकाम बनाया है। 1990 के दशक के बाद का सफर सूचना-क्रांति के विस्फोट का गवाह रहा है। इसी दशक से रेडियो, दूरदर्शन से आगे यानि सरकारी नियंत्रण से निकलने का रास्ता तलाश, जिसके बाद देश के पहले उपग्रह चैनल तथा इसके मेल से उपग्रह टेलीविजन चैनल की उपज हुई। इसकी तादाद आज सैकड़ों में पहुँच गई है, बाद में इंटरनेट, वेब-मीडिया, सोशल-मीडिया, मोबाइल इत्यादि इसके साक्षी बने। इस क्रांति ने सूचना को रूप, रंग, गंध और स्पर्श के जैसा ही सुलभ बना दिया है।

वैसे तो धार्मिक ग्रंथों में रेडियो तथा टेलीविजन दोनों माध्यमों से मिलते-जुलते संचार माध्यमों का जिक्र मिलता है। ‘धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे’ श्लोक में जान पड़ा कि महाभारत में संजय ने धृतराष्ट्र को युद्ध का सीधा प्रसारण सुनाया। नारद मुनि की आकाशवाणी भी वर्तमान रेडियो प्रसारण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना गया, साथ-ही श्रीकृष्ण कथा में कंस द्वारा अपने वध के डर से वासुदेव-देवकी के सभी पुत्र-पुत्रियों की हत्या के समय हुई आकाशवाणी भी इसी का हिस्सा मानी जा सकती है। हालाँकि प्रमाणिकता के अभाव में भौतिकवादी लोगों को विश्वास नहीं होते है, इन प्रसंगों पर। बहरहाल इस मीडिया में असली क्रांति 1982 के एशियाई खेलों के दौरान रंगीन क्रांति के माध्यम से आई।

सोशल-मीडिया की ताकत व प्रभावों से भी इंकार नहीं किया

जा सकता है। 2014 में फेसबुक, ट्वीटर, ब्लॉग, यू-ट्यूब, वाट्स-अप, टेलीग्राम आज इन सभी के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। सूचना-क्रांति में इन विभिन्न प्लेटफार्म, जो सोशल-मीडिया का है, उनसे समाज का कोई वर्ग अब अछूता नहीं है। इनकी गहरी पैठ समाज के अंदर धँस चुकी है। इसका उदाहरण हम भ्रष्टाचार अभियानों, आम चुनाव, निजी जिंदगी तक में गहरा हस्तक्षेप करता है। लोगबाग का निजी प्रेम-प्रसंगों तक पर सामाजिक रूप से चर्चा होना इस बात का नतीजा है कि इसकी जड़ों का विस्तार कहाँ तक पहुँच गया है। ट्वीटर के चलते तो हमारे देश में एक विदेश मंत्री को इस्तीफा तक देना पड़ा था। यह इन सभी सोशल-मीडिया क्रांति का ही असर है कि चाहे राजनैतिक-वर्ग, सामाजिक-वर्ग, कॉर्पोरेट हो या कोई सरकारी संस्थान, सभी सोशल-मीडिया पर अपने-अपने को दर्ज कराने में लगे हैं।

सोशल-मीडिया के एक और प्रकार 'ब्लॉग' ने भी समाज में संचार-क्रांति लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजकल तो हर व्यक्ति अपनी छोटी-बड़ी अभिव्यक्ति के लिए इस प्लेटफार्म का प्रयोग कर रहा है। सोशल-मीडिया ने 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' को त्वरित रूप प्रदान कर जन-जन तक सुलभ कराया। पहले एक समय में देश के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवानी का ब्लॉग, अमिताभ बच्चन का ब्लॉग, अन्ना हजारे का ब्लॉग, मरहूम बाल ठाकरे का ब्लॉग मीडिया के लिए खबरों का महत्वपूर्ण स्रोत रहा।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रकार:

- रेडियो
- टेलीविजन
- मोबाइल
- सोशल-मीडिया (फेसबुक, ट्वीटर, यू-ट्यूब, वाट्स-अप, अन्य)
- ब्लॉग
- सिनेमा
- इंटरनेट
- वर्चुअल मीडिया

उपर्युक्त वर्णित समस्त प्रकारों में से मैं आपका ध्यान वर्चुअल मीडिया की ओर लाना चाहती हूँ। तकनीक के इस दौर में तेजी से पैर फैलाती यह आभासी दुनिया/आभासी पटल लोगों की जरूरत बनती दिखलाई पड़ रही है। कोविड-19 के इस संकटजन्य दौर में यह तकनीक और उभर कर सामने आई है। आज हम 'नेटीजन' शब्द का प्रयोग कर

रहे हैं, उन लोगों के लिए जो लगातार दिन भर 'इंटरनेट' के मायाजाल में फँसे होते हैं, साथ-ही-साथ एक नए शब्द का प्रयोग 'जनरेशन 5' की बात कही जा रही है। 'जनरेशन 5' अर्थात् 'इंटरनेट' के माध्यम से एक कोल-कल्पित 'आभासी पटल' की तैयारी हो चुकी है, जो वास्तविकता के समकक्ष है। इंटरनेट एवं तकनीकी के इस मायाजाल में सारी दुनिया जुड़ चुकी है और अपने जीवन का पर्याय भी बन चुकी है।

वर्चुअल मीडिया का अर्थ



आभासी, कल्पित, वास्तविक मीडिया। एक ऐसी दुनिया जो वास्तविक जीवन के समकक्ष बनाई गई बिल्कुल वास्तविक सी आभास होने वाली 'आभासी मीडिया'। 'वर्चुअल मीडिया' के समकक्ष ही एक और शब्द 'वर्चुअल रियालिटी' चल पड़ा है। ऐसी स्थिति में कोविड-19 के दौर में यह 'वर्चुअल मीडिया' की सार्थकता को और दर्ज कराया है। जहाँ हम इस विश्वव्यापी महामारी के कारण समाज में प्रत्यक्ष रूप से जुड़ नहीं पा रहे थे, इस विधा के कारण पूरा विश्व इस माध्यम से जुड़ा और अपने ज्ञान के विभिन्न आयामों का आदान-प्रदान 'वर्चुअल मीडिया' के विभिन्न माध्यमों- यू-ट्यूब, गूगल-मीट, जूम, फेसबुक, कू, टेलीग्राम के साथ-साथ जुड़कर एक-दूसरे से जुड़े और अवसादग्रस्त परिस्थिति को ज्ञान के विभिन्न पायदानों का सहारा लेकर बचे।

वर्चुअल रियालिटी क्या है



जब हम 'वर्चुअल रियालिटी' की बात कर रहे हैं, तो इस बारे में भी बिना चर्चा किए यह विषय अधूरा है।

'वर्चुअल' का अर्थ होता है, आभासी यानी सच। ऐसे में वर्चुअल रियालिटी का मतलब होता है कि हमें आभासी रूप से सच्चाई का अनुभव हो रहा है। उदाहरण के तौर पर, यदि आप कोई जगह देखने आए हैं तो आप उस जगह को सच में देख रहे हैं, लेकिन यदि आप उस जगह की फोटो या विडियो देखते हैं तो आपको यह महसूस हो जाता है कि आप सच्चाई में वहाँ नहीं हैं, बल्कि सिर्फ चित्र देख रहे हैं, लेकिन यदि आपको घर बैठे ही ऐसा अनुभव मिल सके कि आप अपनी मनपसंद जगह घूम रहे हैं तो कैसा होगा? वर्चुअल रियालिटी कुछ ऐसा ही है।

'वर्चुअल रियालिटी' शब्द आपने कई बार सुना होगा, लेकिन इसका अनुभव कुछ ही लोगों ने किया होगा। दरअसल वर्चुअल रियालिटी एक ऐसी टेक्नोलॉजी है, जो वर्चुअल इमेज, वर्चुअल साउंड और दूसरी कई वर्चुअली चीजें दिखाने के लिए काम आती है। इसको कोर्ट फॉर्म में 'वीआर' भी कहते हैं।

जब आप इसको इस्तेमाल करते हैं तो आपको ऐसा महसूस होता है किये बिल्कुल ओरिजिनल (वास्तविक) है और आपके सामने ही सब कुछ हो रहा है। इसको प्रयोग करने पर ऐसा लगने लगता है कि आप उसी माहौल में मौजूद हैं। 'वर्चुअल रियालिटी' हेडसेट को पहनने के बाद अगर आप किसी 360 डिग्री विडियो को देखते हैं तो आप ऊपर-नीचे, आगे-पीछे घूम कर भी देख सकते हैं।



वर्चुअल रियालिटी एक ऐसी आभासी दुनिया का निर्माण कर देता है, जो कंप्यूटर सॉफ्टवेयर द्वारा निर्मित है, लेकिन आप इसका हिस्सा बन सकते हैं। इसका अनुभव लेने के लिए दृष्टि और ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। जिन खेल को आप मोबाइल अथवा कंप्यूटर पर खेला करते थे, वर्चुअल रियालिटी के माध्यम से आप उनका हिस्सा बन सकते हैं, आप कमरे में बैठे-बैठे अंतरिक्ष की यात्रा पर जा सकते हैं। किसी कार को ड्राइव कर सकते हैं। खेल (गेमिंग) की दुनिया में तो इसने तहलका सा मचा रखा है। इस कृत्रिम संसार को वास्तविक बनाने के लिए गेम डेवलपर्स ने कृत्रिम रूप से दृश्य, श्रव्य, स्पर्श और गंध को शामिल किया है। इन उपकरणों के माध्यम से हम इनका अनुभव ले पाते हैं।

1. डायरेक्टर वीआर हेडसेट (गूगल, कार्डबोर्ड, प्लास्टिक वीआर सेट, गियर वी आर)

2. मोबइल स्क्रीन

इनका प्रयोग एक अलग दुनिया में ले जाता है। सारी चीजों का अगर महत्व है तो उसी रूप में वह आपको कमजोर बनाता है/ नुकसानदायक भी होता है। यह अगर आपको आनंद देती है तो यही आपको वास्तविकता से दूर ले जाती है। आप को अपना आदी बना देता है और अवसाद की स्थिति में भी ले जाता है। एक अजीबोगरीब नशे का निर्माण करता है, जिससे व्यक्ति अपने आप को खो-सा देता है।

शेष भाग पृष्ठ 83 पर

मीडिया तकनीकी और हिन्दी का वैश्विक फलक

डॉ. रीना प्रताप सिंह

“आज हिन्दी भाषा ने केवल भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान स्थापित किया है। आज हिन्दी विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। विश्व के लगभग सभी महत्वपूर्ण राष्ट्रों और महाद्वीपों में हिन्दी भाषा किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा विश्व में सम्मानित और आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुकी है। वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की बदलती भूमिका के चलते आज लगभग 121 देशों में इस भाषा को बोला और समझा जाता है। वर्तमान की बात करें तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का विश्व भर में लगभग 176 विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन जारी है।”

इक्कीसवीं शताब्दी में हर एक क्षेत्र वैश्वीकरण की ओर चल रहा है। वर्तमान में अपने विचारों या भावों को आमजन तक पहुँचाने में सोशल मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह एक ऐसे समाज का निर्माण करता है, जो इंटरनेट के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरों से जुड़ जाता है। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे विश्व को सूत्रता में बाँधता है। यह विश्व का सुगम एवं सस्ता माध्यम है, जो तीव्र गति से सूचनाओं का आदान-प्रदान करके हर क्षेत्र की घटनाओं को आमजन तक पहुँचाता है। इस माध्यम के द्वारा किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश आदि को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है।

विज्ञान तथा तकनीकी विकास के साथ-साथ मानव जीवन में

परिवर्तन के सर्वशक्तिशाली साधन के रूप में मीडिया उभरकर सामने आया है। सूचना और विचार संप्रेषण से मानव जीवन को प्रभावित करने के लिए आज संचार माध्यम जिस तेजी और मजबूती के साथ लोकमत बनाने या बदलने की क्षमता रखते हैं, वैसा सामाजिक क्षेत्र का कोई और उपकरण नहीं रखता है। मीडिया अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण विज्ञान है, आदर्श कला है, उत्तम व्यवसाय है और मानव चेतना को उद्दीप्त करने का सशक्त साधन है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में साहित्य और सिनेमा का जितना योगदान है, उतना ही या कहे उससे भी बढ़कर योगदान हिन्दी मीडिया और संचार माध्यमों का है, क्योंकि साहित्य और सिनेमा भी इन्हीं संसाधनों पर निर्भर है। टेलीविजन चैनल्स, रेडियो और इंटरनेट सभी ने हिन्दी को एक नया आयाम प्रदान किया है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि मीडिया में प्रयुक्त हिन्दी से भाषा का रूप विकृत हो रहा है या उसकी मौलिकता नष्ट हो रही है। लेकिन अगर हम ध्यान दें तो देख सकते हैं कि हिन्दी एक उदार भाषा है और उसने दूसरी भाषा के शब्दों को बड़ी आसानी से आत्मसात कर लिया है। हिन्दी का क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह अपने रूप को स्वयं बदलती रहती है।(1)

मीडिया वह साधन है जिसके माध्यम से बड़ी संख्या में लोगों के साथ संप्रेक्षण किया जाता है। वर्तमान समय में ‘मीडिया’ शब्द सम्पूर्ण पत्रकारिता के जगत से सम्बोधित करने के लिए पर्याप्त है। यदि स्वतंत्रतापूर्वक की बात की जाए, तो यह कहना असंगत न होगा कि देश को स्वतंत्र कराने में मीडिया अर्थात् पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उस समय केवल समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ ही समाचार प्राप्त करने के माध्यम थे। सन् 1780 में ‘ओगरस हिकी’ नामक अंग्रेज ने ‘बंगाल गजट’ नामक पहला समाचार पत्र निकाला तथा इसी वर्ष ‘इंडिया गजट’ नाम से दूसरा पत्र भी शुरू हुआ। इस बीच कई भाषाओं में पत्र निकाले गए, परन्तु हिन्दी भाषा का पहला समाचार पत्र ‘उदंत

मार्तण्ड' युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में सन् 1826 में प्रकाशित हुआ। 'बेगदूत' हिन्दी में प्रकाशित होने वाला दूसरा पत्र था, जिसके सम्पादन का श्रेय श्री नीलरत्न हालदार को जाता है। समय के साथ-साथ कई समाचार पत्र व पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित होती रहीं।

आज हिन्दी भाषा ने केवल भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान स्थापित किया है। आज हिन्दी विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। विश्व के लगभग सभी महत्वपूर्ण राष्ट्रों और महाद्वीपों में हिन्दी भाषा किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा विश्व में सम्मानित और आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुकी है। वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की बदलती भूमिका के चलते आज लगभग 121 देशों में इस भाषा को बोला और समझा जाता है। वर्तमान की बात करें तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का विश्व भर में लगभग 176 विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन जारी है। भारत के पड़ोसी देशों पाकिस्तान, नेपाल, अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, बर्मा, श्रीलंका के अतिरिक्त अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, मॉरिशस, थाइलैंड, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनिदाद, जापान, रूस, केन्या, हालैण्ड, इटली, कोरिया, जर्मनी, स्वीडन, मेक्सिको, न्यूजीलैंड आदि देशों में होने वाले प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा ने विश्व में हिन्दी को अति महत्वपूर्ण तथा सम्मानजनक स्थान दिलवाया है। (2)

वर्तमान समय में हिन्दी को विश्वव्यापी भाषा बनाने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इस क्षेत्र में निरंतर चाहे 'प्रिंट मीडिया' हो या 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' हर जगह हिन्दी का ही वर्चस्व है। यह सत्य है कि हिन्दी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एम.बी.ए. का पाठ्यक्रम आरम्भ किया गया। इसी तरह 'इकोनॉमिक टाइम्स' तथा बिजनेस स्टैण्डर्ड जैसे अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया है कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरम्भ थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णतः हिन्दी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही 'ई.एस.पी.एन.' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' रिकवरी, हालीवुड फिल्में, बच्चों के मनोरंजन के 'डिज्नी वर्ल्ड' कार्टून चैनल्स जैसे कई अंग्रेजी चैनल हिन्दी में प्रसारित होने लगे हैं। हिन्दी को वैश्विक सन्दर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। हिन्दी

जनसंचार माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

सिर्फ टेलीविजन ही क्यों रेडियो में भी गानों, हिन्दी समाचारों, हिन्दी नाटक, ज्ञान-विज्ञान और न जाने कितने ही मनोरंजक और ज्ञानवर्धक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। टेलीविजन से काफी पहले से आकाशवाणी का नाता है भारतीयों से। सीमा पर तैनात जवान हो या खेतों में काम करता किसान, किताबों में खोया विद्यार्थी हो सड़क पर रेहड़ी लगाने वाले हों या फिर घर पर फुरसत के चन्द पल बिता रही कोई गृहिणी, आकाशवाणी की हिन्दी सेवा हर जगह हर वक्त उनके साथ है। किसी के मनोरंजन का साधन है तो किसी के भविष्य का पथप्रदर्शक। (3)

आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं, बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिन्दी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी संख्या में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिन्दी सात चैनलों के माध्यम से प्रसारित हो रही है। हिन्दी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्व व्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक सीमित न रहकर पूरे विश्व में अपना विस्तार ही नहीं कर रही अपितु इन संचार माध्यमों की सहायता से विश्वव्यापी बनकर विदेशों में भी अपना अस्तित्व स्थापित कर रही है। (4)

वर्तमान समय को यदि 'साइबर स्पेस' का युग कहा जाए तो गलत नहीं होगा। आज इंटरनेट कई संचार माध्यमों के लिए रीढ़ की हड्डी बना हुआ है। इंटरनेट एवं ऐसा विशाल संजाल है, जिसके द्वारा कम्प्यूटर अपना अस्तित्व बनाये हुए है। प्रसिद्धता की ओर बढ़ती जा रही हिन्दी के कारण माइक्रोसॉफ्ट कम्पनियों ने ऐसे सॉफ्टवेयर बनाने आरम्भ कर दिये हैं, जिनकी सहायता से हिन्दी विकसित ही नहीं, बल्कि समृद्ध भी हो रही है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिन्दी के अखबार एवं पत्रिकाएं दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध है।

माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईवीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कम्पनियां अत्यन्त व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिन्दी प्रयोग के बढ़ावा दे रही है। यह सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिन्दी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व

के दर्जनों देशों में हिन्दी की पत्रिकाएं निकल रही है तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिन्दी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिन्दी के शब्द कोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं। (5)

वैश्वीकरण, बाजारीकरण और सूचना क्रान्ति के इस दौर में यह सिद्ध हो गया है कि उत्पाद निर्माताओं के लिए भारत एक बड़ा उपभोक्ता बाजार बन चुका है। क्रय-विक्रय की चल पड़ी इस अन्तर्राष्ट्रीय लहर में मीडिया महत्वपूर्ण केन्द्र है। इसी माध्यम के सहारे बदलते वैश्विक परिदृश्य के चलते हिन्दी भाषा एक नया आयाम छूते हुए उभर रही है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को प्रभावशाली, आकर्षक और सर्व स्वीकार्य

शेष भाग पृष्ठ 80 का

वर्चुअल सोशल-मीडिया



सोशल-मीडिया का मतलब है 'सोशल कम्यूनिकेशन' के द्वारा लोगों के साथ आपस में जुड़ना। यह ठीक शारीरिक नेटवर्क की तरह है, परंतु यह नेटवर्क ऑनलाइन होता है। चूँकि आज का दौर ऑनलाइन का है इसीलिए लोग आपस में बातचीत करने के लिए, संपर्क बढ़ाने के लिए, अपने ज्ञान एवं अन्य विषयों की जानकारी साझा करने के लिए इस माध्यम का सहारा आज की एक जरूरत बन गई है, ऐसा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

90 के दशक में पहली बार सोशल-मीडिया की चर्चा हुई जब 1994 में सबसे पहला सोशल-मीडिया सोशल साइट के रूप में लोगों के सामने आया। इसका उद्देश्य एक ऐसी वेबसाइट बनाना था, जिसके माध्यम से लोग अपने विचार और बातचीत आपस में साझा कर सकें।

2000 के दशक की शुरुआत भी प्रमुखता हासिल की। 1999 में पायरा लैब्स ने एक होस्टिंग टूल के रूप में आया और 2003 में गूगल ने इसे खरीद लिया। 2005 में यू-ट्यूब, 2006 में फेसबुक और ट्वीटर, 2009 में वाट्स-अप, 2010 में इंस्टाग्राम, 2013 में टेलीग्राम इत्यादि प्लेटफार्म निर्मित हुए, जिससे आप 'वर्चुअल दुनिया' में वर्चस्व

बनाने के लिए प्रत्येक दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. विश्व पटल पर हिन्दी सं.- डा. ऋषिपाल, पृ.सं.-43
2. हिन्दी की वैश्विक प्रासंगिकता, सं0-डा. बृजेश तिवारी, पृ.सं.-134
3. विश्व पटल पर हिन्दी, सं.- डा. ऋषिपाल, पृ.सं.-46
4. w.w. abhivyakti.hindi.org
5. w.w. abhivyakti.hindi.org



सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग
जी.एस.एच.पी.जी. कालेज, चान्दपुर (बिजनौर) उ.प्र.
मो. 9410432574 Email: pratapsinghreena@gmail.com

स्थापित कर चुके हैं।

समस्त मापदंडों को देखने के बाद निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि यह इस वर्चुअल मीडिया के बहुत सकारात्मक पक्ष है, पर इसके दुष्प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता है। इस आभासी पटल से लोग जुड़ रहे हैं, पर कहीं- न-कहीं इसके कारण वास्तविक पटल से अलग हो एक अलग सामाजिक ढाँचा बनाते जा रहे हैं, जो कि संवेदनहीन है। हमें जरूरत है उस समाज की जहाँ संवेदनाओं की गहरी जड़ें थीं, जहाँ व्यक्ति वास्तव में एक-दूसरे से जुड़ा, एक- दूसरे को समझता और सहयोग करता था। आज निःसंदेह हम प्रगति पर हैं, परंतु मानवीयता कहीं पीछे छूटती जा रही है। मूल से दूर हो रहे हैं।

“एक आदर्श समाज में अनेक अभिरुचियाँ सचेतन स्तर पर संप्रेक्षित और साझा की जाती है... दूसरे शब्दों में 'सोशल एन्डोस्मोसिस' अत्यावश्यक है।”
- भारतरत्न डॉ. बाबासाहब अंबेडकर

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. राजकिशोर (संपादन). मीडिया और हिंदी साहित्य; दिल्ली: किताबघर प्रकाशन; प्रथम संस्करण-2009; पृ. 80.
2. शर्मा, कुमुद. भूमंडलीकरण और मीडिया; नई दिल्ली: ग्रंथ अकादमी; प्रथम संस्करण-2001; पृ. 102.
3. सहाय, साकेत. इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया भाषिक संस्कार एवं संस्कृति; कोलकाता: मानव प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011; पृ. 94.
4. कर, चितरंजन, पी.डी. निमसरकर, सुधीर शर्मा. प्रयोजनमूलक हिंदी; रायपुर: वैभव प्रकाशन; प्रथम संस्करण-2016. पृ. 126.



सहायक प्रध्यापक, सहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़)
artipathak81@gmail.com

तैयारी

आज फिर आया है वो। आज फिर एक फुफकार मीनाक्षी के नजदीक आती जा रही है, आज फिर एक सरसराहट उसके नारीत्व को अपनी कुंडली में लपेटने को तैयार है। वैधव्य को ढोती युवा मीनाक्षी ने एक बार बहुत सकुचाते हुए यह बात अपनी सास को बताई थी, लेकिन बदले में मिला अविश्वास और कुछ अकल्पनीय सम्बोधन।

'तो क्या करे वह? क्या ऐसे ही सहते रहना होगा?'

'नहीं! उसे अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। इस कुंडली से स्वयं को आजाद कराना होगा।' मीनाक्षी ने उसी दिन निश्चय कर लिया था।

'बहू! नन्दोई जी आये हैं, आकर आशीर्वाद लो।' सास की आवाज सुनकर जैसे सोते से जागी मीनाक्षी।

'पैरी पौना फूफा जी' कहते हुए मीनाक्षी चरण स्पर्श को झुकी। लेकिन ...उँगलियों से पहले बड़े हुए नाखून पैरों तक पहुँच गये।

और ..

सिर से होते हुए कमर की ओर सरसराता साँप झटके से वापस हो लिया।



घर

शहर से बाहर बनी एक बहुमंजिला इमारत के एक फ्लैट में रहने वाली एक चींटी घबराई हुई अन्य चींटियों के पास पहुँची और बोली।

"आज हम सब मारे जाएँगे। अभी-अभी घर में पैस्ट कन्ट्रोल वाले दाखिल हुए हैं।"

एक अन्य चींटी ने मायूसी से कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था कि बाहर बगीचे में रह लेते हैं। किसी के घर में घुसना ठीक नहीं।"

"घर में तो वे हमारे घुसे हैं।" दुख और आक्रोश से भरी रानी चींटी ने कहा।



खतरा

अपने मैले-कुचैले मरियल से पड़ोसी को अन्य गाँव वालों के साथ टेम्पो में सवार होते देख उससे नहीं रहा गया, "अरे मनसुख! इतने लोगों के साथ कहाँ जा रहा है?"

"सहर, नेता जी की रैली में, तीन सो रिप्या मिलेगा।"

"बेवकूफ! तुझे पता नहीं? वहाँ कोरोना का खतरा है।"

"पतो है, पर वो अगर होगा भी तो चार पाँच दिन बाद होगा न!"



एच 256, 11 एवेन्यू, गौड़ सिटी 2, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
फ़ोन- 9953235840 ईमेल- shobhanashubhi@gmail.com



मानवता की राह

"बचाओ, बचाओ".....एक महिला का चीखता हुआ स्वर उस रात की सर्द हवाओं में घुलता हुआ ना जाने कितने कानों में पड़ रहा था लेकिन शायद सभी ने अनसुना कर दिया था कि तभी एक व्यक्ति ने पहले पुलिस को खबर की और फिर स्वर का पीछा करते हुए उस ओर कदम बढ़ा दिए। स्वर मेले के पास से आ रहा था.....उस लड़की को परेशान करते हुए लड़के उस विशालकाय आदमी को देखकर एक बार को चकित हो गए, तब तक पुलिस भी आ गई। पुलिस ने उन लड़कों को गिरफ्तार किया और उस महिला को सुरक्षित घर पहुँचाया।

"अब कुछ ऐसा-वैसा मत करना जग्गी कि फिर से यहाँ आना पड़े, तूने तो जैसे रिश्ता ही जोड़ लिया है थाने से...."जेलर ने जग्गी को रिहा करते हुए कहा।

"अरे, कानून के हाथ इतने लंबे हैं कि हम तक पहुँच ही जाते हैं। किस्मत में हुआ तो फिर मिलेंगे।"

कुछ समय बाद.....

मीडिया, कैमरे, शोर और ढेर सारे सवालियों से घिरा एक व्यक्ति जिसे आज सम्मानित किया जा रहा था। उसने बड़ी सहजता से कहा, "हमें बहुत अच्छा लग रहा है कि आज यह सम्मान मिल रहा है लेकिन हमें पता नहीं कि यहाँ क्या बोलना है। हमने तो कभी कॉपी- किताबें छुई भी नहीं....।"

मीडियाकर्मी- "आप अपनी यात्रा के बारे में ही बता दीजिए, सर।"

तब उस व्यक्ति ने कहा, "उस रात हम बारिश में भीगते हुए जा रहे थे तभी एक महिला की चीखें सुनीं, फिर उसने पूरा किस्सा सुनाया और आगे कहा," हम बहुत परेशान रहे कि उस महिला की रक्षा तो हमने कर दी लेकिन ऐसी और कितनी महिलाएँ होंगी उनकी सुरक्षा का क्या.....तब हमने अपनी जिंदगी का लक्ष्य बना लिया कि हम महिलाओं को आत्मरक्षा सिखाएँगे। तब हमने पार्क में बच्चों को सिखाना शुरू किया, धीरे-धीरे और लड़कियाँ भी जुड़ती गईं और आज सबकुछ आपके सामने है.....।

तभी एक लड़की ने मंच पर आकर कहा, "मैं ही वह अनाथ लड़की हूँ, जिसे इन्होंने बचाया था। यह समाज की नजर में एक चोर-डकैत थे लेकिन तब भी इनमें उन सभी की अपेक्षा अधिक मानवता है, जो समाज के बुद्धिजीवी बने फिरते हैं। ये समाज-परिवार, सभी औरतों को सिखाने में लगे रहते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए, लेकिन स्त्रियों के हक और उनके खुद के कर्तव्यों को निभाने की बारी आती है तो समाज के ठेकेदारों को अपनी पगड़ी की चिंता होने लगती है और सब पीछे हट जाते हैं, पर इन्होंने जो किया उस कारण आज ये मेरे साथ-साथ बहुतों की प्रेरणा हैं। सभी को इनसे सबक लेना चाहिए।"

सारी औपचारिकताएँ समाप्त होने के बाद सम्मान समारोह पूर्ण हुआ कि तभी उस व्यक्ति की नजर किसी पर पड़ी। वह उसके पास गया तो सामने वाले व्यक्ति ने कहा, "तूने सही कहा था किस्मत में होगा तो जरूर मिलेंगे, पर ऐसे....मैंने नहीं सोचा था। मुझे आज गर्व हो रहा है तुम पर जगत सिंह.....।"

"जगत सिंह औरों के लिए जेलर साहब, आपके लिए तो सिर्फ जग्गी"....कहकर मुस्कुराते हुए जगत सिंह चला गया।



स्नातकोत्तर हिन्दी तृतीय सेमेस्टर, कानोडिया महिला महाविद्यालय, जयपुर
ई मेल- kunjika.1117@gmail.com मोबाइल नंबर- 7728815540

सुनो द्रौपदी

लज्जा-वसन बचाना है तो
स्वयं जागना होगा,
अपने ही हाथों से अपना
भाग्य बनाना होगा ।
आशा से देखो मत इनको
स्वयं खड़ी हो जाओ,
डटकर इनसे लड़ो
स्वयं ही अपनी लाज बचाओ।
बिके हुए इन सभासद से
रक्षा की गुहार करना तो
समय गँवाना होगा। सुनो द्रौपदी
देख रहे सब मौन बैठकर
लुटती लाज तुम्हारी,
सूख गया इन बूढ़ों की
आँखों का निर्मल वारि।
सत्तालोलुप इन वृद्धों को
तुरत हटाना होगा। सुनो द्रौपदी
अंधों से शासित शासन में
कौन सुनेगा अपनी
इनके अपने राग निराले
और निराली ढपली।
सत्ता मद में चूर हो रहे

इन्हें हिलाना होगा। सुनो
द्रौपदी.....
आसाराम सरीखे ढोंगी
निर्मल बनते बाबा,
इनके पैर तले न जन्त
न काशी न काबा।
केश खोलकर
इन्हें ध्वस्त करने का बीड़ा
स्वयं उठाना होगा। सुनो
द्रौपदी....
कोई कृष्ण नहीं कलयुग में
आकर चीर बढ़ाए,
लाज बचा कर
द्रुपदसुता की
उसका मान बढ़ाए।
छाती चीर दुशासन की खुद
केश बाँधना होगा।
सुनो द्रौपदी,
लज्जा-वसन बचाना है तो
स्वयं जागना होगा।



चैतन्या भव नारी शक्ति

रूढ़ियों को तोड़कर, परम्पराएँ मोड़कर।
पुरुष प्रमुख समाज में, पुरुष को पीछे छोड़कर।
अए! नारी तू आगे निकल, हक के लिए तू कर समर।।
चाहेगा कब ये नर कि सफल होवे तेरी साधना।
पर पूर्ण तुझको करनी होगी, शेष निज आराधना।।
सम्भव है तुझको चाहे ये, प्रणय बंधन में बाँधना।
कहीं ना कहीं उसमें भी छुपी तो होगी वासना ।।
सबसे बड़ा धन शील है, रखना इसे सहेज कर।
आए नारी तू! आगे निकल, हक के लिए तू कर समर ।2।
सुनेगी तू! हर कदम पे कि नारी दुर्बल होती है।
मगर, मग सहज होता वहीं, जहाँ चाह प्रबल होती है।।
नर की ही भाँति तुझमें भी, प्रच्छन्न शक्ति होती है।
हर महानर के पीछे भी, एक नारी ही तो होती है।।
आशाना होगी सफल, कसके कमर रण में उतर।
अए नारी तू! आगे निकल, हक के लिए तू कर समर ।3।
रणक्षेत्र में नर से ज्यादा, दर्शाया तूने साहस है।
सम्मुख तेरे दुस्सासन फिर, करता कैसे दुस्साहस है?
तेरे सहष्णु शील की, हो चुकी महती आजमायस है।
सुषुप्त भवानी को जगा, करती क्यूँ आत्मदाह है।।
रहेगी कब तक शांत तू! बैठेगी कब तक यूँ बिकल?
अए नारी तू! आगे निकल, हक के लिए तू कर समर ।4 ।
हिम्मत क्यूँ इसकी इतनी है, बलात्कार ये करे।
शिकस्त इसको ऐसी दे, जतन ना फिर ऐसा करे।।
तेरी ही अस्मत लूटके, मजबूर ये तुझे करे।
तू स्वयं शक्ति रूपा है, फिर आत्मदाह क्यूँ करे।।
ना हो जहाँ दुर्गा सफल, वहाँ काली का भी रूप धर।
अए नारी तू! आगे निकल, हक के लिए तू कर समर ।5।
तन्दूर में तुझको, असहाय जानकरके झौंकना।
सिन्दूर में भी इसके, अब तो मिल चुकी है वासना।।
झुलसा चेहरा तेजाब से, तुझको नहीं है भूलना।
बहुत सो चुकी है तू, होगा तुझे अब जागना।।
पुरुष प्रमुख समाज को, जवाब दे मुँहतोड़ कर।
अए नारी तू! आगे निकल, हक के लिए तू कर समर ।।6।



हिन्दी विभागाध्यक्ष कानोड़िया पीजी महिला महाविद्यालय, जयपुर।
M. No . 9772300956 Mail - rekhagupta662@gmail.com

हिन्दी व ब्रजभाषा साहित्यकार-समीक्षक
पता: हिन्दी साहित्य अचार्य, कानोड़िया महिला महाविद्यालय, गांधी सर्किल,
जयपुर। सम्पर्क: 09413836340 drsheetabhjaiman@gmail.com

शांति मोरपंखी सी

चलो कुछ इस तरह आज ये जिंदगी कर लें,
तमाम रंजिशें भुलाकर आओ दोस्ती कर लें।
मैं सुकून की तलाश में भटकता हुआ मुसाफिर हूँ,
चलो साथ मिलकर उसी से गुफ्तगू कर लें।
ये क्या कि हर जगह माहौल है तनहा-तनहा,
इसी तनहाई को दूर करने का वादा कर लें।
कि शांति जो मोरपंखी- सी दब गई है किसी किताब में
उस किताब के हर पन्ने में प्यार का रंग भर दें,
ये जो तेरे-मेरे की दीवार है दरमियाँ हमारे
उसे अपना बनाने की एक कामयाब कोशिश कर लें।
ये बिलखते बच्चों की सिसकियाँ सोने नहीं देती,
आओ इन सिसकियों में किलकारियों का रंग भर दें।
हम क्या लेकर आए थे क्या ले जाएँगे साथ अपने,
एक बार ये फ़लसफ़ा अपनों से साझा कर लें।
चलो कुछ इस तरह आज ये जिंदगी कर लें,
तमाम रंजिशें भुलाकर आओ दोस्ती कर लें।



कवयित्री, युवा लेखिका
प्राध्यापक हिंदी (महारानी गायत्री देवी गर्ल्स स्कूल, जयपुर)
मोबाईल न. 9887400016 ratnasharma74@gmail.com

जीवन की वही, सबसे खूबसूरत घड़ी थी

कई बार कोशिश की वक्रत को साधने की
उजालों को अपनी हथेलियों में बाँधने की

पर धूप ठहरी, बस दोपहर से शाम तलक
छत तक आकर भी खोया रक्ताभ फ़लक

मन डरा, फिर भी झुका नहीं, चुका नहीं
विश्वास इतना कि, किसी पल रुका नहीं

असल में ज़रूरत थी, मन को साधने की
सब चाहतों को, इक गठरी में, बाँधने की

जब इच्छा न रही, तो कोई डर भी न रहा
अँधेरे के खौफ़ का, कोई असर भी न रहा

बुझते लम्हों में भी, यूँ दहक बरकरार रही
जिंदगी में जिंदगी की महक बरकरार रही

जीवन की वही ,सबसे खूबसूरत घड़ी थी
जिंदगी आँधियों में, जब, पुरजोर खड़ी थी



Retired Banker (Business Head, ICICI BANK)
पता: 7-146 , Laxmi Marg,
Vidhyadhar Nagar, Jaipur - 302039
Email: gupta.rajendra146@gmail.com M. 8696934092

जीत तेरी ही

है व्यथित क्यों, आज नारी
नर हृदय सदा पाषाण है
लहर उठी है नवचेतना की,
इस काल का हो रहा अवसान है।(१)
जीत होगी तेरी ही फिर,
न हार मन से, अब ठान लो
संकल्प होता पूर्ण हरदम,
निश्चित है यह तू मान ले!!(२)
विश्वास कर बस, तू स्वयं पर
ना देखना पीछे कभी भी!
कारवां है किधर, ना सोच!
तू होगी आगे और पीछे सभी!!(३)
न देख! तू लहरों का कहर,
उठा कदम तू लांघ जलधि को!
हवाओं का रुख देखते नहीं,
छूना होता है क्षितिज जिनको!!(४)
हौसला रख, चलती चल बस
सोचना, मगर ठहरना नहीं है!
देख ना! कभी हो रहा क्या,
तू जो करती वही सही है!!(५)
बरसे धरा पर शोले भले
ताप से दग्ध ना होना कभी!
बरखा कभी सोचती नहीं है
यह देख चकित रह जाते सभी!!(६)
पत्थरों के शहर में भी,
लहलहाती देखी फसल!
जगाना अपने वजूद को तू
होगा स्वर्णिम तेरा भी कल!!(७)
भले सजी हो स्वप्न की धरा
यथार्थ से परे जाना नहीं!
चलती रहना लड़ती रहना
बस! फैसला होगा ये ही सही!!(८)



संस्था प्रमुख, साहित्य: एक यात्रा संस्था, जयपुर।

Email- ayushi62goya.ak@gmail.com

Mobile no.-9636974029

प्रार्थना

रुको...
मत रोको इन्हें
बह जाने दो आँसूओं को।
रोना सेहत के लिए जरूरी है
हृदय जब पीड़ा से रिसने लगे
तब आँखों से अश्रु
निर्बाध बहने लगते हैं।
आँसू भरी आँखों को
और भरिय कंठ को
सौंप दो उसे
जिसे तुम चाहते हो
प्यार करते हो
चाहे वो तुम्हारा ईश्वर हो
या तुम्हारा प्यार।
सुना है, प्रार्थना करते समय
जब तक आँखें आँसुओं से भर न जाए
ईश्वर भी नहीं सुनता।
लेकिन जब तुम पूरे समर्पण से रोते हो
अपने इष्ट के चरण पखारते हो
आँसुओं से तब
हाँ, तब ईश्वर भी माँ की तरह
ममतामयी होकर तुम्हारी हर तकलीफ को हर लेते हैं।
इसीलिए रो लो जी भर के
ताकि तुम नये सिरे से स्वयं को जान सको, खुद को पहचान सको।



अध्यक्ष, राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान जयपुर।

सम्पादक अनुकृति त्रैमासिक जयपुर।

पता-इन्दिरा गाँधी नगर 14/एच/94 पुलिस चौकी वाली गली

जगतपुरा जयपुर-302017(राजस्थान) मोबाइल नंबर-9413418045

स्त्री

हाँ , एक स्त्री
जिसका अनुबंध है
इज्जत से, मान से
मर्यादा से, घर से
परिवार से, समाज से।
एक स्त्री
जिसका सम्बन्ध है
रूप से, सौंदर्य से
प्रेम से, प्रणय से।
एक स्त्री
जिसका रिश्ता है
पिता से, प्रेमी से
पति से, संतति से
सृष्टि से।
एक स्त्री
जिसका अस्तित्व है
कोमलता में, सरलता में
लाज में, हया में
सहिष्णुता में।
एक स्त्री
जिसका संसार है
आभूषणों में, कविता में
अलंकारों में, शास्त्रों में
साहित्य में।
सच में कितना सुखद है
एक स्त्री को इन साहित्यिक
मर्यादित उपमानों में बद्ध
करके
देखना, सुनना, जानना
और पहचानना
पर यही स्त्री जब हो जाती है
अपने प्रति सतर्क

अपने कार्यों के प्रति
जागरूक
अपनी स्वतंत्रता
अपनी स्वाधीनता
अपनी मर्यादा के प्रति
चैतन्य
और अपने अधिकारों के प्रति
मुखर
तब यही स्त्री
हो जाती है
वाचाल
कुल कलंक
और
अ मर्यादित ।
जब यही स्त्री होने लगती है
अपने रूप, अपने सौन्दर्य
अपने प्रेम, अपने समर्पण पर
आनंदित
तब उसे कह दिया जाता है
बेहया, बेशर्म और
निर्लज्ज।
जब यही स्त्री
होने लगती है अनुरक्त
अपनी ही सृजित सृष्टि पर
तब वह
न पुत्री रहती है, न भगिनी
न प्रेमिका, न संगिनी
न पत्नी, न जननी
तब उसे दे दी जाती है
कुलटा, व्यभिचारिणी
वैश्या, विद्रोहिणी की
स्व -घोषित मानद उपाधियाँ ।

यही स्त्री जब अपने अस्तित्व के लिए
होने लगती है
सतर्क, जागरूक
मुखर
और लाँघने लगती है
तथाकथित दहलीजों को
सीमाओं को, पार करने लगती है
आदम निर्मित तथाकथित हदों को
तो वह कर दी जाती है घोषित
पतित, पथभ्रष्ट
नगरवधू।
यही स्त्री जब
पहचानने लगती है
साहित्यिक उपमाओं की
निरर्थकता को, समझने लगती है
उनके अजाने, अचीन्हे बंधनों को
और गढ़ने लगती है
उनके अपने ही उपमान
तब उसे कहा जाने लगता है
उच्छृंखल, दम्भी
और भी न जाने क्या-क्या?
एक स्त्री को बाँट दिया जाता है
धर्मों के, जातियों के, समुदायों के दायरों में ।
बाँध दिया जाता है
आस्थाओं के, विश्वासों के
मकड़जाल में ।
उसकी उन्नति, उसकी प्रगति,
उसकी आधुनिकता, उसका स्व,
उसका अस्तित्व चढ़ जाता है भेंट
घूँघट, पर्दा और हिजाब के
विवाद में !



अध्यक्ष, हिंदी उत्थान परिषद्, राजस्थान
डीन (भाषा , छात्र कल्याण, सामाजिक विज्ञान रिसर्च), यूनिवर्सिटी आफ टेक्नोलॉजी जयपुर
पता - 9 / GH/ L/8 /3, अलकनंदा अपार्टमेन्ट, हल्दीघाटी मार्ग, प्रताप नगर, जयपुर 302033

जीवन-वृत्त

तुम त्रिज्या बनकर क्षेत्र बनीं,
मैं परिधि बनकर व्यास बना।
तुम तनी रही वातायन में,
मैं, हल्का-सा आभास बना।
तुम पाई की अनसुलझी गुत्थी,
समीकरण-सी लगती हो,
तुम वहम का गणना सूत्र बनीं,
मैं गुणनखंड अभ्यास बना।

तुम जोड़-तोड़ में पारंगत,
मैं, शेष बचा परिहास बना।
तुम अग्रिम पन्ने की निधि हो,
मैं, तुलन-पत्र का हास बना।
इस जीवन वृत्त को निरख भौतिकी
अपना गणित फलाती है,
किंतु रसायन शास्त्र का मंजर,
कभी न अपने पास बना।

तुम विद्योत्मा-सी रहीं प्रिये,
मैं बेबस कालीदास बना।
तुम थाल सजातीं रहीं सदा,
मैं, माता की अरदास बना।
तुम छप्पन भोग की झाँकी बनकर,
लाचारी दर्शाती हो,
मैं, नवरात्रों में वही पुराना,
नौ दिन का उपवास बना।

तुम विज्ञापन-सी लगती हो,
मैं, दिन की खबरें खास बना।
मैं कतरन बनकर अभ्यर्थी के,
अरमानों की आस बना।

तुम वर्ग पहेली बनकर के बस,
निज अर्थों में सुलझती हो,
मैं हल प्रश्नों की कुँजी बन,
प्रतियोगी बुद्धि विलास बना।

भूगोल तुम्हारा बदल गया,
लेकिन मेरा इतिहास बना।
साहित्य तुम्हें छू कर निकला,
लेकिन मेरा विश्वास बना।

तुम सुंदर मुखड़ा गोल किए,
नित रेखा गणित सिखाती हो,
मैं षटकोणी चेहरा लेकर के,
घूम रहा उपहास बना।

तुम सरिता बनकर तरसाती,
मैं सागर बन कर प्यास बना।
तुम फूलों की क्यारी समतल,
मैं ऊबड़-खाबड़ घास बना।

तुम कस्तूरी मृग चंचल,
मुझे मरीचिका-सी लगती हो,
मदमाती तुम गंध बनीं,
मैं अधिकमास मधुमास बना।

तुम मेरे गीत का मुखड़ा हो,
मैं छंद वही अनुप्रास बना।
तुम भाव-भंगिमा कविता की,
मैं फकत शब्द विन्यास बना।

तुम अधजल गगरी छलक रही हो
मदिरा के पैमाने -सी,
मैं सिमट गया हूँ तलछट में,
किसी शायर का संत्रास बना।

तुम सोशियोलोजी पीएचडी,
मैं टीप के बी०ए० पास बना।
तुम पढ़ने में उस्ताद बनीं,
मैं लिखने में बिंदास बना।
तुम माधुरी बन कर तेरह तक की
गिनती पर इतराती हो,
मैं कई पहाड़े पढ़ कर के भी,
देवदास का दास बना।

तुम स्वर्ण जयंती आरक्षण,
मैं गरीब रथ का पास बना।
तुम वातानुकूलित बोगी,
मैं डब्बा सैकिंड क्लास बना।
तुम जयपुर का स्टेशन सुंदर,
शहरों की पहचान बनीं,
मैं बिन ठहराव का स्टेशन बन
गाँव लूणियावास बना।

इस बणी-ठणी के पहनावे में,
अक्स तुम्हारा खास बना।
मैं ठगा हुआ सा देख रहा हूँ,
पैबंदी लिब्बास बना,
तुम भिन्न-भिन्न परिधान पहन कर
कैट-वाक कर लेती हो,
पर डाग-वाच करते करते,
जीवन मेरा सं न्यास बना।



हाउस नंबर 380, थर्ड फ्लोर, पॉकेट 9, सेक्टर 21, रोहिणी,
दिल्ली 110086 मो. - 9136397400

हरे पत्ते

हरे पत्ते ने
अपनी चमक को
देखते हुए मुरझाते
पीले पत्ते से कहा, हटो
रास्ता हमारे लिए छोड़ो
और एक धक्का मारा, बेचारा ...
वह कमजोर सा मुरझाया सा
लुढ़कता इधर से उधर हवा के झोंके
के साथ उड़ चला अपने अस्तित्व की तलाश में
तलाशता रहा उस जगह को जहाँ वह पैदा हुआ
राह में एक और सूखा पत्ता उसे मिला
उसने पूछा ..क्यों दोस्त क्या अपनों ने तुम्हें
धक्के मारे हैं ?
पीले पत्ते ने मुस्करा कर कहा
नहीं मैंने उनके लिए अपना पता
बदल लिया है
ठहाका लगाकर दूसरा पत्ता बोला
मुझसे ना छुपाओ दोस्त !

क्योंकि मैं भी ठुकराया हुआ हूँ
हम पीले पत्तों का
पता नहीं कब अंत हो जाए
लेकिन हरे जवान
पत्तों के लिए दुआएँ दिये जा रहा हूँ
बढ़ो तुम मुस्कराओ
खिलखिलाओ हँसो
और आगे बढ़ते जाओ
वक्त एक दिन

तुम्हारा भी हमारे जैसा आयेगा
वही हाल होगा
निकाल दिए जाओगे
तुम भी अपने समूह से
केवल इसलिए कि
तुम पक गए हो
कोई बात नहीं लेकिन
फिर भी नाम हमारा कहीं तो होगा
किसी पत्थर पर जाकर

टिक जाएँगे
वर्षों बाद किसी पत्थर के नीचे
दबे रह जाएँगे
लेकिन फिर उसी जगह
एक दिन अस्तित्व हमारा भी
नजर आएगा
निशां रह जायेंगे
और तभी
ये हरे पत्ते
हम सबके साथ होंगे



अध्यक्ष कलम प्रिया संस्थान, जयपुरा
6च23जवाहर नगर जयपुर राजस्थान पिन कोड 302004
मोबाइल 9829013309

गतिविधियाँ
आई.सी.सी.आर.



क्षेत्रीय कार्यालय भुवनेश्वर द्वारा क्षितिज श्रृंखला के अंतर्गत दिनांक 26 फरवरी 2022 को आयोजित 'समरपन- 2022' कार्यक्रम के दौरान क्षेत्रीय कार्यालय प्रमुख, भुवनेश्वर दीप प्रज्वलित करते हुए।



क्षेत्रीय कार्यालय भुवनेश्वर द्वारा क्षितिज श्रृंखला के अंतर्गत दिनांक 27 फरवरी 2022 को आयोजित आजादी का अमृत महोत्सव कार्यक्रम के दौरान राजश्री जेना एंड ग्रुप द्वारा ओडिशा का शास्त्रीय और लोक (संबलपुरी) नृत्य प्रदर्शन।



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बैकॉक द्वारा दिनांक 5 फरवरी 2022 को आयोजित वसंत उत्सव के अवसर पर नादम नृत्य अकादमी द्वारा कथक नृत्य गायन प्रस्तुति।



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बैकॉक द्वारा दिनांक 12 मार्च 2022 को बेंजाकिटी पार्क में योग कार्यशाला का आयोजन किया।



क्षेत्रीय कार्यालय पुणे द्वारा दिनांक 26 फरवरी 2022 को क्षितिज श्रृंखला के अंतर्गत आयोजित कार्यक्रम में श्री लक्ष्मण चव्हाण और श्री सुरेश लसूणकुटे द्वारा सनई वाद और गोंधल प्रस्तुति।



क्षेत्रीय कार्यालय पुणे द्वारा दिनांक 26 फरवरी 2022 को क्षितिज श्रृंखला के अंतर्गत आयोजित कार्यक्रम के दौरान दीप प्रज्वलित करते हुए।



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारत का उच्चायोग, सूवा द्वारा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् का स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर फिल्म 83 स्क्रीनिंग के दौरान महामहिम पी.एस. कार्थिगेयन सभा संबोधित करते हुए।



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारत का उच्चायोग, सूवा द्वारा आयोजित योग कार्यक्रम के दौरान सूर्य नमस्कार योगाभ्यास करते हुए।



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारत का उच्चायोग, सूवा द्वारा आयोजित फाग सम्मेलन 2022 के दौरान एस.वी.सी.सी. के छात्र कथक प्रस्तुति।



“आजादी का अमृत महोत्सव” के उपलक्ष्य में 27 फरवरी 2022 को पुराना किले में “भव्य प्रदर्शन” के अवसर पर मुख्य अतिथियों द्वारा शुभ दीप प्रज्ज्वलन



डॉ. विनय सहस्रबुद्धे (अध्यक्ष, आई.सी.सी.आर. एवं सांसद राज्यसभा) दिनांक 5 मार्च 2022 को आजाद भवन सभागार, नई दिल्ली में भारत की महानतम गायिका पद्म भूषण लता मंगेशकर को श्रद्धांजलि देते हुए।



श्रीमती मीनाक्षी लेखी (विदेश और संस्कृति राज्य मंत्री) और डॉ. विनय सहस्रबुद्धे (अध्यक्ष, आई.सी.सी.आर. एवं सांसद राज्यसभा) द्वारा कलाकारों का अभिनंदना

गतिविधियाँ
आई.सी.सी.आर.



स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक द्वारा आयोजित "आईसीसीआर स्कॉलर डायरीज" कार्यक्रम के दौरान डॉ. लक्सनई सोंगसिएंगचाई ने अपने कलारीपयट्टू और फिल्म 'बाहुबली' के अनुभव, श्री शिवक सचदेव ने भारत के पर्यटन स्थलों के बारे में बताया तथा सुश्री मीनू सिंह, ने एसवीसीसी छात्रों के साथ सितार वादन की प्रस्तुति की।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आजाद भवन, नई दिल्ली में दिनांक 10 मार्च 2022 को सुश्री अकमारन कैनाजारोवा, कजाखस्तान के समूह द्वारा नृत्य प्रदर्शन।

भारत और कजाखस्तान के बीच राजनयिक संबंधों की स्थापना की 30वीं वर्षगांठ के अवसर पर 10 मार्च 2022 को सांस्कृतिक कार्यक्रम



‘आजादी का अमृत महोत्सव’ के अवसर पर दिनांक 27 फरवरी 2022 को पुराना क़िले में कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/US\$
गगनांचल	एक वर्ष	₹ 500 (भारत)	
वर्ष		US\$ 100 (विदेश)	
	तीन वर्षीय	₹ 1200 (भारत)	
		US\$ 250 (विदेश)	
कुल	छूट, पुस्तकालय	10%	
	पुस्तक विक्रेता	25%	

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. दिनांक

रु./US\$ बैंक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ

निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002, भारत

फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैप

नाम

पद

दिनांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 44 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प

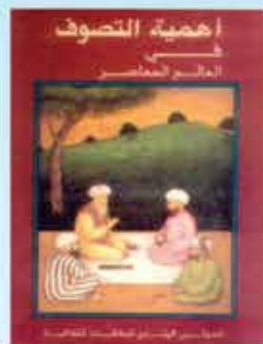
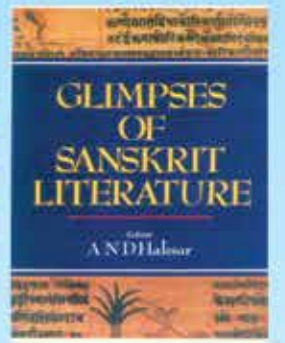
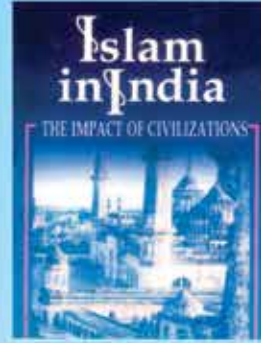
और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2268/2272

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

फ़ोन : 91-11-23379309, 23379310

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

वेबसाइट : www.iccr.gov.in

